जीवन-लक्ष्य

आज अपने इष्ट, प्रभु श्री हनुमान जी की दिव्य-प्रेरणा से और आप सब परम जिज्ञासुओं की जिज्ञासावश आपके सम्मुख एक बहुत दुर्लभ विषय रखूँगा; जिसकी तलाश हम सब जिज्ञासु मानवों और महामानवों को है। जिसकी तलाश में हमारे ऋषियों-मनीषियों ने हिमालय की कन्दराओं में, गंगा-यमुना के तटों पर और न जाने कहाँ-कहाँ घोर तप किया तथा अपनी देह व जीवन को गला दिया। उस विषय का नाम है—**'जीवन-लक्ष्य'**। हमारे जीवन का परम लक्ष्य क्या है? यह हम सब भारतवासियों को जानना परमावश्यक है, क्योंकि इस महा सत्य का ज्ञान हम भारतीयों की धरोहर है। **भारत ने ही विश्व को आध्यात्मिक ज्ञान दिया है, जिसके कारण आज भी भारत जगद्गुरु है और भारत ही जगद्गुरु रहेगा। जगद्गुरुत्व मात्र हम भारतीयों की ही धरोहर है।**

जीवन का लक्ष्य क्या है? यह बहुत विस्तृत विषय है। हमारी स्थूल-देह को जन्म से लेकर मृत्यु तक, एक जीवन की अवधि, एक काल मिला हुआ है। उस काल को हमने बचपन, जवानी व बुढ़ापा आदि अवस्थाओं में विभाजित किया हुआ है। इस **स्थूल-देह** पर आधारित जो भी जगत हमारे मानस में अंकित है और हमारे जीवन-काल में हमारे सम्मुख दृश्यमान होकर प्रकट होगा, वह हमारा **सूक्ष्म-मण्डल** है। स्थूल और सूक्ष्म दोनों देहों को नेत्रों द्वारा देखा जा सकता है, कानों द्वारा सुना जा सकता है, त्वचा द्वारा स्पर्श किया जा सकता है, नाक द्वारा सूंघा जा सकता है और रसना द्वारा चखा जा सकता है। ये दोनों दृश्यमान हैं और तीसरी हमारी **कारण-देह** है, जिसके कारण हम पृथ्वी पर लाए गए हैं। कारण-देह अदृश्य

है, उसे न नेत्रों द्वारा देखा जा सकता है, न कानों द्वारा सुना जा सकता है, न त्वचा द्वारा स्पर्श किया जा सकता है, न नाक द्वारा सूँघा जा सकता है और न ही रसना द्वारा चखा जा सकता है। यह कारण-देह निराकार है, शिव-स्वरूप है और इसे ईश्वर भी कहा गया है, **'निराकार रूपं शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।'** उस **'कारण'** के कारण हम देह धारण करते हैं और उसी के कारण हमारे सूक्ष्म-जगत का निर्माण होता है। अन्ततः इस जीवन-लीला में विभिन्न खेल खेलते हुए हम देह को छोड़ देते हैं या देह हमें छोड़ देती है। अन्त में मात्र डेढ़-दो किलो भस्मी शेष रह जाती है। **कितना विचित्र समागम है कि सम्पूर्ण मानव के अस्तित्व का प्रारम्भ निराकार से होता है और अन्त भी निराकार में होता है।** शिव निराकार है और भस्मी भी निराकार है। शिव में और शिव की भस्मी में बहुत कम अन्तर है। देवाधिदेव महादेव की ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीन विधाएँ हैं। सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्मत्व में निर्मित व विष्णु द्वारा पालित है और महेश इसका संहार करते हैं। ये तीनों प्रक्रियाएँ आनन्द में होती हैं।

इस सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में मानव-देह उस ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट, दिव्यतम, अद्‌भुत, महाचमत्कारी रचना है, जिसका मैं बार-बार वर्णन कर चुका हूँ। **देह स्वयं में महापुराण है। चिकित्सा-वैज्ञानिक होने के नाते जब हमने इस देह का अध्ययन किया तो यह पाया कि हम इस देह के बारे में क, ख, ग से ज्यादा कुछ नहीं जानते। यह स्वयं में एक बहुत बड़ा चमत्कार है। यदि हम इसका सब प्रकार से आध्यात्मिक व वैज्ञानिक अध्ययन करें तो ऐसा लगता है जैसेकि वह ईश्वरीय सत्ता स्वयं मानव-देह के रूप में पृथ्वी पर उतरी हो। उस सच्चिदानंद निराकार ने मानों मानव-देह के रूप में साकार रूप धारण किया हो।** पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश पंच-महाभूत हैं। ये स्वयं अपने में निराकार एवं सहज जड़ हैं क्योंकि इन्हें न अपने अस्तित्व का ज्ञान है और न ही ईश्वर का ज्ञान है। उस निराकार सत्ता ईश्वर ने इनसे महाचेतन व साकार मानव-देह का निर्माण किया। यह मानव-देह अन्त में इन्हीं पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती

है। यही समस्त सृष्टि है, यही है इसकी कल्पना और परिकल्पना। यही इसका आदि, मध्य व अन्त है। यही इसका लक्ष्य है, महालक्ष्य है—**भस्मी से भस्मी तक।**

मानव-देह का बना बनाया एक सुनिश्चित कार्यक्रम है जिसके तहत हमें यह मिलती है और हमें बिना बताए चुपचाप छीन ली जाती है। एक योजनाबद्ध यह देह आई है, जो आपकी सम्पत्ति भी नहीं है कि जिसका सुधार या पुनर्निर्माण आप कर सकें। ईश्वर जब जो चाहता है वही करवाता है और आप सब यह जानते हैं कि वह किस तरह करवाता है। आप योजनाएँ बनाते हैं उस देह की, जिसका अगला क्षण आपके हाथ में नहीं है। हम अपने जीवन का लक्ष्य इसलिए नहीं ढूंढ पाते क्योंकि जब भी हम अपनी देह पर एकाग्र करते हैं तो हम किसी न किसी छोटे-मोटे लक्ष्य के लिए भाग-दौड़ कर रहे होते हैं। बचपन में पढ़ाई के लिए, जवानी में विवाह-शादी के लिए, फिर अपने बच्चों के लिए, अपने कारोबार के लिए, अपने तथाकथित देश, धर्म, कर्त्तव्य, समाज के लिए, न जाने कितना बोझ हम निरर्थक ढोते रहते हैं और **सब जानते हैं कि होता वही है जो मंजूरे खुदा होता है। उसने सब कुछ बना कर भेजा हुआ है। सारा रिमोट उसके हाथ में है लेकिन फिर भी हम योजनाएँ बनाते हैं उस देह की, जिसका एक पल भी हमारे हाथ में नहीं है। योजनाएँ सफल नहीं होतीं तो हम अवसाद से घिर जाते हैं, तनावित हो जाते हैं कि मैं अपना लक्ष्य साध नहीं सका।** कोई देश का ठेका ले लेता है, कोई परिवार का, कोई समाज का। सब बड़े-बड़े ठेकेदार बने हुए हैं। कोई न कोई जीवन का लक्ष्य हमारे सामने अवश्य है। अरे! तुम लक्ष्य में लक्ष्य बनाने वाले होते कौन हो? हम जब भी स्वयं के बारे में विचार करें, चिंतन करें, स्वयं का अध्ययन करें, हमारे सामने कोई छोटा-मोटा लक्ष्य अवश्य होता है, चाहे वह कारोबार का हो, संतान का हो, देश का हो, समाज का हो, परिवार का हो, चाहे किसी न किसी धर्म-कर्म का हो। **जब तक हम जीवन में छोटे-छोटे लक्ष्यों से निजात नहीं पा लेंगे, तब तक हम जीवन के महा लक्ष्य के बारे में सोच ही नहीं सकते।**

जो देह हमें मिली है, बिना हमारी जानकारी के वापिस ले ली जाती है, तो यह देह हमें क्यों मिली है? इस महाचमत्कारी देह के द्वारा आप सब वह कार्य कर रहे हैं जो **आप भी** कर सकते हैं। जबकि यह विशेष देह आपको उस विशेष कार्य के लिए मिली है जो **आप ही** कर सकते हैं। जो कार्य आपके बिना भी हो सकता है और आपके बिना अधिक अच्छा हो सकता है, वह आपका कर्त्तव्य कैसे हो सकता है? इसका अर्थ यह है कि हमने व्यर्थ ही कर्त्तव्यों को अपने ऊपर थोपा हुआ है और हम प्राप्य की प्राप्तियों के लिए भाग रहे हैं। हमने लक्ष्य बनाया हुआ है कि हमने अमुक समय तक इतना धन कमाना है। अमुक समय में मैं अपने बेटे को यह बना कर ही छोड़ूँगा, कि क्या बनाओगे अपने बेटे को? मैं डॉक्टर बनाऊँगा, क्योंकि मैंने नर्सिंग-होम खोला है। आपके घर में दुर्भाग्यवश गलती से जो पैदा हो गया है, आप उसे डॉक्टर बना कर ही छोड़ते हैं, चाहे लाखों रुपये रिश्वत देकर उस मूर्ख को एम. बी. बी.एस. में दाखिला दिलाना पड़े और चाहे कुछ भी करना पड़े। हम करते हैं और फिर हम डींग भी हांकते हैं कि मैंने तुझे डॉक्टर बनाया और वह हमें आँखें दिखाता है कि तुमने मुझे डॉक्टर क्यों बनाया! यह इसलिए होता है क्योंकि आपने **स्वयंभू कर्म** किए। आपने यह जाने बिना कि मुझे ईश्वर ने यह देह क्यों दी है, अपनी बेशकीमती देह का अमूल्य समय अपने स्वार्थ के लिए व्यर्थ किया।

जब आप किसी भी कर्म को ईश्वर-विमुख होकर, स्वयं ठेकेदार बनकर करते हैं, स्वयं कारण बन जाते हैं तो कर्त्ता भी स्वयं बनते हैं। तब उस कर्म के बाद जो भी प्राप्ति होती है, दैवीय कानून के अनुसार आप उसका भोग नहीं कर सकते। सावधान! हम सभी प्राप्तियों के पीछे भाग रहे हैं, धन की, सन्तान की, पद की, विभिन्न शक्तियों की, यहाँ तक कि ईश्वरीय शक्तियों की, ऋद्धि-सिद्धियों की। हम नहीं जानते कि हमारी देह दिव्य कानूनों के अन्तर्गत बँधी है, अतः जब प्राप्तियाँ हो जाती हैं तो हम उनका भोग नहीं कर पाते, उनका सुख हम नहीं ले पाते। सब कुछ मिल जाता है पर खुशी छिन जाती है। हम भाग रहे हैं उन प्राप्तियों के लिए जो हमारे

भीतर से प्रस्फुटित होनी थीं। जो प्राप्तियाँ हमें होनी ही थीं, उन्हीं के लिए हम अपने जीवन में छोटे-छोटे लक्ष्य तय करते रहते हैं। इस प्रकार हमारा अमूल्य जीवन भवरोग से ग्रसित हुआ निरर्थक एवं नकारात्मक व्यतीत होता रहता है। मैंने अपने **'भवरोग'** शीर्षक प्रवचन में इसका विस्तृत वर्णन किया है।

हम यदि अपनी विवेक बुद्धि से विचार करें तो हम पाएँगे कि जीवन की जिस अवस्था में हम स्वयं को देखते हैं—चाहे परिस्थितियों के कारण, विशेष समयवश अथवा देश, समाज या परिवार की विभिन्न परिस्थितियों के वशीभूत हुए, हम अपना छोटा-मोटा लक्ष्य बनाए रखते हैं। **क्या कोई देह की ऐसी अवस्था है जिसमें आप जाग्रत हों और आप ऐसी मानसिक अवस्था में हों जहाँ आपका कोई लक्ष्य न हो? क्योंकि जीवन व देह-प्राप्ति का मुख्य लक्ष्य क्या है, यह जानने के लिए ऐसी स्थिति से आत्मसात् होना आवश्यक है, जब आप किसी छोटे-मोटे लक्ष्य के लिए व्यस्त न हों, तभी अपने जीवन व देह-प्राप्ति के वास्तविक लक्ष्य का आभास कर पाएँगे।** अब प्रश्न उठता है कि इतनी बड़ी ईश्वरीय सत्ता की प्रतिनिधि यह मानव-देह जीवन के छोटे-मोटे लक्ष्यों के लिए क्यों भागने लगी, कौन सा मनोविज्ञान हमें छोटी-छोटी प्राप्तियों के पीछे भगाता है? इसका कारण क्या है? हम जानते हैं कि हमारा जन्म, हमारी मृत्यु और सम्पूर्ण जीवन की कोई विधा हमारे हाथ में नहीं है। अगले क्षण की हमें कोई सुनिश्चितता नहीं है। **हम यह भी जानते हैं कि प्रत्येक कार्य यदि ईश्वरेच्छा में होता है तो सफल होता है, नहीं तो नहीं होता। उस परमेश्वर की मर्ज़ी के बिना पूरे** ब्रह्माण्ड **में एक पत्ता भी नहीं हिलता। इसके बावजूद भी हम क्यों प्राप्तियों के पीछे भागते हैं?**इसके पीछे बहुत गहन मनोविज्ञान है, जिसे मैं आज प्रथम बार आपके सम्मुख उद्घाटित रहा हूँ।

मान लो किसी व्यक्ति का कोई बहुत ही अमूल्य हीरा खो जाए, वह हीरा नष्ट नहीं हुआ, खो गया है। कोई वस्तु कब खोती है? वह हमारे हाथ से छूट जाए, कोई छीन कर ले जाए हम कहीं रखकर भूल जाएँ, कोई हमसे

ठग कर ले जाए अथवा चोरी हो जाए। वह अमूल्य हीरा हमारा बहुत प्रिय भी हो, तो हमें बहुत धक्का लगता है। उस हीरे या वस्तु के खोने के गम से कई बार व्यक्ति मानसिक रूप से विक्षिप्त भी हो जाता है। वह उस वस्तु की तलाश बहुत शिद्दत से करता है। पहले तो उसे आसपास ढूंढता है और यदि उसे वहाँ नहीं मिलती तो विक्षेप में कहीं भी उससे मिलती-जुलती कोई चमकदार चीज़ नज़र आती है तो उसे उठाने का प्रयत्न करता है और उठा भी लेता है। उठाकर उसे परखता भी नहीं है, इस डर से कि कहीं कोई यह न कह दे कि यह तुम्हारा वह हीरा नहीं है। उसे इतना सम्भाल कर रखता है, जितना उसने असली हीरे को भी नहीं रखा था क्योंकि यदि उसे लापरवाही से न रखा होता तो वह खोता ही क्यों? अब इस नकली वस्तु के प्रति उसे स्वयं भी सन्देह होता है लेकिन अपने दिखावटी संतोष के लिए वह उसे सम्भाल कर रख लेता है। यही हमारे साथ भी हुआ। **हम अपना सच्चिदानंद-स्वरूप खो बैठे। हमारी कारण-देह, हमारा वह आनन्द-स्वरूप खो गया और हम इन्द्रियों के सुखों को ही अपना वह आनन्द-स्वरूप समझ बैठे। हमारी तमाम भागदौड़ अपनी इन्हीं इन्द्रियों को संतुष्ट करने के लिए है, जो कभी सन्तुष्ट नहीं होतीं। इन इन्द्रियों के पास अपना सुख भी नहीं है, क्योंकि ये हमारे आनन्द-स्वरूप के सम्पर्क से ही सुख लेकर हमें देती हैं।** उदाहरणतः किसी कारणवश यदि आपका मूड खराब है तो आपकी बेहद स्वस्थ इन्द्रियाँ और बेशकीमती सुख-साधन भी आपको सुख नहीं दे पाते। आप इन्द्रियों का सुख तब तक नहीं ले सकते जब तक आपके भीतरी आनन्द का प्रवाह निर्बाध न हो। इस तनाव में हम सुख-साधनों के लिए और भाग-दौड़ करते हैं। सब सुख-साधन होते हुए भी हमें सुख नहीं मिलता तो और-और सुख की चाहत में हम भागते ही रहते हैं और अन्ततः हमारी इन्द्रियाँ हमें जवाब दे देती हैं। इस प्रकार सुख-साधन एकत्रित करने की भाग-दौड़ में हम अपना सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ करके, आसक्तियों को लिए अकाल ही मर जाते हैं। पुनः अकाल जन्म लेते हैं और जन्म-जन्मान्तरों के काल-चक्र में धक्के खाते रहते हैं।

कौन सी ऐसी भूमिका है जो हमें यह बताएगी कि हमारा वास्तविक लक्ष्य क्या है? भूमिका ऐसी होनी चाहिए जिसमें हमारा कोई भी कर्त्तव्य या छोटा-बड़ा भौतिक लक्ष्य न हो। जब हम जन्म-जन्मान्तरों में इसी प्रकार धक्के खाते रहते हैं तो प्रभु-कृपा से हमें कभी कोई सद्गुरु मिल जाता है जो हमारी देह के भौतिक सत्य से अवगत कराता है, कि बेटा! तुम जिन वस्तुओं और सुखों के लिए भाग-दौड़ कर रहे हो उनका मिलना तो सुनिश्चित नहीं है। **पर तुम्हारी देह की भस्मी अवश्य बनेगी और तुम्हारा वह निश्चित परिलक्षित भविष्य है। जब तुम्हारी देह भस्मी बनेगी तो तुम नहीं होगे, तो उस अपने निश्चित परिलक्षित भविष्य को जीते जी आत्मसात् करो। जब हम अपने उस भविष्य को जीवन-काल में आत्मसात् करेंगे तो हम उस भूमिका में पहुँच जाएँगे जब हम होंगे लेकिन हमारा कोई छोटा-मोटा लक्ष्य नहीं होगा। भस्मी स्थिति में न आपका कोई कर्त्तव्य होगा, न धर्म, न कर्म और भस्मी का कोई प्रारब्ध भी नहीं होता।** हमारा प्रारब्ध कब बना, जब हम सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति व ऐश्वर्य के पीछे भागे लेकिन जब हम उस भस्मी के साथ जीते जी आत्मसात् हो जाएँगे तो हमारा प्रारब्ध नष्ट हो जाएगा। **आपकी भस्मी कर्मातीत, धर्मातीत, सम्बन्धातीत, देशातीत, कालातीत, त्रिगुणातीत है, उसमें ईश्वरतुल्य गुण हैं।** मैंने अपने **'अद्य दिवसम्'** शीर्षक प्रवचन में सौ साल की सैर भी बताई थी।

दोनों प्रकरण आपको उस भूमिका में ले जाएँगे जहाँ आप जाग्रत होंगे लेकिन आपका कोई लक्ष्य नहीं होगा और उस अवस्था में आपको अनिर्वचनीय अभावमय आनन्द की अनुभूति होगी। जब आप मानसिक रूप से भस्मीभूत हो कर, अर्थात् अपनी भस्मी से आत्मसात् होकर बैठते हैं या बौद्धिक रूप से सौ वर्ष आगे पहुँच जाते हैं और उस स्थिति में जब आप कुछ समय तक रहते हैं तो आपको आनन्द की अनुभूति होगी ही। आप विचार करने पर बाध्य हो जाएँगे कि उस आनन्द में मेरे पास कोई वस्तु, पदार्थ अथवा सुख-साधन तो थे नहीं तो अवश्य ही मेरा अपना कोई आनन्द-स्वरूप है जिसके खोने के कारण ही मैं वस्तुओं, पदार्थों व सुख—साधनों की ओर

भाग रहा हूँ। यह आनन्द की अनुभूति आपको अपने सच्चिदानंद स्वरूप की स्मृति दिलाएगी। बहुत बड़ा तकनीकी आध्यात्मिक रहस्य आपके सामने उद्घाटित कर रहा हूँ। हमारे शास्त्रों, उपनिषदों, वेदों, पुराणों, श्रुतियों, स्मृतियों आदि के अध्ययन द्वारा भी यह सत्य आत्मसात् नहीं हो पाता। जब तक आपको उस अभावमय आनन्द की अनुभूति के फलस्वरूप अपने सच्चिदानंद-स्वरूप की स्मृति नहीं आएगी, आप अपना लक्ष्य निर्धारित कर ही नहीं सकते। यदि अपने लक्ष्य को पाना है तो आपको उस अभावमय आनन्द की अनुभूति करनी परमावश्यक है, **जो सद्गुरु करवाता है। नहीं तो आप जन्म-जन्मान्तरों में आसक्तियों को लिए हुए इसी तरह काल-चक्र में घूमते रहेंगे। सद्गुरु के शब्द, उसका स्पर्श, उसकी दृष्टि, उसका प्रसाद, उसकी गन्ध, उसका चरणामृत, उसकी डांट-फटकार और उसका कुछ भी, उसमें ऐसी शक्ति होती है कि वह आपको आनन्द की अनुभूति करा कर, आपके 'कारण' ईश्वरीय-स्वरूप की स्मृति कराता है। कैसे?**

सद्गुरु जब अपने श्रीमुख से शब्दों का उच्चारण करता है तो उसकी निजी आनन्द की अनुभूति ही शब्दों में परिवर्तित होकर उसके श्रीमुख से शब्द बनकर निकलती है। इसे कहते हैं—**'शब्द ब्रह्म'**, पर यह होता है—**'ब्रह्म शब्द'। वह पारब्रह्म परमेश्वर जो निराकार है वह आपके लिए पृथ्वी पर देह धारण करके सद्गुरु के रूप में उतरा है।** उस गुरु की ब्रह्ममय वृत्ति व आनन्दानुभूति शब्द बन कर प्रगट हुई, उसे आपके कर्ण सुनते हैं और आपकी बुद्धि उस पर विचार करती है। जब यह विचार बार-बार होता है तो वह चिंतन बन जाता है। पहले होगा **'श्रवण'**, फिर होगा **'विचार'** और पुनः-पुनः उन्हीं विचारों के चलने पर होगा **'चिन्तन'**। जैसेकि एक चीज़ बार-बार जब मस्तिष्क में आती है तो वह चिंता बन जाती है, ऐसे ही सद्गुरु के शब्दों के सुनने पर जब बार-बार उन पर विचार होता है तो वह चिंतन बन जाता है। चिंतन के बाद वह फाइल आपके मन के पास जाती है। **सद्गुरु की ब्रह्ममय वृत्ति, उसकी आनन्दानुभूति व आत्मानुभूति शब्द बनकर**

आपके कर्णों को बेधती हुई आपके मस्तिष्क में गई तो हुआ श्रवण, विचार और चिंतन। फिर आपके मन ने उस पर मनन किया और मनन जब बार-बार हुआ तो उसे कहा गया है–'नित्याध्यासन'। आपकी बुद्धि ने उन शब्दों का अपना ही अर्थ निकालना है और मन ने मनन भी वैसा ही करना है जैसा कि आपका भाव होगा।

मानवीय मन अशान्त, अस्थिर व अशक्त होता है और मानवीय बुद्धि भी अक्सर प्रदूषित ही होती है। सद्‌गुरु जब आप पर दृष्टिपात करेगा तो उसे आपकी दृष्टि ने पकड़ना है, आपकी दृष्टि आपके भावानुसार ही तो सद्‌गुरु की दृष्टि को पकड़ेगी और अपनी त्वचा द्वारा स्पर्श आप अपने भावानुसार ही ग्रहण करेंगे, सद्‌गुरु के प्रसाद व चरणामृत को जब आप चखेंगे तो उसके पीछे भी आपका भाव होगा, सद्‌गुरु की सुगन्ध में भी भाव आपका ही होगा। इसलिए विचार, चिन्तन, मनन व नित्याध्यासन के बाद वे शब्द, दृष्टि, स्पर्श, गन्ध, प्रसाद व चरणामृत जो रूप लेंगे उसमें आपके मन व बुद्धि का प्रदूषण अवश्य होगा जिसका शोधन सद्‌गुरु-कृपा में होना आवश्यक है। इस शोधन (Processing) के बाद शब्द, शब्द नहीं रहते, गन्ध, गन्ध नहीं रहती, स्पर्श, स्पर्श नहीं रहता, दृष्टि, दृष्टि नहीं रहती और प्रसाद, प्रसाद नहीं रहता, वह सब एक अनिर्वचनीय अनुभूति बन जाता है। वह एक आणविक शक्ति बन जाती है जो आपकी अन्तर्रात्मा के ज्ञान को जाग्रत करने में परम समर्थ होती है। अनुभूति से अनुभूति की यह यात्रा एक दीर्घ प्रक्रिया है। यह नहीं कि आज आपने ग्रन्थ पढ़े या प्रवचन सुने और कल आप ज्ञानी हो गए। रावण को भी चार वेद और छः शास्त्र कण्ठस्थ थे। वह जैसा ज्ञानी हुआ आप सबको विदित ही है! **ग्रन्थ पढ़ने या प्रवचन सुनने से कुछ नहीं होता, जब तक सद्‌गुरु-कृपा की Processing न हो।**

यह आवश्यक नहीं कि आपको सद्‌गुरु के गहन शब्द समझ में आएँ ही। बस श्रद्धा से आँखों में अश्रु लिए हुए सद्‌गुरु के दर्शनों के लिए बैठ जाइए। आपका अन्तर्ज्ञान जाग्रत हो जायेगा। सद्‌गुरु आपको

आपके लक्ष्य की अनुभूति करवा देगा, चाहे आप नितान्त अनपढ़ ही क्यों न हों, कोई बात नहीं है। सत्संग में जब भी जाइए श्रद्धा से जाइए, मात्र आँखों में अश्रु लिए हुए दर्शन कर लीजिए। सद्गुरु के दर्शनों से भी आपको आनन्द की अनुभूति हो जाएगी, जिससे आपको अपने खोए हुए सच्चिदानंद स्वरूप की स्मृति आ जाएगी। जब तक आपको अपने स्वरूप की स्मृति नहीं आएगी, तब तक आप अपने लक्ष्य की ओर प्रवृत्त हो ही नहीं सकते, जोकि समस्त अन्तर्यात्रा है। आपकी बाहर की सारी भाग-दौड़ बन्द हो जाएगी, क्योंकि आनन्द आपके भीतर की धरोहर है। आप उससे ठसाठस भरे हुए हैं, आप उस सच्चिदानंद की संतान हैं। जब आपको आनन्द की अनुभूति हो जाएगी तो जिन पाँच-विभूतियों और भौतिक वस्तुओं के पीछे आप भाग रहे थे, वे स्वतः आपके चरणों में आनी शुरू हो जाएँगी। आपने जो छोटे-छोटे लक्ष्य बनाए थे, आप जो स्वयंभू कर्म व प्रारब्धवश सन्दर्भ-कर्म कर रहे थे, उन कर्मों में आपकी प्रवृत्ति नष्ट हो जाएगी और उस समय आपको प्रभु आपके विशेष कर्म की स्मृति दिलाएँगे जिस कर्म के लिए आपकी देह-विशेष दी गई है। मैंने **'प्रदत्त कर्म'** शीर्षक प्रवचन में इसका विस्तार से वर्णन किया है।

जब हम उस कार्य के लिए स्वयं को सुरक्षित रखते हैं जो मात्र **हम ही** कर सकते हैं, तभी प्रभु आपसे प्रदत्त-कर्म करवाते हैं। उसके लिए आपके भीतर से अगणित शक्तियों का प्रस्फुटन होना प्रारम्भ हो जाता है। इसके लिए औपचारिकता यह है कि जो कार्य **आप भी** कर सकते हैं, उन कार्यों को आप अपने दिल, मस्तिष्क व रूह से त्याग दें। फिर कभी न कभी आपको ऐसा सद्गुरु मिल जाएगा जो आपको आपका प्रदत्त-कर्म बताएगा। प्रत्येक व्यक्ति को प्रभु ने इस प्रकार की शक्तियाँ, प्रतिभाएँ व गुण दिए हैं जिनके तहत हमारी देह एक विशेष कार्य के लिए डिज़ाइन की गई है, वह कार्य जो मात्र **हम ही** कर सकते हैं। परन्तु **स्वयंभू** और **सन्दर्भ-कर्मों** में हम स्वयं को इतना व्यस्त रखते हैं कि वे प्रतिभाएँ, गुण व शक्तियाँ आच्छादित ही रहती हैं। जब हम ईश्वर-सम्मुख होकर स्वयं को मात्र उस कार्य के लिए सुरक्षित

रखेंगे जिस कार्य के लिए प्रभु ने हमें बनाया है, तो **कभी न कभी हमें वह सद्‌गुरु मिलेगा जो स्मरण दिलाएगा कि पृथ्वी पर हमें क्यों लाया गया है। उस समय दैवीय कानून के तहत हमारी शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक शक्तियाँ असंख्य गुणा बढ़ जाएँगी**ः—

''चल पड़े जिधर दो पग डग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
जिसके सिर पर निज धरा हाथ,
उसके सिर रक्षक कोटि हाथ,
जिस पर निज मस्तक झुका दिया,
झुक गए उसी ओर कोटि माथ।''

जिस ओर आप चलेंगे, करोड़ों लोग उस ओर चल देंगे, जिस सिर पर आप हाथ रखेंगे, करोड़ों हाथ उस सिर पर आशीर्वाद हेतु पहुँच जाएँगे। **आपकी वाणी सत्य को धारण कर लेगी, आपका हर शब्द ब्रह्म होगा, आपके विषय भोग भी पूजा प्रकरण बन जाएँगे, आपकी सुषुप्ति समाधि होगी, आपकी हर गतिविधि ईश्वरीय प्रदक्षिणा होगी और आपके द्वारा किया हुआ प्रत्येक कर्म ईश्वरीय-अराधना ही होगी।**

प्रदत्त-कर्म आपके जीवन के कर्म का लक्ष्य है। आपके जीवन का लक्ष्य नहीं है। यदि आपसे प्रभु ने वह कार्य भी करवा लिया जिसके लिए आपको पृथ्वी पर विशेष देह देकर भेजा है, तो यह भी कहानी का अन्त नहीं है। यह आपके कर्म का लक्ष्य है कि आप प्रभु-कृपा से प्रदत्त-कर्म करें। परन्तु आपका, आपके जीवन का लक्ष्य क्या है ? उस स्थिति में आपको इन प्रदत्त-कर्मों से भी निजात पानी पड़ेगी। होता क्या है, जब अपने कर्म छोड़कर ईश्वर के ध्यान में, चिन्तन में बैठते हैं तो माया वहाँ भी नहीं छोड़ती। लोग ईश्वरीय शक्तियों के साथ खिलवाड़ करने लगते हैं। ऋद्धियों-सिद्धियों के पीछे भागने लगते हैं। सावधान! आजकल तन्त्र-मन्त्र वालों के पास जाने का बहुत रिवाज हो गया है। ईश्वरीय सिद्धियाँ प्राप्त कर के भी लोग विक्षिप्त ही रहते हैं और उनका अनुसरण करने वाले भी आनन्द

से वंचित रहते हैं। उनका स्वयं का और उनके पीछे लगने वाले अनुयायियों का क्या परिणाम होता है यह आप इन दो दृष्टान्तों द्वारा भली-भाँति जान जाएँगे।

बिहार में बाबा जगन्नाथ के **'टूक'** बहुत मशहूर थे। वे बहुत सिद्ध पुरुष थे, उनके यहाँ रात-दिन भण्डारा चलता था। शुद्ध घी का भोजन बनता था, लोग आते थे, खाते थे और चले जाते थे। पूरी ट्रेन रुकती थी और सभी लोग वहाँ खाना खा कर जाते थे। बड़ी मान्यता थी, उनके असंख्य शिष्य हो गये, कुछ खाने-पीने वाले, कुछ कौतूहल वाले। भण्डारे के लिए सब सामान कहाँ से आता है, कोई नहीं जानता था। अब बाबा की मृत्यु का समय आया तो उन्होंने अपने परम शिष्यों को बुलाया और कहा कि बेटा! गायत्री मंत्र का जाप करो। बाबा को उनके शिष्यों ने ज़मीन पर शय्या दे दी और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक गायत्री-जाप करने लगे। अब एक दिन, दो दिन, बाबा की देह छूटने पर ही न आए, जाप करते-करते उनके गले सूखने लगे तो उन्होंने गुरु जी से पूछा—महाराज! कब तक? तो गुरु जी ने संकेत से बताया कि करते रहो, रुकना नहीं। अब शिष्यों ने अन्य व्यक्तियों को भाड़े पर जाप करने के लिए बुला लिया। सब विभिन्न पारियों में जाप करने लगे। जब कई दिन बीत गए तो फिर पूछा कि महाराज यह क्या चक्कर है? तब बाबा ने बताया कि तुमने सारी उम्र जो परांठे और मालपुए खाए हैं, वो भूल गए हो! मैंने दो प्रेत सिद्ध किए थे जो मेरे सिर पर खड़े हैं, जैसे ही तुमने गायत्री-जाप बन्द किया, वे मुझे अपनी योनि में ले जाएँगे। इस प्रकार ऐसे तन्त्र-मन्त्र वालों का यह परिणाम होता है।

बहुत सिद्धियों के प्रदर्शन का क्या परिणाम होता है, यह आप इस दृष्टांत से जान जाएँगे। एक महात्मा ने सकाम उपासना की जिससे उनके बालों में शक्ति उत्पन्न हो गई। उनके पास भी असंख्य चेले-चमटे आते थे, क्योंकि महात्मा जाते समय उनमें से किन्हीं एक-दो को अपना एक बाल तोड़कर दे देते थे, जिससे उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती थीं। जिसकी पदोन्नति नहीं हो रही थी उसकी हो जाती थी, किसी को सन्तान का अभाव

था, उसे सन्तान मिल जाती थी, किसी गरीब को धन मिल जाता था। अतः जिसको उनका एक बाल मिल जाता था उसका काम बन जाता था। उनके यहाँ भी दिन-प्रतिदन भीड़ बढ़ने लगी। सब बड़े भाव से सबसे आगे कीर्तन-भजन में बैठते थे कि क्या पता आज उनका भाग्योदय हो जाए और महात्मा की दृष्टि उन पर पड़ जाए। उनकी भी मृत्यु का समय आया, पृथ्वी पर लिटा दिया गया और कीर्तन-भजन होने लगा। उनके पाँच-छः शिष्यों ने कीर्तन-भजन का आडम्बर करते हुए एक योजना बनाई कि महात्मा की सारी शक्ति तो बालों में ही है और यह मरने वाले हैं। अतः एक योजनाबद्ध तरीके से उनमें से किसी एक ने बिजली गुल कर दी और दो मिनट में शेष शिष्यों ने महात्मा के सिर पर एक बाल भी नहीं रहने दिया। जिसके हाथ में जितने बाल आए वे सब खींचकर भाग गए। तो ये सिद्धियाँ स्वयं व्यक्ति को भी त्रसित करती हैं और उनके अनुयायियों को भी परेशान करती हैं। लेकिन ऐसे लोगों के पास भीड़ बहुत होती है क्योंकि किसी को ट्रांसफर चाहिए, किसी को पदोन्नति चाहिए, किसी को सन्तान चाहिए, किसी को अपनी लड़की या लड़के के लिए वर-वधु चाहिए, किसी को अच्छा कारोबार चाहिए, किसी का प्रेम का चक्कर होता है। इस प्रकार जीवन में सबने छोटे-छोटे लक्ष्य बनाए हुए होते हैं और एक के पूरा होते ही दूसरा पहले खड़ा हो जाता है।

आपका जीवन विभिन्न परिस्थितियों में बंधा है। न जाने किस समय जीवन में कैसी परिस्थिति आए! आप उसका मानसिक स्वरूप ले लीजिए जिससे आप अपने जीवन में विभिन्न परिस्थितियों में आनन्द से रहेंगे। जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है? जीवन में एक-एक क्षण का, एक-एक पल का आप आनन्द ले सकें, कि आपको किसी भी तरह से और सब तरह से आनन्द की अनुभूति हो जाए। आनन्द की स्मृति नहीं होती, आनन्द की अनुभूति होती है, जो देहातीत है। आनन्द आपकी अपनी कारण-देह है, **जिससे आप वंचित से हो गए हैं, कट से गए हैं।** जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है? कि आप अपनी कारण-देह सच्चिदानंद स्वरूप से जुड़ जाइए

अथवा आप अपनी भस्मी से जुड़ जाइए। दोनों ही निराकार हैं, आपका **'कारण'** एवं आपकी भस्मी दोनों देह से परे हैं। दोनों में समस्त गुण एक जैसे हैं। **दोनों सच्चिदानंद, देहातीत, कालातीत, देशातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत, कर्मातीत, कर्त्तव्यातीत, धर्मातीत एवं त्रिगुणातीत हैं।** जिस दिन आपको अपने आनन्द की अनुभूति होगी तो वह अभावमय आनन्द की अनुभूति आपके **खोए से** वास्तविक सच्चिदानंद स्वरूप की स्मृति अवश्य कराएगी।

सावधान रहना कि जो तथाकथित गुरु आपको इस अभावमय आनन्द की अनुभूति नहीं करा सकता, वह समर्थ गुरु नहीं हो सकता। अपने आनन्द की अनुभूति ही आपको वास्तविक जीवन-लक्ष्य की स्मृति कराएगी। उस लक्ष्य की स्मृति आने के बाद आप उसे प्राप्त करने के लिए पागल व दीवाने हो जाएँगे, जिज्ञासु हो जाएँगे। वह जिज्ञासा कभी न कभी आपको आपके परम लक्ष्य यानि मोक्ष को दिलवा देगी। क्योंकि आपके दैहिक, आध्यात्मिक व बौद्धिक समस्त कृत्य एक ही दिशा की ओर प्रेरित हो जाएँगे। **आनन्द की अनुभूति ऐसी है जिसके सामने सम्पूर्ण संसार का कोई भी सुख ठहरता नहीं है। आप मुक्त होने, मोक्ष को पाने के लिए लालायित हो जाएँगे।** भारत में हमारे पूर्वजों, ऋषियों, मनीषियों ने पाया है और आप सब भी उस मोक्ष, अपने जीवन के उस परम लक्ष्य को पाने के अधिकारी हैं। आज हम आपको आशीर्वाद देते हैं, आप सबके लिए मंगलकामना करते हैं कि आप भारतीय अपने दैनिक जीवन में से दिन का कुछ समय निकालकर अपने वास्तविक सत्य, अपने निश्चित परिलक्षित भविष्य **'भस्मी'** से आत्मसात् होने का प्रयास करें। अपने **'कारण'** उस परम पिता परमेश्वर से जुड़ने का प्रयास करें, ताकि आपको भी उस अभावमय आनन्द की अनुभूति हो और आप अन्ततः अपने चरम लक्ष्य, उस मोक्ष रूप महा-आनन्द के साथ आत्मसात् होने में सफल हो पाएँ।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(4अप्रैल, 2004)

कर्म-बन्धन

आज परम इष्ट-कृपा एवं आप सब परम जिज्ञासुओं की प्रेरणा व जिज्ञासावश आपके सम्मुख असंख्य भारतीय ऋषियों, मनीषियों, देवी-देवताओं एवं महापुरुषों की वाणी का सार प्रस्तुत करूँगा। हम मानव युगों-युगान्तरों से **'कर्म-बन्धन'** के कारण काल-चक्र में भटकते हुए निरर्थक तथा नकारात्मक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हम भली-भाँति जानते हैं कि हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण का रिमोट उस परम पिता परमात्मा के हाथ में है, जो हमारी देह का **'कारण'** है। कब जन्म होता है हमारा? कब मृत्यु होती है? जीवन की विशिष्ट घटनाएँ कब, क्यों और कैसे घटती हैं? बुद्धि की उत्कृष्टतम क्षमताओं से हम यह जानते हैं कि जीवन की किसी भी विधा पर भी हमारा कोई अधिकार नहीं है। कदाचित् इसीलिए जीव उस कालेश्वर से आर्तनाद करता है:—

''मृत्युंजय महादेव त्राहि माम् शरणागत,
जन्म-मृत्यु जरा रोगे पीड़ितम् कर्म-बन्धनैः।''

हे देवाधिदेव महादेव! तुम महाकालेश्वर हो, क्योंकि काल तुम्हारे अधीन है। परन्तु मैं काल के अधीन हूँ। मैं तुम्हारी शरण में हूँ, मैं जन्म, मृत्यु, बुढ़ापे, रोग से व्यथित जीवन व्यतीत कर रहा हूँ, तुम मेरी रक्षा करो, क्योंकि मैं **कर्म-बन्धन** से पीड़ित हूँ। मेरी पीड़ा एवं व्यथा का कारण **'कर्म'** नहीं बल्कि उनका **बन्धन** है। **कर्म-बन्धन** क्या है? यह जानने से पूर्व यह ज्ञात होना आवश्यक है कि कर्म क्या है? हम हँसते हैं, उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते हैं। सब कर्म हैं, परन्तु कर्म की उत्पत्ति कहाँ से होती है? हमने

हाथ को किसी को तमाचा मारने का आदेश दिया, तो हाथ ने थप्पड़ मार देना है और दूसरे व्यक्ति को आशीर्वाद देने की आज्ञा दी तो हाथ ने वैसा ही कर्म कर देना है। एक ही हाथ से दो विभिन्न कर्म हुए, लेकिन इन कर्मों का उत्तरदायी कौन है? आजकल हम अच्छे-बुरे, पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ कर्मों का राग अलापते हैं परन्तु यह नहीं जानते कि कर्म की परिभाषा क्या है और उसकी उत्पत्ति कहाँ से होती है? मैं विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूँ और प्रत्येक बात को पारिभाषित करके यथातथ्य रूप से जानना मेरी स्वभावगत सहज प्रवृत्ति है। हमें हर चीज़ की परिभाषा मालूम होनी चाहिए, तभी हम उसके सूक्ष्मतम रहस्यों को पकड़ सकते हैं। आज मैं विश्व में प्रथम बार इष्ट-कृपा एवं आत्मानुभूति से कर्म की परिभाषा आपके सम्मुख रख रहा हूँ– **"किसी विशेष विचार, किसी विशेष भाव, किसी विशेष विषय अथवा किसी विशेष परिस्थिति में मानव के मन और बुद्धि में हुई प्रतिक्रियाओं का इन्द्रियों द्वारा बाह्य प्रगटीकरण ही कर्म है।''**

मैंने पहले इस व्यास गद्दी से **'कारणं कारणानाम्'** शीर्षक प्रवचन में आपके सम्मुख किसी भी सार्थक अथवा तथाकथित सार्थक कर्म के छः मुख्य अंगों का सविस्तार वर्णन किया था–**कारण, कर्त्ता, कर्म से पूर्व की वृत्ति, स्वयं कर्म, कर्म के बाद की वृत्ति तथा कर्मफल।** आज मैं यहाँ व्यावहारिक अध्यात्म आपके सम्मुख रख रहा हूँ। बड़े-बड़े ग्रन्थों, पुराणों, उपनिषदों को भूलकर आप स्वयं को देखिए। आपने भारतीय संस्कृति की विशिष्ट कृतियों में अष्टादश पुराणों के विषय में अवश्य सुना होगा, मैंने इस श्रंखला में इष्ट-आदेश से उन्नीसवां पुराण जोड़ा है–**'देह महापुराण'। ईश्वर ने ज्ञानेन्द्रियों, मन, बुद्धि, कर्मेन्द्रियों और हृदय सहित पंच महाभूतों द्वारा निर्मित यह उत्कृष्टतम मानव-देह हमें दी है। यह देह न तो हमारी सम्पदा है और न ही हमें उपहार में मिली है।** इसी देह में ब्रह्मत्व, विष्णुत्व व शिवत्व हैं। चौदह भुवन, सभी लोक-लोकान्तर, युग-युगान्तर, स्वर्ग से लेकर अपवर्ग तक और रौरव नरक से लेकर घोर नरक तक इसी देह में हैं। सभी जानवर, जलचर, नभचर, थलचरों की चौरासी लाख

योनियों का और पृथ्वी के सातों तलों, आकाश के सभी ग्रह-नक्षत्रों, वायु-मण्डल की सभी गैसों, जल के सभी तत्त्वों व अनेक प्रकार की अग्नियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व एक मानव देह में है। उस मानव-देह को पाकर हमसे एक बहुत स्वाभाविक भूल हो गई कि देह को हमने अपना स्वरूप मान लिया और देह पर अनधिकृत कब्ज़ा कर बैठे। **उस देह से हम बँध गए जो हमसे बिल्कुल भी बँधी नहीं थी।** वास्तव में कर्म-बन्धन का मूल क्या था? कर्म में हम कहाँ और कैसे बँधते हैं? यह जानना बहुत आवश्यक है।

जन्म से लेकर मृत्यु तक सुनिश्चित, सुनियोजित कार्यक्रम के अन्तर्गत ईश्वर ने इस देह को धरा पर उतारा। लेकिन बुद्धि का तथाकथित विकास होते ही हमने ईश्वर के समस्त कार्यक्रमों को नष्ट करके, अनदेखा करके अपनी योजनाएँ बनानी शुरू कर दीं। देश, धर्म जाति, परिवार, समाज और न जाने किस-किस के हम स्वयं ठेकेदार बन गए या बना दिए गए। हम कुछ न कुछ करने लगे, देह पर अनधिकृत कब्ज़ा करने के कारण हमारी अन्तरात्मा विक्षिप्त हो गई, क्योंकि इस देह की शक्तियों को सम्भालने की शक्ति हममें थी ही नहीं। मैंने अपने **'बन्धन'** शीर्षक प्रवचन में सविस्तार वर्णन किया है कि इस एक अनधिकृत कब्ज़े को पचाने के लिए हमने **इस देह के परिचय, पूर्णता, प्रमाण, प्रतिष्ठा, परिस्थितियों प्राप्तियों व पागलपन में अनेक अन्य बन्धन पाल लिए। इस प्रकार कर्म-बन्धन की असंख्य श्रंखलाओं में हम जकड़ गए।** ज़रा स्वयं के साथ ईमानदारी से बैठ कर देखिए कि आप कर क्या रहे हैं? इस देह के एक मिथ्या बन्धन को सत्य प्रमाणित करने के लिए आप मकड़ी की तरह से अपने ही बनाए कर्म-बन्धनों के जाल में उलझ कर रह गए हैं और उन्हीं बन्धनों में व्यस्त रहते हुए तथाकथित कर्मयोगी बने हुए हैं। अन्त में होता क्या है, कि समस्त जीवन हम इन्हीं कर्म-बन्धनों की जकड़न में व्यतीत कर देते हैं और एक दिन देह छूट जाती है। वही बन्धन मृत्यु के समय हमारी आसक्तियों के कारण बन जाते हैं तथा हमारी अकाल मृत्यु होती है और पुनः जन्म भी अकाल होता है। इसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरों के इस काल-चक्र में हम

भटकते रहते हैं। इसलिए **बहुत व्यस्त रहने वालो! सावधान रहना, कि देह कभी भी आपको छोड़ कर मायके चली जाएगी और फिर वापिस नहीं आएगी। शेष बस किलो या डेढ़ किलो राख ही रहेगी।**

कर्म-बन्धन की जड़ तक पहुँचने के लिए हमें कर्म के छः अंगों और मन-बुद्धि के सम्बन्धों की गहराई में जाना होगा। यदि किसी कर्म के **कारण** हम स्वयं बनते हैं, तो उसके **कर्त्ता** भी हम स्वयं ही होते हैं। किसी भी कर्म से पहले की वृत्ति विशुद्ध रूप से हमारी होती है, जोकि उस कर्म की गुणवत्ता व कार्यप्रणाली का आधार है, जिसके तहत वह कर्म होता है। **लेकिन कर्म के बाद की वृत्ति पर हमारा लेश-मात्र भी अधिकार नहीं होता, वह वृत्ति ईश्वरीय ही होती है। ईश्वर निर्धारित करता है कि इसमें कारण तत्त्व कितना था, कर्त्ता भाव कितना था, कर्म को इसने किस नीयत और कितनी लगन से किया है और उस आधार पर कर्म के बाद की वृत्ति ईश्वर ही बनाता है, जो कि हमारे कर्मफल का बीज बनती है।** इस प्रकार सार्थक अथवा तथाकथित सार्थक कर्म के छः अंग हैं। अब विचार करिए कि हम कर्म में बँधते कहाँ हैं! ईश्वर ने देह में कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ तथा अन्य शक्तियाँ कुछ करने के लिए ही दी हैं, तो देह से कर्म तो होगा, परन्तु बन्धन कहाँ होता है?

हम सभी कुछ न कुछ करते हैं, लेकिन जो होता है वह मंजूरे खुदा होता है। मैं दैनिक जीवन-व्यवहार का रहस्योद्‌घाटन आपके सम्मुख कर रहा हूँ। करते हैं हम कुछ न कुछ, बहुत व्यस्त रहते हैं। लेकिन **करने और होने में** कोई सम्बन्ध नहीं होता। आप जो कर रहे हैं, वह आप कर रहे हैं और जो होगा वह आपके हाथ में नहीं है, बिल्कुल भी नहीं है **और जो होता है उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि कुछ करना ही पड़े।** आप प्रत्यक्ष देखते हैं कि अमुक व्यक्ति बहुत ही व्यस्त रहता था, पर उसका कुछ कार्य नहीं हुआ, लेकिन अन्य कोई व्यक्ति घर में बैठा रहता है, उसके लिए सब कुछ हो जाता है। इसके लिए हम फैसला भी खुद ही सुना देते हैं कि पहला दुर्भाग्यशाली था और दूसरा सौभाग्यशाली था, क्योंकि उसने कदाचित्

पूर्व-जन्म में अच्छे कर्म किए होंगे। अच्छे कर्म, बुरे कर्म, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य के हम सभी धर्मराज बने हुए हैं। कर्मों का फैसला हम स्वयं ही करते रहते हैं, जबकि हमारे शास्त्रों ने भी कर्मों के बारे में कुछ भी कहने से इन्कार कर दिया कि–***'कर्मणाम् अगाधो गति।'*** कर्म की गति बहुत अगाध है, क्योंकि होता कुछ और है, कर हम कुछ और रहे हैं तथा **करने** और **होने** में आकाश-पाताल का अन्तर होता है।

किया बहुत कम, हो बहुत कुछ गया। करा बहुत कुछ, हुआ कुछ नहीं, किया किसी दूसरे भाव से और हुआ किसी अन्य भाव में, किया किसी और के लिए, हुआ किसी और के लिए। मैं कविता पाठ नहीं कर रहा हूं, जीवन के रहस्य आपके सम्मुख रख रहा हूँ। ऐसा क्यों होता है? हम इस परम सत्य से आँखें कैसे मूँद सकते हैं, परन्तु हम अपने तथाकथित कर्मों में इतने व्यस्त हैं कि इन प्रश्नों पर विचार करना ही नहीं चाहते, जबकि आप यह नहीं जानते हैं कि आप जो कर रहे हैं उसका क्या होगा। ईश्वर ने हमें मानव-देह दी है, इसलिए हमें यह जानना परमावश्यक है कि वास्तव में त्रुटि कहाँ है। आप नहीं जानते कि जो धन आप एकत्र कर रहे हैं, उसका इस्तेमाल कौन करेगा? जायदाद किसी के लिए बनाते हैं और उसमें रहता कोई और है। हो सकता है आपका जीवन उसके लिए मुकद्दमा भुगतते हुए ही बीत जाए। अपनी ही बनाई बिल्डिंग में आपको प्रवेश की अनुमति नहीं मिलती, Stay order लग जाते हैं। आपकी अपनी संतान पर आपका कोई हक नहीं होता। यह घर-घर की कहानी है। यदि आप इन सबका कारण जाने बिना मर गए तो निश्चित रूप से आपने अपना सम्पूर्ण जीवन निरर्थक व नकारात्मक ही बिता दिया। हम बहुत कुछ करते हैं, पर जो होता है, उसके लिए हमने कुछ किया ही नहीं होता–**'जन्म होता है, मृत्यु होती है, लाभ होता है, हानि होती है**ः–

'लाभ-हानि, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ।'

ये छः विभाग देवाधिदेव महादेव के हाथ में हैं। एक कुबड़े के कूबड़ पर किसी ने क्रोध में लात मार दी, पर हुआ क्या? उसका कूबड़ सीधा हो गया

और वह लात मारने वाले के चरणों में पड़ गया कि 'प्रभु बड़ी कृपा की।' क्या उसने कभी सोचा था कि लात मारने से उसका कूबड़ सीधा हो जाएगा और उसने कुबड़े को लात किस नीयत से मारी थी! किसी गर्भवती महिला से पूछो कि आजकल आप क्या कर रही हो? क्या वह यह उत्तर दे सकती है कि आजकल मैं गर्भ में बच्चे के पैर बना रही हूँ या हाथ बना रही हूँ। हाँ! वह यह कह सकती है कि मैं उसके लिए जुराबे बुन रही हूँ। **अतः जन्म होता है, देह बनी बनाई मिलती है। इसी प्रकार मृत्यु होती है, हम मृत व्यक्ति के लिए अर्थी बनाते हैं और मुर्दे के लिए वह बनी बनाई मिलती है।** शेष सभी दौड़-भाग करते हैं, कोई लकड़ी एकत्र करता है, कोई पंडितों को बुलाता है, कोई तथाकथित रोने वालों को चुप कराता है और मुर्दा आनन्द से लेटा रहता है। मुर्दे को सब कुछ बना बनाया मिलता है। अरे! यदि जीवन का आनन्द लेना है तो या **'शव बन जाइए या फिर शिव बन जाइए।'** दोनों कुछ नहीं करते। शिव भी कुछ नहीं करता, ***'निराकार रूपं शिवोऽहम् शिवोऽहम्।'*** बस, वह बैठा-बैठा संकल्प-मात्र करता है। ब्रह्मा, विष्णु व महेश रूप में कोटि ब्रह्माण्डों का आनन्दमय निर्माण, पालन व संहार करता है, लेकिन स्वयं कुछ नहीं करता। शास्त्र में कहा है—***ठोस-घन-शिला! 'न कित आएबो न कित जाएबो।' शिव कुछ नहीं करता, सब कुछ होता है।***

हमारे कृत्यों में त्रुटि कहाँ है? कृपया ध्यानपूर्वक सुनिए, यह इष्ट कृपा से समस्त आत्मानुभूति का विषय है। जब हमने देह के साथ बन्धन बाँध लिया, **स्वयं को देह मान लिया**, बस वहीं से सारा जंजाल प्रारम्भ हो गया। यह जाने बिना कि प्रभु ने हमको यह देह क्यों दी, हम देह के साथ तद्रूप हो गए, जबकि यह देह हमसे बिल्कुल बँधी न थी। इस देह के विषय में हम कुछ भी नहीं जानते थे, फिर भी हम इस पर अनधिकृत कब्ज़ा कर बैठे। **जब हम देह का ठेका ले लेते हैं तो देह द्वारा होने वाले प्रत्येक कर्म के कारण हम स्वयं बन जाते हैं। कर्त्ता भी हम ही होते हैं और कर्म से पहले की वृत्ति भी हमारी ही होती है और हम अपनी समस्त शक्तियों से उस वृत्ति के**

तहत वह कर्म करते हैं। ध्यान रहे, जिस कर्म के कारण हम बनते हैं, उसमें हमारी कौन सी शक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं? वही शक्तियाँ जो हमारी निजी होती हैं और हम अपनी निजी शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक शक्तियाँ भी पूर्णतः नहीं लगा सकते, क्योंकि वे शक्तियाँ भी हमारे कर्म से पहले की वृत्ति पर निर्भर रहती हैं। यदि हमारा मूड खराब है, तो हम कर्म में अपनी सम्पूर्ण बौद्धिक, शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक शक्तियों को भी नहीं लगा सकते। मैं, स्वयं कार्य करने की हानियों में से पहला आयाम बता रहा हूँ। **फिर हमने कर्म किया और उस कर्म से जो मिला अथवा जो खोया, उसको हम कर्मफल मान लेते हैं।** बहुत महत्त्वपूर्ण है, जब कर्म के कारण व कर्त्ता हम स्वयं बनते हैं तो कर्म से पहले की वृत्ति भी हमारी होती है। उन भावों के परिवेश में अपनी गिनी-चुनी शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक शक्तियों से कर्म करते हुए उस कर्म से हुई प्राप्तियों अथवा नुकसान को ही हम कर्मफल मान लेते हैं, जो कि महामूर्खता है। **कर्मफल वास्तव में उस प्राप्ति अथवा खोने के बाद की आपकी मानसिक स्थिति है।**

मैंने कई उदाहरण अपने प्रवचनों में दिए हैं कि अभीष्ट प्राप्ति के बाद भी कई बार हम विक्षिप्त हो जाते हैं और अनेक बार हुआ नुकसान भी किसी विशेष आनन्द के लिए होता है। धन बहुत कमा लेते हैं और फिर तनावित हो जाते हैं। अंगरक्षक रखते हैं, घर में सुरक्षा के उपकरणों को लगाते हैं क्योंकि भय व्याप्त हो जाता है कि इसे सम्भालें कैसे? **दैवीय कानून के तहत जिस कर्म के कारण आप स्वयं बनेंगे, उस कर्म से हुई प्राप्ति को आप कभी भी भोग ही नहीं सकते।** ये किसी सरकार के बनाए कानून नहीं हैं। यह देह ईश्वर की दी हुई है और इसका हर कानून ईश्वर द्वारा ही लागू किया जाता है। **करोड़ों वर्ष पहले भी यह सत्य था, आज भी है और जब तक यह दुनिया कायम है, तब तक रहेगा। युगों-युगान्तरों में ये सत्य नहीं बदलेंगे।** इस देह की किसी भी विधा में आप हस्तक्षेप नहीं कर सकते। **आप अपनी देह के कारण नहीं हैं तो देह द्वारा होने वाले किसी भी कृत्य के कारण यदि आप बनेंगे तो उसके तहत जो भी प्राप्ति होगी, उसका**

आप भोग नहीं कर सकते। प्राप्ति आपको अवश्य होगी मगर वह प्राप्ति आपको भोग तो दूर, चैन से जीने भी नहीं देगी।

अब सुनिए कि और हानि क्या हुई? प्राप्ति हुई, उसमें आपका यह भाव रहेगा ही कि मैंने यह प्राप्त किया। मैंने इतना धन कमाया, मैं बहुत उत्कृष्ट डाक्टर, वकील या शिक्षक हूँ। मैंने यह पद प्राप्त किया, मैंने अपने बेटे को यह बना दिया। **जब आप कर्म के कारण बनेंगे तो यह भाव स्वतः ही आ जाएगा और इस भाव का आना दैवीय दृष्टि में अपराध है।** आपके ईश्वरीय मानस में इस भाव से विपरीत प्रतिक्रिया होगी। हमने न्यूटन का नियम बताया था कि जब किसी गेंद को हम दीवार पर मारते हैं तो दीवार उतनी ही शक्ति से गेंद को हमारी ओर फेंकती है। "Every action has got equal and opposite reaction." जब यह भाव आएगा कि यह मैंने किया है तो उसी अनुपात में विपरीत प्रतिक्रिया आपके मानस में होगी। वह कोई न कोई उत्पाद बनकर आपके जगत में प्रकट हो जाएगी। जैसेकि यदि आप में अहं आया कि मैं बहुत अच्छा अध्यापक हूँ, तो भगवान आपके यहाँ कोई ऐसा मूर्ख बच्चा पैदा कर देगा जिसे पढ़ाना आपके लिए महा-चुनौती होगी। ऐसा होने पर आप घबरा जाते हैं और कह उठते हैं, कि मैंने अवश्य कोई बुरे कर्म किए होंगे। कर्मों को आप यहाँ भी नहीं छोड़ते। यह घर-घर की कहानी है। आपका अहं ही आपके सामने रूप धारण कर प्रकट हो जाता है।

आज बहुत बडे भ्रम का निराकरण कर रहा हूँ—बुरे कर्मों और अच्छे कर्मों का आप सब स्वयं फैसला करते रहते हैं। वस्तुतः आपको ज्ञात ही नहीं है, कि वास्तव में त्रुटि कहाँ है? जो काम आपने अहं से किया तो ईश्वरीय मानस, जो आपका अपना मन बन चुकता है, उसमें प्रतिक्रिया होती है। जो कोई न कोई विपरीत उत्पाद बनकर आपके सम्मुख प्रकट हो जाती है। इतिहास गवाह है बादशाह अकबर, चौदह वर्ष की आयु में हिन्दुस्तान का बादशाह बना। उसे अहं हो गया, वह स्वयं को मुगले आज़म, शाहे-आलम और न जाने क्या-क्या समझ बैठा और उसके घर में सलीम जैसा बेटा पैदा हो गया, जो सात साल की उम्र में शराबी होकर तमाम दुर्व्यसनों में घिर

गया। अहं से कोई न कोई विपरीत उत्पाद अवश्य सामने आता है, जो आपको मरने भी नहीं देता और जीने भी नहीं देता। छत्रपति शिवाजी कितने महान शासक थे, उनके घर सम्भाजी पैदा हुए। कभी भी जब आप देंखे कि आप स्वयं बहुत अनुशासित और काबिल हैं, पर आपकी संतान ऐसी क्यों नहीं है? इसके जिम्मेदार आप स्वयं ही हैं, क्योंकि आपका अभिमान आपके मानस में विपरीत प्रतिक्रिया बनकर आपके सामने अवश्य आएगा, आप छूट नहीं सकते। आपके मन में यह भाव आया कि मैं बहुत ही काबिल पुलिस आफिसर हूँ, मैंने इलाके के चोर-उचक्के सब साफ कर दिए हैं, तो आपके अपने घर में ही कोई ऐसी अपराधी प्रवृत्ति की औलाद पैदा हो जाएगी, जिसकी चिन्ता में आप मर भी नहीं पाएँगे।

इस प्रकार किसी भी कृत्य का **कारण** स्वयं बनने से पहला नुकसान यह हुआ कि जो भी प्राप्ति हुई, उसे आप भोग नहीं सके और चैन से जी नहीं सके। दूसरे, अहं के कारण हुई मानसिक विपरीत प्रतिक्रिया के उत्पाद ने आपका मरना भी दूभर कर दिया। आप तनावित ही रहेंगे कि मेरे बाद पता नहीं मेरे लड़के का क्या होगा? व्यक्ति वर्षों तक लटकता रहेगा, प्राण नहीं छूटेंगें, डाक्टर परेशान हो जाएँगे क्योंकि उसकी वृत्ति वहीं फंसी रहेगी कि मेरे बाद क्या होगा? मेरी प्रौपर्टी का, पद का क्या होगा? मेरे नर्सिंग-होम की देखभाल कौन करेगा, मेरी फैक्टरी कौन सम्भालेगा? वगैरह-वगैरह।

अब और मुसीबत क्या होगी? जब आपने स्वयं को कारण माना, कर्त्ता बने, कर्म के पहले की वृत्ति आपकी थी, कर्म आपने अहं से किया और उसके तहत आपने जो पाया अथवा खोया, उसे ही आपने कर्मफल मान लिया तो उसी समय दैवीय संस्थाएँ आपको अलग लाइन में खड़ा कर देती हैं और आपका चालान होता है। आपकी केस फाइल बनती है, जिसका नाम है **'प्रारब्ध।'** जैसे कभी आप सड़क पर लाल बत्ती पार करें तो पुलिस वाले आपकी गाड़ी सड़क पर साइड में लगवा कर चालान करते हैं। ठीक उसी प्रकार दैवीय संस्थान आपके जीवन की गाड़ी किनारे लगाकर आप पर केस चलाते हैं। आपने इस देह पर अनधिकृत कब्ज़ा करने की जुर्रत कैसे की।

वहाँ कोई सफाई नहीं चलती, वहाँ दूध का दूध, पानी का पानी अलग किया जाता है।

प्रारब्ध जड़ और चेतन की ग्रन्थि का नाम है, जिसका मैं सविस्तार वर्णन कर चुका हूँ। सच्चिदानंद ईश्वर की सृष्टि में कुछ भी जड़ नहीं है सब कुछ सत्य है, चेतन है, व आनन्द ही आनन्द है। ईश्वर से विमुखता ही जड़ता है, क्योंकि ईश्वर तो एक पल के लिए भी हमसे विलग नहीं होता। हम उससे विमुख हुए तो असत्य, जड़ व दुखी हो गए और अपने ही सच्चिदानंद-स्वरूप से कट गए। जब आपने स्वयं कर्त्ता व कारण बनकर कार्य किया, वह जड़ता थी, मगर ईश्वर हमारे साथ अवश्य था। अतः जड़ और चेतन की ग्रन्थि बन गई, जिसका नाम था **'प्रारब्ध'**। वास्तव में वह आपकी केस फाइल थी जो आपके मरने के बाद भी आपके साथ जाती है और उसी फाइल के अनुसार अगले जन्म में आपके गर्भाधान से लेकर अस्थि-विसर्जन तक का सम्पूर्ण प्रकरण अंकित रहता है। **पहले जो प्राप्ति की, उसे भोग न पाने के कारण आपका जीना मुश्किल रहा और मानसिक प्रतिक्रिया के उत्पाद ने आपका मरना भी दूभर कर दिया तथा तीसरा जो प्रारब्ध-रूप में केस फाइल बनी, उसने आपका अगला जन्म भी दुश्वार कर दिया।** दैवीय संस्थान आपको ऐसे नहीं छोड़ते। आपको मानव-देह दी गई है। आपको कुत्ता, बिल्ली, साँप, चूहा, मच्छर क्यों नहीं बनाया? आपको यह ज्ञात होना परमावश्यक है कि आप जानवरों से कुछ पृथक हैं। आपको विशेष प्रतिभाएँ, गुण, अक्ल-शक्ल व चाल-ढाल दी गई हैं। आप पशुओं से पृथक हैं। आप विचार कर सकते हैं कि आप स्वयं कुछ भी नहीं कर सकते, क्योंकि देह के **कारण** आप स्वयं नहीं हैं। फिर देह-द्वारा होने वाले कृत्यों के **कारण** आप स्वयं कैसे बन सकते हैं? यदि बनेंगे तो वही उपर्युक्त तीन बातें होंगी—**न जी सकेंगे, न मर सकेंगे और मरने के बाद भी कहाँ छूटेंगे! प्रारब्ध तो साथ चलेगा ही ना!**

करते कुछ और हैं, होता कुछ और है। यदि आपको जीवन में कुछ कष्टों का सामना करना पड़ रहा है तो **कर्मों को** मत कोसना, **अपने कर्मों**

को कोसना। बड़ा तकनीकी विषय है। हम किसी न किसी सार्थकता के लिए कर्म करते हैं। अपनी सुख-शान्ति के लिए कर्म करते हैं लेकिन जब हम स्वयं करते हैं और यह भाव रहता है कि यह मैंने किया है, तो यह अहं दैवीय दृष्टि से अपराध है। **जो भी मानव-जीवन में कष्ट हैं वे इस कर्म-बन्धन के कारण हैं कि मैंने किया है। अब क्या हम कुछ ना करें? निठल्ले खाली बैठे रहें? कि 'हाँ', ईश्वर कराएगा आपसे कर्म। क्या आप स्वयं पैदा हुए हैं? नहीं ना और नौ महीने में ईश्वर ने क्या चमत्कारिक देह बना दी, जिसका आप एक बाल, एक नाखून तक नहीं बना सकते।** आप स्वयं से पूछिए कि एक मकान बनाने में अच्छा भला आदमी पागल हो जाता है। जिसने नौ महीने में माँ के गर्भ में एक सैल से देह व देह की छः बड़ी-बड़ी कार्य-प्रणालियाँ बना दीं। जन्मों-जन्मान्तरों के संस्कार, भूत, भविष्य न जाने क्या-क्या बना दिया। उसके कृत्यों को क्या आप कर सकते हैं? **असम्भव! अरे! इस देह को उसके हाथों में छोड़ दीजिए। वह क्या करवाना चाहता है, आप नहीं जानते।** आप ध्यान दीजिए, प्रतीक्षा करिए! लेकिन इसका हमारे पास समय ही नहीं है:–

'नानक दुखिया सब संसार, सो सुखिया जो नाम आधार।'

प्रभु का नाम-जाप करने से आपकी अपनी बुद्धि की उधेड़-बुन शान्त हो जाती है। नहीं तो आप स्वयं कुछ न कुछ करते रहना चाहते हैं। आप स्वयं कुछ मत करिए, ईश्वर को करने दीजिए। अब इस बात को बहुत ध्यान से पकड़ना है कि ईश्वरीय कृत्यों और मानवीय कृत्यों में अन्तर क्या है? **जो काम ईश्वर ने आपकी देह द्वारा करवाना होगा, वह कार्य तीन आनन्दों में होगा और वह कार्य स्वतः होगा। आपके मन में विचार भी नहीं होगा कि आज के दिन में मुझसे यह कार्य होने वाला है। ईश्वर बैठे-बिठाए आपकी बुद्धि में प्रेरणा देते हैं।** ईश्वर विचार नहीं देते, क्योंकि जिस समय आप अपनी आई.-क्यू. वाली बुद्धि से जुगाड़ लगाते हैं कि अवसर अच्छा है, मुझे हाथ मार लेना चाहिए। तो उस कृत्य के **कारण** आप होंगे, **कर्त्ता** आप होंगे और वही उपर्युक्त तीन मुसीबतें खड़ी हो जाएँगी। प्राप्ति का भोग नहीं

होगा, जो जीने नहीं देगा, मानसिक विपरीत प्रतिक्रिया का उत्पाद आपको मरने नहीं देगा और साथ ही केस-फाइल भी बनेगी **'प्रारब्ध'**, जिससे अगला जन्म भी दुश्वार हो जाएगा।

जब ईश्वर ने कोई कार्य आपसे करवाना होगा तो ईश्वर आपको प्रेरणा देंगे। एकदम एक करंट सा आएगा कि यह कार्य कर लो। उस प्रेरणा का प्रमाण क्या है कि वह ईश्वरीय है या नहीं? **उस एक कृत्य में जो धन, जगह, प्रतिभाएँ तथा जो व्यक्ति अथवा मित्र, साथी चाहिएँ उन सबको उसी समय वह प्रेरणा रूपी करंट पहुँचेगा।** जैसेकि एक सरकारी पत्र की नकल एक ही समय में सभी सम्बन्धित विभागों के कर्मचारियों को भेज दी जाती है। आपको प्रेरणा मिलते ही सभी सम्बन्धित व्यक्तियों के स्वतः ही फोन आने प्रारम्भ हो जाएँगे। इसलिऐ प्रेरणा होने के बाद भी हड़बड़ी मत कीजिए, प्रतीक्षा कीजिए। आपको ज्ञात हो जाएगा कि यह कार्य ईश्वर मेरे-द्वारा करवाना चाहते हैं और वह कार्य स्वतः होगा। आपको मात्र उसमें हाथ लगाना होगा, पर आपको श्रेय बहुत मिल जाएगा। **ईश्वर-द्वारा करवाया हुआ कार्य, किया हुआ नहीं होगा बल्कि हुआ-हुआ होगा।** जैसे जन्म होता है, मृत्यु होती है, लाभ होता है, हानि होती है, यश मिलता है, अपयश होता है। **ईश्वर द्वारा किया हुआ कार्य हुआ-हुआ होगा। आप उस कार्य के निमित्त बनेंगे और उस कार्य के तहत आपको जो प्राप्त होगा वह आनन्दमय होगा, जो खोएगा वह भी आनन्दमय होगा। प्राप्ति आनन्दमय, खोना आनन्दमय, रोना आनन्दमय, हंसना आनन्दमय क्योंकि वह कार्य उस सरकार ने करवाया है, जो सच्चिदानंद है।** वह कार्य और उसके समस्त अंग आनन्द से परिपूरित होंगे। कितना आकाश-पाताल का अन्तर आ जाता है, आपके किए गए कार्यों में और ईश्वर-द्वारा करवाए गए कार्यों में।

मैं अपनी इस बात की पुष्टि के लिए आपको महाभारत के युद्ध के परिदृश्य में ले जा रहा हूँ। युद्ध से पूर्व अर्जुन और दुर्योधन दोनों भगवान से सहायता मांगने के लिए गए। भगवान ने एक को अपनी चतुरंगिणी सेना देने

का करार किया और दूसरे को इस शर्त के साथ स्वयं अपने को देने का वादा किया, कि मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा। पहला चुनाव करने का अधिकार उन्होंने अर्जुन को दिया। अर्जुन ने भगवान को मांग लिया, जबकि अर्जुन तब तक श्रीकृष्ण को मात्र अपना सखा समझता था। उसे उनके ईश्वरत्व का बोध नहीं था। वह श्रीकृष्ण को अपना परम हितैषी, सर्वसम्पन्न व सशक्त सखा एवं विद्वान के रूप में जानता था। महत्त्वपूर्ण यह है कि कृष्ण के ईश्वरत्व को न जानते हुए भी अर्जुन ने कृष्ण को मांगा और भगवान ने अपनी चतुरंगिणी सेना दुर्योधन को दे दी। जब युद्ध के मैदान में अर्जुन ने कौरव-पक्ष में अपने भाई-बन्धुओं, आचार्यों, गुरु, पितामह आदि को देखा तो वह अपना गाण्डीव छोड़कर माथे पर हाथ रखकर बैठ गया, कि हे कृष्ण! मैं युद्ध नहीं करता। तब मोह में पड़े उस अर्जुन को श्रीकृष्ण ने कृपावश अपने श्रीमुख से वहीं युद्ध के मैदान में गीता का उपदेश दिया। जहाँ दोनों ओर सेनाएँ एक दूसरे का खून पीने के लिए तैयार खड़ी थीं। गीता का उपदेश पहले अर्जुन के बिल्कुल भी पल्ले नहीं पड़ा, जबकि मात्र अर्जुन ही गीता सुनने का अधिकारी था।

श्रीकृष्ण के लिए अब बड़ा धर्म-संकट खड़ा हो गया, क्योंकि अर्जुन श्रीकृष्ण को अपना मन उस समय समर्पित कर चुका था, जबकि उसे श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व का ज्ञान ही नहीं था। अतः अर्जुन को श्रीकृष्ण ने विजय तो दिलानी ही थी, श्रीकृष्ण को चिंता अर्जुन के कर्म न करने से नहीं हुई कि यह युद्ध नहीं करेगा तो युद्ध कैसे जीता जाएगा? क्योंकि मान लो अर्जुन बीमार पड़ जाता और शारीरिक रूप से असमर्थ हो जाता तो क्या महाभारत का युद्ध नहीं जीता जाता? आखिर तो अर्जुन एक सैनिक, एक उत्कृष्ट सिपहसालार ही तो था। यह थोड़ा कि सम्पूर्ण युद्ध पाण्डव हार जाते। कौन सा महाभारत का युद्ध मात्र अर्जुन के गाण्डीव धनुष से जीता गया! आज मैं गीता के विषय में फैली समस्त भ्रान्तियाँ दूर कर रहा हूँ। गीता में कर्मवाद का जो प्रचार-प्रसार करते हैं, उन्हें अपने दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करना चाहिए। जितने दिन युद्ध हुआ, यदि अर्जुन बीमार ही पड़ा

रहता या अन्य सैनिकों की तरह पहले ही दिन मार डाला जाता तो भी युद्ध तो पांडवों को ही जीतना ही था। अतः गीता कर्मवाद पर नहीं है। **श्रीकृष्ण को चिंता यह थी कि अर्जुन युद्ध का कारण स्वयं को मान रहा है, जबकि युद्ध का कारण मैं हूँ। यदि यह स्वयं को युद्ध का कारण मानेगा तो युद्ध तो इसने जीतना ही है, परन्तु युद्ध के फलस्वरूप मिले राज्य का भोग दैवीय अधिनियमानुसार कर ही नहीं पाएगा, वे तीनों धाराएँ लागू हो जाएँगी।** इसलिए श्रीकृष्ण ने वहीं युद्ध के मैदान में अर्जुन को दिव्य-दृष्टि देकर अपना विराट स्वरूप व अपने ईश्वरत्व का दर्शन कराया, क्योंकि श्रीकृष्ण को अर्जुन पहले ही अपना मन समर्पित कर चुका था। श्रीकृष्ण के आगे यही धर्मसंकट उपस्थित हो गया कि अर्जुन यद्यपि नहीं जानता था, कि 'मैं ईश्वर हूँ', उस वक्त इसने मन समर्पित किया है तो इसे मेरे ईश्वरत्व का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। श्रीकृष्ण के उस विराट स्वरूप में अर्जुन ने कई अर्जुनों, कई दुर्योधनों को देखा, बड़े-बड़े महारथियों को मरते देखा और अनेक लोक-लोकान्तरों व युग-युगान्तरों को देखा। **श्रीकृष्ण ने यह स्वरूप दिखाकर अर्जुन को जनवाया कि युद्ध का कारण मैं हूँ, मारने वाला, मरने वाला, अर्जुन व दुर्योधन मैं ही हूँ और मैं सब लीला रच चुका हूँ।** यदि तू युद्ध नहीं भी करेगा तो मैं तेरी जगह दूसरा अर्जुन रच दूँगा। युद्ध होगा, क्योंकि मैं चाहता हूँ युद्ध। इसका कारण मैं हूँ, मैं भगवान हूँ। अर्जुन को जब ज्ञान हुआ कि युद्ध का कारण मैं नहीं हूँ तो उसने उल्लसित हृदय से गाण्डीव उठाकर युद्ध किया और उसके फलस्वरूप प्राप्त राज्य का आनन्दपूर्वक भोग भी किया।

भगवान वस्तुतः अर्जुन को कारण के विषय में ही समझाना चाहते थे कि युद्ध का कारण स्वयं को मानेगा तो युद्ध के बाद प्राप्त विजय और राज्य को भोग नहीं सकेगा। **'गीता' कर्म पर नहीं 'कारण' पर है।** यदि आप संसार के फलों का आनन्दपूर्वक भोग करना चाहते हैं तो **स्वयं कभी भी, किसी भी कर्म का कारण नहीं बनना, क्योंकि आपकी देह का भी कोई कारण है।** मैंने स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तीन देह बताईं थीं। जिस नाम-रूप

की देह को आप अपना मानते हैं, आप जिसे दौड़ा-भगा रहे हैं, उसका भी जो कारण है, उस **'कारण'** से आप क्यों नहीं जुड़ते। क्या आपने अपनी देह स्वयं बनाई है? बड़े प्रसन्न होते हैं कि आज मेरा जन्म-दिन है, यदि पूछो कि मरने का दिन कौन सा है? तो मुँह लटक जाता है। आप अपने जन्म, मृत्यु, विवाह, शादी, शिक्षा-दीक्षा, पद, व्यवसाय, दोस्त, दुश्मन यहां तक कि अपनी एक श्वास के भी कारण नहीं हैं। जो आपकी देह का **'कारण'** है, जो आपका सच्चिदानंद स्वरूप है, वह अदृश्य है। लेकिन आपकी स्थूल देह और उस पर आधारित समस्त सूक्ष्म-जगत दृश्यमान है। उस अदृश्य **'कारण'** को आप उपेक्षित नहीं कर सकते। यदि आप करेंगे तो आप न जी सकेंगे, न मर सकेंगे और न ही अगले जन्म में चैन ले सकेंगे।

जब आप स्वयं को कारण मानकर और स्वयं कर्त्ता बनकर कर्म करते हैं तो आपके मन एवं बुद्धि में जो प्रतिक्रियाएँ होती हैं, उनके स्थूल रूप से छः आयाम हैं। इन्हें समझने के लिए आप अपने घर का परिदृश्य देखिए। गृहस्थ में पति-पत्नी क्रमशः मन व बुद्धि के प्रतीक हैं। किसी भी परिस्थिति, भाव, विचार या विषय में पति-पत्नी में होने वाली प्रतिक्रिया का पहला आयाम यह होता है कि पति व पत्नी दोनों की सहमति होती है। जैसेकि पति ने कहा कि मैं यह काम करना चाहता हूँ तो पत्नी ने भी हर्षित होते हुए कहा कि मैं भी यही सोच रही थी। (ऐसा वास्तव में कम ही होता है) तो **पहले** आयाम में मन और बुद्धि में प्रसन्नतापूर्वक सहमति होती है। ये वे कर्म हैं जिनके कारण आप स्वयं बनते हैं। **दूसरे** आयाम में पति-पत्नी दोनों में असहमति होती है। यह भी बहुत शुभ है और दुर्लभ है। क्योंकि आजकल जो पढ़ी-लिखी गृहणियाँ हैं उन्हें अपनी बुद्धि लगाने का बहुत शौक होता है, उन्होंने अपना मत अवश्य रखना होता है। **तीसरे,** एक की सहमति हो कि मैं ऐसा करना चाहता हूँ और दूसरा प्रेमपूर्वक तटस्थ हो, कि ठीक है आप जो निर्णय लेंगे वह उचित ही होगा, मेरी बुद्धि कोई काम नहीं करती। मुझे आपमें विश्वास है। आप जो कुछ भी करते हैं, वह शुभ ही होता है। आप यह भी अवश्य करें। यह स्थिति भी कम ही होती है। **चौथे,** एक की सहमति हो

लेकिन दूसरे की व्यंग्यपूर्वक, कटाक्षपूर्ण असहमति हो। मैं यह करना चाहता हूँ तो उत्तर मिले आपने कौन सा मेरी बात माननी है, कर लीजिए जैसा आप चाहें, मुझसे पूछने की क्या आवश्यकता है। यह एक आम स्थिति है। **पाँचवे,** एक की सहमति हो और दूसरा विरोध जताए कि आप गलत कर रहे हैं, मुझे पसन्द नहीं है। **छठा,** आयाम है कि एक की सहमति हो और दूसरा न केवल विरोध जताए, बल्कि उसके विपरीत आचरण करने की धमकी दे कि आप ऐसा कर के देखिए, मैं इससे विपरीत करूँगी। यह आयाम बहुत ही आम है। घरों में, परिवारों में कलह का मुख्य कारण यही है कि आजकल बुद्धि बहुत ज्यादा तीव्र हो गई है।

जिन कर्मों में आप स्वयं कारण बनते हैं, उनमें मन-बुद्धि की क्रिया-प्रतिक्रिया के ये छः आयाम हैं। किसी कर्म के बाह्य जगत में आपकी इन्द्रियों द्वारा प्रगटीकरण के पूर्व आपके मन और बुद्धि के पारस्परिक सम्बन्धों के उपर्युक्त विभिन्न आयाम आपको दृष्टिगत होंगे। कई लोग ऊत-पटांग कर्म करते हैं। आज यह कर लिया कल उसी का विरोध कर दिया। फिर कुछ और कर दिया तो समझ लेना चाहिए कि उसके मन व बुद्धि में कलह मची हुई है। किसी को क्या समझाना है, हम सब स्वयं अपने को देखें। जब आप किसी कर्म के कारण और कर्त्ता बनेंगे तो कभी भी आपके मन-बुद्धि का परस्पर सामंजस्य हो ही नहीं सकता। पहले तो उस कर्म के बाद जो प्राप्ति होगी, उसी को अभीष्ट फल मान लेंगे जबकि कर्मफल उस कर्म के होने के बाद कुछ भी प्राप्त होने अथवा खोने पर बनी हुई आपकी मानसिक स्थिति है। **बड़ा अच्छा हुआ यह काम नहीं बना या बहुत अच्छा हुआ यह काम बन गया, मैं बहुत खुश हूँ।** उस स्थिति को उत्साह कहा है–**आनन्द-मिश्रित कर्म को उत्साह कहते हैं और आनन्दपूर्ण कष्ट का नाम है–'तप'।** प्रभु के ध्यान में, साधना व उपासना में साधक बहुत कष्ट सहते हैं। अल्पाहार करते हैं, अल्प-निद्रा लेते हैं लेकिन आनन्दित रहते हैं, उसी कर्म को तप कहा जाता है। **उत्साह और तप में कोई विशेष अन्तर नहीं है। जो कर्म आनन्दयुक्त होगा वह आपको, आपके कर्म-बन्धन से मुक्त कर**

देगा, जिस प्रकार कि तप आपको अपने कर्म-बन्धनों से मुक्त कर देता है। उत्साह क्या है? कि जो भी कर्म करें आपको आनन्द आए, उसके फल की इच्छा भी न हो। यदि पूछा जाए कि आप क्या चाहते हैं, कि मैं कुछ नहीं चाहता, प्रभु करवा रहे हैं, इसलिए कर रहा हूँ।

सरदार भगत सिंह, चन्द्र शेखर आज़ाद, राजगुरु देश की स्वतन्त्रता के लिए शहीद हुए। उन्हें देश की स्वतन्त्रता के लिए वे कर्म करते हुए अच्छी तरह से ज्ञात था कि अपने जीवन-काल में वे स्वतन्त्रता का मुँह नहीं देख पाएँगे, लेकिन फिर भी आनन्द में उन्होंने स्वयं की बलि दे दी, प्राण न्यौछावर कर दिए। यह था आनन्दमय कर्म और वे महायोगी, कर्मयोगी थे। उत्साहपूर्वक फांसी के फंदे पर लटक गए। आज हम स्वतन्त्र भारत में सांस ले रहे हैं और उस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग कर रहे हैं। जिन्होंने स्वतन्त्रता-प्राप्ति में **कारण** होने की डींग हांकी, उन्हीं का उत्पाद हैं—आज के नेतागण। **आपको स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कर्म में बन्धन मात्र अहं का है, कारण व कर्त्ता भाव का है।**

आज इस व्यास-गद्दी से हम आपको आशीर्वाद देते हैं कि आपका जीवन तपोमय हो, आनन्दमय हो। आप हर कार्य आनन्द में करें जिसके लक्षण ये हैं कि वे कार्य स्वतः होंगे और तीन आनन्दों से युक्त होंगे। उनमें आप कुछ पाएँगे तो आनन्द और खोएँगे तो आनन्द। कष्ट में, सुख में, दुख में आनन्द ही आनन्द होगा। आपका जीवन आनन्द से शुरू होगा, आनन्द में चलेगा और आनन्द में ही समाप्त होगा।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(25 अप्रैल, 2004)

सिद्धि

(भाग – 1)

आज अपने इष्ट व परम सद्गुरु की प्रेरणा तथा आदेशानुसार उन्हीं के श्रीचरणों की कृपा एवं आप सब अति जिज्ञासुओं की महाजिज्ञासावश एक परम दुर्लभ व गहन विषय का उद्घाटन कर रहा हूँ, जिसके लिए हमें यह मानव-देह मिली है। विषय है—**'सिद्धि'**। यह सिद्धि क्या है, इसकी आवश्यकता क्या है, साधक कौन है, साधन व साधना क्या है, श्रद्धा क्या है, साध्य क्या है, सद्गुरु की क्या भूमिका है, सिद्धि के सोपान क्या हैं और सिद्ध कौन है? इन समस्त अति गम्भीर, विशिष्ट व परम उपयोगी विषयों पर प्रभु-कृपा से प्रकाश डालूँगा। आपकी असीम एकाग्रता वांछनीय है। आध्यात्मिक दृष्टि से ऐसे विषय सार्वजनिक रूप से उद्घाटित नहीं किए जाते। निःसन्देह आप सब परम जिज्ञासु हैं, इसलिए इन विषयों को स्वतः अनावृत करने की इच्छा होती है। इस भारत-भूमि के ऋषियों, मनीषियों, तपस्वियों एवं साधकों ने हिमालय की कन्दराओं व गंगा-यमुना के तटों पर साधनारत रहते हुए अपनी देह व जीवन को गला दिया, तभी इन तथ्यों की झलक पाई। भारत के अतिरिक्त कहीं भी इन तथ्यों का उद्घाटन नहीं हुआ।

सिद्धि शब्द **'सद्'** से व्युत्पन्न है, हमारे जीवन का सत्य क्या है? सद् का अंग्रेजी अनुवाद 'Truth' नहीं है। वस्तुतः अंग्रेज़ी में **'सद्'** शब्द है ही नहीं। जहाँ हम सद् कहते हैं तो उसमें चेतन और आनन्द का अदृश्य रूप से स्वतः समावेश हो जाता है, क्योंकि बिना चेतन व आनन्द के सद् प्रकट हो ही

नहीं सकता। यह तीनों सूत्रबद्ध हैं। सद् साकार प्रकट होता है तथा चेतन व आनन्द अदृश्य व निराकार रूप से रहते हैं। मन आनन्द का स्त्रोत है और बुद्धि चेतनता की द्योतक है। आपके आनन्दमय मन और सम्पूर्ण ईश्वरीय चेतनता से परिपूरित बुद्धि का समन्वय जब आपकी इन्द्रियों द्वारा शब्दों, लेखनी, विभिन्न प्रतिभाओं, संगीत, नृत्य, चित्रकला, शिल्प आदि विभिन्न कलाओं के रूप में बाह्य जगत में प्रकट होगा, तो वह सद् ही होगा।

हमारे जीवन का सत्य क्या है? उस सत्य को आज नहीं तो हज़ार, लाख, करोड़ अथवा कितने भी जन्मों के बाद हमको कभी न कभी किसी भी तरह से अवश्य सिद्ध करना होगा। नहीं तो हम जन्मों-जन्मान्तरों में भटकते हुए जीते रहेंगे और मरते रहेंगे। आपको स्पष्ट हो गया होगा कि **यह सिद्धि भूत-प्रेतों की सिद्धि नहीं है, बल्कि जीवन के परम व अभीष्ट अन्तिम सत्य की अवधारणा की सिद्धि है। हमारे 'कारण', हमारे ईश्वर की अवधारणा की सिद्धि है।** जब कोई रोगी किसी चिकित्सक के पास पहुँचता है तो उसको अपनी बीमारी का आभास होना तथा उससे कष्ट होना परमावश्यक है। नहीं तो वह डॉक्टर के पास क्यों जाएगा! यह सम्पूर्ण जगत हमारे **'कारण'** ईश्वर की निराकार चेतना व निराकार आनन्दमय मानस के समन्वय से उत्पन्न हुआ है, अतः स्वयं में सत्य, चेतन व आनन्दमय है। यहाँ एक बहुत गहन व गम्भीर प्रश्न किसी भी जाग्रत व सचेत मानव को बेचैन करने के लिए पर्याप्त है। यह जिज्ञासु की नींद उड़ा सकता है। इसका उत्तर पाने के लिए उसे अपना सब कुछ दाँव पर लगा देने को विवश कर देता है कि जब मेरा और मेरे जगत का **'कारण'** सच्चिदानंद है, जन्म-मृत्यु से रहित है, तो मैं जन्मता-मरता क्यों हूँ? मैं जड़, असत्य व दुःखी क्यों हूँ? मेरा **'कारण'** परम सौन्दर्यवान, ज्ञानवान, शक्तिवान, ऐश्वर्यवान, ख्यातिवान व त्यागवान है तो मैं ऐसा क्यों नहीं हूँ? वह **'कारण'** देहातीत, कालातीत, मायातीत है तो मैं धर्मों, कर्मों, सम्बन्धों, देश, काल, कर्त्तव्यों व माया में बँधा हुआ क्यों हूँ? सत्य से असत्य, चेतन से जड़ और आनन्द से दुःख व रोग

कैसे प्रकट हो गए? जब यह कष्ट, हृदय व रूह में उतर कर आपको विदीर्ण कर देता है, आर्तनाद व हूक पैदा कर देता है, कि मैं कौन हूँ? उस समय आपको अपने सच्चिदानंद स्वरूप, अपनी कारण-देह के सम्मुख होने की जिज्ञासा होती है, जिसे सिद्ध करना बहुत आवश्यक है। यदि आप आनन्दपूर्वक जीना चाहते हैं, इसके एक-एक पल का आनन्द लेना चाहते हैं, तो आपको अपनी आनन्दमय कारण-देह, अपने उच्चतम केन्द्र सच्चिदानंद-स्वरूप ईश्वर के सम्मुख होना तथा उसे सिद्ध करना ही पड़ेगा, किसी भी तरह से या सब तरह से।

आज विश्व में प्रथम बार इस व्यास-गद्दी से मैं सिद्धि की परिभाषा दे रहा हूँ–**'जीवन के अभीष्ट एवं अन्तिम परम सत्य की अवधारणा की पुष्टि, प्रमाण एवं सत्यापन का नाम सिद्धि है।' "Siddhi is the confirmation, Certification and attestation of acceptance of the last and final *'Sadh'* (सद्) of life"** यही हमारे जीवन का लक्ष्य है क्योंकि जब तक हम अपने उस निराकार व अदृश्य कारण शरीर, अपने सच्चिदानंद-स्वरूप की सिद्धि नहीं कर लेते तब तक हम जन्म-जन्मान्तरों के काल-चक्र में भटकते व कष्ट पाते रहेंगे। **'सिद्धि'** के इस समस्त व्याख्यान का लक्ष्य यही है कि किस प्रकार हम अपनी उस अदृश्य कारण-देह, जो पंच-महाभूतों से परे है, जो खो सी गई है, उससे पुनः सम्बन्ध स्थापित करें और उसे सिद्ध करें। इसका वर्णन करने से पूर्व ईश्वर की इस परम विलक्षण व चमत्कारिक रचना मानव-देह की स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तीनों विधाओं की भूमिका देनी आवश्यक है।

स्थूल-देह हमारी नाम-रूप की देह है और इस नाम-रूपात्मक देह की प्रतीति पर आधारित हमारा समस्त निजी जगत, हमारी सूक्ष्म-देह है। स्थूल व सूक्ष्म दोनों का **'कारण'** ईश्वर है एवं वही हमारी कारण-देह है। स्थूल व सूक्ष्म दोनों देह दृश्यमान हैं। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश एवं अग्नि पाँच निराकार महाभूतों द्वारा निर्मित साकार चमत्कार हैं, जिसे हम अपनी आँखों, कानों, नाक, जिह्वा व त्वचा से क्रमशः देख, सुन, सूंघ, चख व स्पर्श कर

सकते हैं। अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण करके संशोधित व परिमार्जित कर, विकसित कर सकते हैं। यहाँ यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि स्थूल-देह हमारी **नाम-रूप की देह है और उसकी प्रतीति अथवा awarement पर ही हमारा सूक्ष्म-जगत आधारित है। प्रगाढ़ निद्रा, मूर्छा, विस्मृति, मृत्यु व तुरिया समाधि में हमें स्वयं अपने नाम-रूप** की चेतनता नहीं रहती, तो उस समय हमारा सूक्ष्म जगत भी हमारे लिए नहीं होता।

तीसरी और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है **हमारी कारण-देह, स्वयं ईश्वर जो अदृश्य है,** निराकार है। ईश्वर को न हम अपनी आँखों से देख सकते हैं, न कानों से सुन सकते हैं, न नाक से सूंघ सकते हैं, न त्वचा से स्पर्श कर सकते हैं, न ही जिह्वा से चख सकते हैं। वह हमारी कारण-देह पंच-महाभूतों से परे है, हवा उसे सुखा नहीं सकती, जल उसे गीला नहीं कर सकता व अग्नि उसे जला नहीं सकती। वह सच्चिदानंद है, सद्, चेतन व आनन्द का अविरल एवं अकाट्य समन्वय है तथा स्वयं में भक्तियोग, ज्ञानयोग व कर्मयोग का संगम है। अजर, अमर, अजन्मा, अनादि, अनन्त, अविरल, अकाट्य, देशातीत, कालातीत, सम्बन्धातीत, मायातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, लिंगातीत व कर्त्तव्यातीत है। लेकिन वह है और उसी के कारण हमारा एवं हमारे समस्त सूक्ष्म-जगत का अस्तित्व है, हमारे कारण वह नहीं है। हमारा एक-एक श्वास, जीवन का एक-एक क्षण उसी के कारण गतिमान होता है।

कोई ऐसी देह, ऐसी अज्ञात शक्ति, ऐसा **'कारण'** अवश्य है जिसके कारण हमारी स्थूल-देह का माँ के गर्भ में गर्भाधान हुआ था। जिसके कारण एक सैल से माँ के गर्भ में यह चमत्कारिक विशाल देह बनी। छः विशिष्टतम दैहिक कार्य-प्रणालियों से युक्त यह काया नौ महीनों, सात दिनों में बनकर पूर्ण हुई। हमारी बुद्धि ने हमारी देह नहीं बनाई, हमारी बुद्धि का निर्माण करने वाली भी कोई कारण-देह अवश्य थी। यह पृथक बात है कि उसे हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं कर सकते। **इस सत्य को मानना पड़ेगा कि कोई कारण-देह अवश्य है,** जिसके कारण हमें विशिष्ट माता-पिता मिले। किसी से पूछो कि माता-पिता आपने खुद बनाए हैं? माता-पिता सबको

बने-बनाए मिलते हैं। जिस विद्यालय में आप शिक्षा प्राप्त करते हैं, वह विद्यालय आपके पैदा होने से पहले ही बना हुआ था। वहाँ पहले से ही सुयोग्य शिक्षकों की नियुक्ति हुई थी, **आपके लिए**। विवाह-शादी के समय लड़के को लड़की और लड़की को लड़का भी बना-बनाया मिलता है। विभिन्न प्रतिभाओं व शारीरिक क्षमताओं से युक्त सन्तान भी बनी-बनाई मिलती है। जीवन की विशिष्ट घटनाएँ हमसे परामर्श लेकर नहीं घटतीं, वे होती हैं। हम सब अति व्यस्त हैं, अच्छी तरह से जानते हैं कि हम करते कुछ हैं और होता कुछ और है। मृत्यु होती है, अर्थी बनती है, दाह-संस्कार होता है और कोई न कोई हमारी भस्मी को गंगा-यमुना में ले जाने वाला भी मिल जाता है। मानना पड़ेगा कि कोई अदृश्य शक्ति, कोई कारण-देह है, जिसके कारण हमें यह स्थूल-देह और समस्त सूक्ष्म-जगत मिला है। निःसन्देह उसे मानना पड़ेगा। अतः **प्रथम सोपान है—'मानना'।**

हम यह भी जानते हैं कि हमारी स्थूल-देह एक दिन नहीं रहेगी, क्षण-क्षण इसमें परिवर्तन होता रहता है। बचपन आता है, जवानी आती है, बुढ़ापा आता है और हम स्वयं अपने विभिन्न रूप देखते हैं। कभी हम अपनी देह को अस्वस्थ देखते हैं, कभी स्वस्थ देखते हैं। लेकिन अपनी देह का जन्म और मरण कोई नहीं देख सकता क्योंकि ये होते ही नहीं। यहाँ सब आश्चर्य-चकित हो जाते हैं कि न जन्म होता है न मृत्यु होगी, यह बहुत बड़ा रहस्य है। **तो अपनी स्थूल-देह व सूक्ष्म-देह के विभिन्न रूप हम देखते हैं, इन सबका कारण वह ईश्वर ही है। वह अज्ञात शक्ति जो दिखाई नहीं देती परन्तु उसी के कारण हमारा व हमारे सूक्ष्म-जगत का आनन्दमय निर्माण, पालन व संहार होता है।** फिर उस सर्वशक्तिमान सच्चिदानंद प्रभु की सर्वोत्कृष्ट, परम विलक्षण रचना, मानव इस सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में सबसे अधिक दुःखी, रोगी, दोषी, त्रस्त, पीड़ित व विक्षिप्त क्यों है? इस विषय का मैंने अपने प्रवचनों में विभिन्न आयामों से विवेचन किया है, लेकिन आज इसके सर्वथा पृथक आयाम को आपके सम्मुख रख रहा हूँ।

आपने अधरंग अथवा लकवा के रोगी को देखा होगा। इसमें रोगी के

विभिन्न अंग काम करना बंद कर देते हैं। हमारे मस्तिष्क के उच्च केन्द्र हमारी सम्पूर्ण देह का नियन्त्रण करते हैं। यदि हमारा हाथ उठता है तो मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों की इच्छा से ही उठता है। यदि किसी कारणवश मस्तिष्क के उच्च केन्द्र थोड़े बहुत अथवा पूर्णतः, अस्थायी अथवा स्थायी तौर पर आहत हो जाएँ, नष्ट हो जाएँ, काम करना बंद कर दें तो उन केन्द्रों द्वारा नियन्त्रित शरीर के विभिन्न अंग पैरालाइज़ हो जाते हैं। बाजू स्वयं में ठीक होती है लेकिन रोगी बाजू उठा नहीं पाता क्योंकि किसी कारणवश मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों से उसका सम्बन्ध टूट जाता है। इन उच्च केन्द्रों में जब कोई खराबी या कोई रोग आ जाता है तो उनके द्वारा नियन्त्रित देह के उस अंग में लकवा हो जाता है। अंग ठीक होते हुए भी उस अंग का सम्पूर्ण क्रिया-कलाप रुक जाता है। मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों और उनसे सम्बद्ध विभिन्न अंगों के बीच सम्पर्क जोड़ने वाली रक्तवाहिनी नाड़ियों से रक्त प्रवाह बाधित होने व उनमें कुछ बीमारी आने से भी देह के विभिन्न अंग पैरालाइज़ हो जाते हैं।

जब देह का कोई अंग कार्य करना बन्द कर देता है, उसमें अधिकतर कारण यही होता है कि व्यक्ति के मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों में कोई रोग आ गया है या उनका सम्पर्क सम्बन्धित अंगों से टूट गया है या वे अंग स्वयं किसी रोग से ग्रस्त हो गए हैं। यहाँ तक तो चिकित्सा वैज्ञानिकों ने देह के विज्ञान के बारे में पढ़ा है। चिकित्सक सरलता से बता सकते हैं कि यदि उंगलियाँ काम नहीं कर रहीं तो मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों के कौन से भाग में क्या खराबी हो सकती है। वे स्कैनिंग करके सब कुछ जान लेते हैं। **लेकिन उच्चतम केन्द्रों के बारे में क्या कहा जा सकता है, वह कारण-देह जिसने मस्तिष्क के ये उच्च केन्द्र बनाए हैं, वे किसी भी चिकित्सा-वैज्ञानिक की पहुँच से बाहर हैं।** किसी मैडिकल पुस्तक में इसके विषय में नहीं लिखा है क्योंकि हम चिकित्सक उस कारण-देह, उच्चतम केन्द्र को न देख सकते हैं, न सुन सकते हैं, न स्पर्श कर सकते हैं, न सूंघ सकते हैं और न ही चख सकते हैं। **सद्‌गुरु के दरबार के अतिरिक्त कोई ऐसी प्रयोगशाला नहीं है**

जो उस उच्चतम केन्द्र की स्कैनिंग कर सके।

हम सबकी देह अलग-अलग है लेकिन सबका उच्चतम केन्द्र कारण-देह एक ही है और वह कभी आहत नहीं होता, कभी बीमार नहीं होता। ईश्वर कभी घायल नहीं होता, उसे कभी कोई रोग नहीं होता। क्या हम कह सकते हैं कि ईश्वर को चोट लग गई, इसलिए मैं पैरालाइज़ हूँ। सबसे अधिक सकारात्मक बिन्दु यही है कि वह कभी भी हमसे विमुख नहीं होता, हमसे कभी नहीं कटता। **आज मैं चिकित्सा विज्ञान का आध्यात्मिक पक्ष आपके सम्मुख रख रहा हूँ।** जिसको हम बहुत सक्रिय जीवन कहते है, वास्तव में वह विक्षिप्त जीवन ही है, क्योंकि हमारे उच्चतम केन्द्र कारण-देह और उच्च केन्द्र, मस्तिष्क में सम्पर्क टूट गया है। बहुत पढ़े-लिखों का यह सम्पर्क बिल्कुल ही टूट जाता है क्योंकि वे ईश्वर को मानना ही बन्द कर देते हैं, परन्तु ईश्वर तो उनकी मान्यता का मोहताज नहीं है।

आपकी कारण-देह है, आप मानें चाहे न मानें। आपके जीवन का एक-एक पल, उसके चलाए चलता है। हमारे उच्च केन्द्र और उच्चतम केन्द्र में सम्पर्क टूट जाता है क्योंकि ईश्वर की मान्यता ही समाप्त हो जाती है। हमारी बुद्धि पर एक अदृश्य आवरण पड़ जाता है, हम बहुत सक्रिय दिखाई देते हैं परन्तु वास्तव में हम पैरालाइज़ हो जाते हैं। कारण-देह या उच्चतम केन्द्र से सम्पर्क टूटने का कारण उस केन्द्र का damage होना नहीं है बल्कि ईश्वर की मान्यता का समाप्त होना होता है। पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी लोग अधिकतर स्वयं को सैल्फ मेड कहते हैं। उनसे पूछो कि माँ के गर्भ में स्वयं बने थे, अपने माँ-बाप तुमने स्वयं बनाए थे, पैदा होने का स्थान व समय स्वयं चुना था, मरोगे कब? इस प्रकार के दस-पन्द्रह प्रश्न स्वयं से स्वयं ही पूछ लिया करो तो कम से कम आपको अपने उच्चतम केन्द्र, अपनी कारण-देह, उस ईश्वर की मान्यता तो हो ही जाएगी। अतः प्रथम सोपान **'मान्यता'** ही है।

अब मैं आपको पुनः चिकित्सा-वैज्ञानिक क्षेत्र में ले चलता हूँ। जब मानव के विभिन्न अंगों का मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों से सम्पर्क टूट जाता है

तो उसे लकवा मार जाता है। बहुत दिनों तक जब वह अंग विशेष निष्क्रिय रहता है तो धीरे-धीरे सूखने लगता है, उसके लिए एक तकनीकी शब्द है—disuse Attrophy. इसी प्रकार उच्चतम केन्द्र **'कारण-देह'** और उच्च केन्द्र मानव-मस्तिष्क में जब अहंवश सम्पर्क टूट जाता है तो ईश्वर की सम्पूर्ण चेतनता से युक्त मानव-मस्तिष्क की पाँच कार्य-प्रणालियों में से चार तुरन्त आच्छादित हो जाती हैं। **वो चार बुद्धियाँ हैं—विवेक, मेधा, प्रज्ञा व ऋतम्भरा।** कई बुद्धिजीवियों की ये बुद्धियाँ जन्मजात ही आच्छादित होती हैं। पूर्वजन्म से ही वे ऐसे होते हैं और उनकी आई. क्यू. वाली बुद्धि अति सक्रिय एवं अस्त-व्यस्त होती है।

उच्चतम केन्द्र वह कारण-देह है जिसकी वजह से आपको यह देह मिली है, जिसके कारण आपका अस्तित्व है और जिसके कारण आपका व आपके समस्त जगत का निर्माण, पालन, संहार व पुनर्निर्माण होता है। उस कारण देह से हमारे उच्च केन्द्र (मानव-मस्तिष्क) का सम्पर्क कट जाता है। जिसके उत्तरदायी हम स्वयं होते हैं क्योंकि उच्चतम केन्द्र कारण-देह में कभी कोई खराबी नहीं आती। हम स्वयं ईश्वर की मान्यता समाप्त कर देते हैं तो चारों बुद्धियाँ—प्रज्ञा, विवेक, मेधा व ऋतम्भरा लुप्त हो जाती हैं और पाँचवीं आई. क्यू. वाली बुद्धि की कार्य-प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाती है। प्रभु ने यह बुद्धि मानव को मात्र ईश्वरीय कृत्यों की वाह-वाह करने के लिए ही दी थी। **यदि प्रज्ञा, विवेक, मेधा तथा ऋतम्भरा होतीं तो मानव इस बुद्धि से वाह-वाह ही करता। लेकिन चारों बुद्धियाँ आच्छादित हो गईं और आई. क्यू. वाली बुद्धि की कार्य-प्रणाली बिखर गई तो मानव हाय-हाय करने लगा।** यह बुद्धि अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करने व कैरियर बनाने में लग गई, जिसके लिए पशु भी चिन्ता नहीं करते। पशु, पक्षी, जंगली जानवर, हाथी, शेर, चीता, घोड़ा, गधा कभी नहीं सोचता कि मेरे बच्चों का पेट कैसे पलेगा। ह्वेल मछली चालीस-चालीस मीटर लम्बी होती है, वह कभी अपना पेट भरने के लिए कारखाने नहीं खोलती, अपना नर्सिंग होम नहीं बनाती। लेकिन मानव बनाता है, क्योंकि हम सभी पैरालाइज़्ड और

तथाकथित बहुत विकसित हो गए हैं, इसलिए वाह-वाह करने वाली बुद्धि हाय-हाय करने लगी।

भारत आज खो गया है। क्योंकि हमारा, हमारे कारण-शरीर उच्चतम केन्द्र से सम्पर्क टूट गया है और हम अधरंग व लकवे से ग्रसित हो गए हैं। आज कोई ऐसा नेता या ऐसी सरकार चाहिए जो भारत को पीछे ले जाए। आज घर-घर में बरबादी हो रही है। किसी को किसी पर विश्वास नहीं रहा। पति-पत्नी दोनों का मुख विपरीत हो गया है, आपकी सन्तान आपकी नहीं रही। न धन का भोग, न सम्पदा का भोग, न अपनी देह का भोग। सभी रुग्ण पैदा होते हैं, रुग्ण जीते हैं और रुग्ण ही मर जाते हैं। बचपन खो गया है, जवानी खो गई; किसी जवान को आधा घण्टा सीधा खड़े रहने को कहिए, वह बिना दीवार का सहारा लिए खड़ा नहीं हो सकता।

अपनी कारण-देह से सम्पर्क कटने से और क्या हुआ? इस आई. क्यू. वाली बुद्धि ने हमें प्राप्तियों के पीछे भगाया। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए जो देह हमें साधन रूप में मिली थी, वह देह ही हमारे लिए साध्य बन गई। हमारे लिए देह ही ईश्वर बन गई, हमारी समस्त भाग-दौड़ हमारी इन्द्रियों के सुख-साधन एकत्रित करने के लिए ही होने लगी। वस्तुएँ प्राप्त हुईं और यह भाव पैदा हो गया कि मैंने इन्हें प्राप्त किया है जबकि वे प्राप्तियाँ हमें होनी ही थीं। क्योंकि अपनी देह हमें बिना कुछ किए ही मिली। माँ, बाप बने बनाए मिले, हमारे समस्त सूक्ष्म जगत का निर्माण प्रभु ने हमारी देह को इस संसार में लाने के पूर्व आरम्भ कर दिया था। **इस आई. क्यू. वाली बुद्धि के इन कुकृत्यों के कारण हम उन प्राप्तियों के भोग से वंचित कर दिए गए और प्रत्येक हुए कृत्य पर अपने अहं के आरोपण के कारण हुई विपरीत मानसिक प्रतिक्रिया के उत्पाद ने हमारा जीना व मरना मुश्किल कर दिया तथा साथ ही प्रारब्ध भी बना जिससे हमारा अगला जन्म भी दुश्वार हो गया।** आनन्द का तो दूर-दूर तक कोई प्रवेश ही नहीं था क्योंकि अपने आनन्द-स्वरूप, सच्चिदानंद कारण-देह से हम पूर्णतः विमुख हो चुके थे। अपने 'कर्मबंधन' शीर्षक प्रवचन में मैंने इसका सविस्तार वर्णन किया है।

मानव-देह जब सत्य से जुड़ी हुई थी तो सत्य थी लेकिन जब उससे कट गई तो असत्य हो गई। मानव-देह उस सत्य से अपने नाम-रूप की awarement में कटी। जब हम रात को सोते हैं तो हमें अपने नाम-रूप की प्रतीति नहीं होती और हमारी कारण-देह उस समय हमारी रक्षा करती है। इसी प्रकार **अबोध शिशु को अपने नाम-रूप की प्रतीति नहीं होती तो उसका पालन-पोषण सर्वोत्तम होता है, उसे स्वयं अपने लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता।** कभी-कभी माताएँ कहती हैं मेरा बच्चा सीढ़ियों से गिरने वाला था या मेरे बच्चे के पास साँप आ गया और मैं अकस्मात् ही वहाँ पहुँच गई और मेरे बच्चे की रक्षा हो गई। अरे! अकस्मात् आपको किसने वहाँ पहुँचाया? वह आपका उच्चतम केन्द्र, आपकी कारण-देह थी, ईश्वर था। जब हम अपनी कारण-देह से जुड़ जाते हैं तो कभी अकेले नहीं होते, हमारा समस्त सूक्ष्म-मण्डल हमारे साथ होता है। लेकिन कारण-देह से कट कर हम मात्र एक व्यक्ति रह गए, कि उसने मेरी मदद की। मैंने उसकी यह मदद की, आपको नहीं ज्ञात कि आप स्वयं अपनी ही सहायता कर रहे हैं।

आज पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव-स्वरूप हम सब बहुत ही औपचारिक व अकेले हो गए हैं। अपने ही परिवारजनों पर हमें कोई अधिकार नहीं रहा, ज़रा-ज़रा सी बात पर हम एक दूसरे का धन्यवाद देकर स्वयं को अति सुसंस्कृत घोषित करने लगे हैं। मैं उनसे कहता हूँ आप कम सुसंस्कृत हैं, अभी और होंगे, एक ऐसा समय आएगा जब आप अपने ही हाथ को धन्यवाद देने लगेंगे कि तुमने मुझे खाना खिलाया अथवा अपने पैरों का शुक्रिया करेंगे कि तुमने मुझे कहीं पहुँचाया। आप **जितने बुद्धिजीवी होते हैं उतने ही मात्र एक व्यक्ति (Individual) रह जाते हैं और जब आप अपनी कारण-देह से जुड़ने लगते हैं तो आपको सारी सृष्टि पर अधिकार हो जाता है। यही आपकी विराट देह है, आपका समस्त सूक्ष्म मण्डल आपके लिए होता है तो किसको धन्यवाद देना है!** ज्यादा बुद्धिजीवी ज्यादा सभ्य होते हैं क्योंकि वे ज्यादा paralysed होते हैं। अपने उच्चतम केन्द्र से उनका सम्पर्क कट गया होता है, उन्हें दूसरों पर तो क्या अपनी देह पर भी कोई अधिकार

नहीं होता। उनके पास समय बहुत होता है पर समय उनका अपना नहीं होता। उन्हें सत्संग के लिए समय मिलता ही नहीं। हमेशा भयभीत रहने के कारण उन्हें किसी वस्तु का भोग नहीं मिलता। जो ईश्वर से विमुख हैं, वे अवश्य भयभीत होंगे और मात्र एक व्यक्ति (Individual) होंगे तथा उनकी आई. क्यू. वाली बुद्धि हाय-हाय करती रहती है।

मैंने बताया था कि उस सच्चिदानंद की सन्तान, यह मानव सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति, ऐश्वर्य व त्याग का साकार प्रतिरूप था। ईश्वर से विमुख होकर वह त्याग अथवा वैराग्य रूप भस्मी को भूलकर शेष पाँच-विभूतियों के पीछे अन्धाधुन्ध भागने लगा। वैराग्य हमारी देह में भस्मी का प्रतीक है। अधिक बुद्धिजीवी अपने उच्चतम केन्द्र कारण-देह से कट से गए और खाक को भूल गए। यदि उन्हें याद दिलाया जाए तो कहते हैं कि खाक को किसने देखा है? अरे! देखा तो नहीं है, देखोगे भी नहीं, लेकिन बनेगी तो सही, तो उनके पास इसका कोई उत्तर नहीं होताः—

''मैं सोचता हूँ कि दुनिया को क्या हुआ या रब
किसी के दिल में मोहब्बत नहीं किसी के लिए।''

क्योंकि हम खाक को भूल गए जो हमारी देह का सत्य है, सत्य था और सत्य ही रहेगा। ईश्वर ने मानव-देह में एक ऐसी विधा दी है जो जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक रहती है और अन्त में जब हमारी देह खाक में परिणत होती है, उस समय हम नहीं होते। उच्चतम केन्द्र **'कारण'** से कटने के कारण लकवे का आघात जो जन्मों-जन्मान्तरों से हमारे साथ चला आ रहा है, इससे हमने अपनी वाह-वाह करने वाली बुद्धि को हाय-हाय का स्त्रोत बना दिया। पैदा होते ही कैरियर बनाने और पैसा कमाने में अपनी समस्त ईश्वर-प्रदत्त शक्तियों को लगा दिया। हर घर में कमाने वाले बहुत हो गए लेकिन पैसे की बरकत समाप्त हो गई। समय बचाने के जितने साधन अधिक हो गए समय का उतना अधिक अभाव हो गया। सोचिए, विचार करिए यह क्यों हुआ? क्योंकि हम अपनी कारण-देह, अपने उच्चतम केन्द्र से कट गए जिसके कारण मेरा और मेरे समस्त जगत का अस्तित्व था

और हम paralysed हो गए, **यह मानसिक अधरंग था।**

देहिक अधरंग में तो हमारा विशेष अंग इसलिए काम नहीं करता क्योंकि हमारे मस्तिष्क के उच्च केन्द्र में कहीं कोई कमी, कोई बीमारी हो जाती है; लेकिन **इस मानसिक पैरालिसिस का कारण हमारा ईश्वर को न मानना है और उससे विमुख होकर, उसे भूल कर हर चीज़ का स्वयं कारण बनना है।** यहाँ यह याद रखना चाहिए कि **'कारण' कभी भी हमसे विमुख नहीं होता। अहं की एक अदृश्य परत हमारी चेतना पर पड़ जाती है जिससे हमारे और हमारे 'कारण' के मध्य एक आवरण पड़ जाता है और वहाँ से तीन विकार शुरू होते हैं। शास्त्र ने इन्हें मल, विक्षेप व आवरण की संज्ञा दी है।** हमारा आनन्दमय मन मूलतः ईश्वरीय था, वह आनन्दरहित और मलिन मानवीय मन बन जाता है। उसका आनन्द लुप्त हो जाता है। अतः जो मन आनन्द का स्त्रोत था वह मलिनता का स्त्रोत हो जाता है। कुछ न कुछ नकारात्मक सोचता रहता है—कहीं यह न हो जाए, कहीं वह न हो जाए, कहीं यह न छिन जाए, कहीं यह न मिल जाए, कहीं यह न बिछुड़ जाए। मन हर समय भयभीत रहता है और निरर्थकता नहीं, नकारात्मकता की ओर प्रवृत्त हो जाता है। जब मन मलिन होता है तो बुद्धि विक्षिप्त हो जाती है, तनावित हो कर हाय-हाय करने लगती है। तथाकथित अधिक बुद्धिमान लोग ज्यादा हाय-हाय करते हैं:—

'चकवा, चकवी, चतुर नर तीनो रहन उदास।'

जितने चतुर नर हैं, वे अधिकतर उदास रहते हैं क्योंकि बुद्धि उच्चतम केन्द्र, अपनी कारण-देह से कट कर पैरालाइज़ हो जाती है। इसे ही कहा है—**विक्षेप** और इस सब का कारण था हमारे अहं की वह अदृश्य परत जिससे हमारी बुद्धि आवृत हो जाती है और यही **आवरण** है। यहाँ से अत्यन्त भयानक रोग **'भवरोग'** उत्पन्न हुआ जिसकी तीन विधाएँ थीं—**आधि, व्याधि व उपाधि।** आधि रोग का लक्षण है कि पैदा होते ही जो हमें स्वतः प्राप्त होता है अथवा जीवन-काल में जो हम स्वयं प्राप्त करते हैं उसका हमें तनिक भी सुख प्राप्त नहीं होता और जो प्राप्त नहीं है, उसकी

चिन्ता बराबर बनी रहती है। काश! मेरे पास यह होता, उसका तो घर बहुत बड़ा है, उसकी गाड़ी, पोस्ट, रुतबा बहुत ही ऊँचा है। अपने घर और अन्य प्राप्तियों का कोई सुख नहीं होता और दूसरों को देख-देख कर जलन होती रहती है। कलह, ईर्ष्या, द्वेष, जलन, शत्रुता, वैमनस्य, वैर आदि **'आधि'** रोग के कारण पैदा होते हैं।

'उपाधि' में जो प्राप्त है, उसके खोने का भय सताता रहता है। काश! मेरा सौन्दर्य न बिगड़ जाए, मेरे धन का क्षय न हो जाए, मेरा स्वास्थ्य न बिगड़ जाए, मेरी प्रतिभा के साथ कोई स्पर्धा न कर ले, मेरे बच्चों को कुछ न हो जाए। **'उपाधि रोग'** में जो हमारी उपाधियाँ हैं उनके खोने का भय होता है। हमें ज्ञात है, सब कुछ मिटने के लिए बनता है, जो जन्मा है, वह मरेगा अवश्य। फिर भी हम दिन में पाँच-पाँच बार अपना रक्तचाप देखते रहते हैं और कई बार तो रक्तचाप जाँचने ही से रक्तचाप उच्च हो जाता है। बड़ा ध्यान रखते हैं अपनी सेहत का, यह नहीं खाना, वहाँ नहीं जाना। आते-जाते सबको Take Care, Take Care कहते नहीं थकते, अंग्रेज़ों ने यह भी सिखा दिया। बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी! कभी न कभी तो अन्त आएगा ही न। तो **'उपाधि'** रोग में जो है, उसके खोने की चिन्ता निरन्तर बनी रहती है।

'व्याधि' रोग में जब हमारी क्षण-भंगुर-भौतिक प्राप्त सम्पदा जाने लगती है तो उसकी वेदना होने लगती है। कल तक तो मुख पर दो-तीन झुर्रियाँ ही पड़ी थीं, आज और पड़ गईं। इग्लैंड में त्वचा को खींच कर जवान दिखा देते हैं। यह बात और है कि कुछ समय बाद चेहरा और भी बूढ़ा दिखने लगता है, त्वचा और खराब हो जाती है। इस तरह बालों का सफेद होना, घुटनों का न चलना, स्मृति का खो जाना, आँखों से कम दिखाई देना, देह के सौन्दर्य आदि की चिन्ता भी बनी रहती है। इस तरह मल, विक्षेप और आवरण से ये तीन महारोग उत्पन्न हुए—आधि, व्याधि और उपाधि, जिनके उपर्युक्त लक्षण हैं। यह लक्षण तब प्रकट हुए जब हम अपने नाम-रूप की awarement में होते हैं। **मल, विक्षेप और आवरण का अस्तित्व और**

आधि, व्याधि, उपाधि रोगों के लक्षणों का प्रकटीकरण और प्रभाव, मानव में अपनी देह के नाम-रूप की प्रतीति के दौरान ही होता है। इनका अस्तित्व तभी तक है जब तक 'समाधि' नहीं लगती। आधि, व्याधि, उपाधि यदि रोग हैं तो **'समाधि'** रोग-निवारक औषधि है, इन रोगों का तोड़ है। लेकिन आपकी देह आपको दिग्भ्रमित कर भटकाती रहती है, समाधि कैसे लगे? जब तक देह सिद्ध नहीं होगी तब तक समाधि का प्रश्न ही नहीं उठता। ईश्वर की सिद्धि से पहले आवश्यक है, आपकी देह आपकी अपनी हो।

उस अदृश्य सत्ता, कारण-देह, अपने ईश्वर को हम किसी भी नाम-रूप, साकार-निराकार, रूप-अरूप में मान लें, क्योंकि जिसे देखा नहीं, उसे मानना पड़ता है। **जो ईश्वर को मानते हैं वही मानव हैं और मानव ही ईश्वर को मानते हैं।** अतः प्रथम सोपान है **'मान्यता'** और दूसरा सोपान है **'धारणा'**। इन सोपानों पर चलते-चलते जब उस परम सत्य की धारणा की किसी भी तरह से पुष्टि कर लेते हैं उसको **'सिद्धि'** कहते हैं। 'सिद्धि' क्या है, किसकी है? हमारी वह कारण देह, जो परम सत्य है, जो कभी खराब या नष्ट नहीं होती, जो कालातीत, देशातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत, मायातीत है, उसे मैं किसी भी नाम, अनाम, साकार अथवा निराकार में मानने में स्वतन्त्र हूँ। **उसकी मान्यता व धारणा की पुष्टि, प्रमाण व सत्यापन का नाम है—'सिद्धि'।** जीवन के इस अभीष्ट परम सत्य की सिद्धि के प्रमुख सात अंग हैं—**साधक, सद्गुरु, साधन, साधना, साध्य, श्रद्धा व सिद्ध।** जीव जो अपने परम लक्ष्य को सिद्ध करना चाहता है, वह साधक है। जीवात्मा एक ही है, जो ईश्वर की तरह निराकार, सच्चिदानंद, अजर, अमर, अनादि, अनन्त है—**'ईश्वर अंश जीव अविनाशी।'** मानव-देह जीव को क्लब व डिस्को जाने तथा सैर-सपाटे व मनोरंजन एवं भोग के लिए नहीं मिली है। आप पूर्णतः आश्वस्त हो जाएँ कि ईश्वर का हमें यह परम विलक्षण उत्कृष्ट मानव-देह देने का विशेष कारण यह था कि **जीव इस उपकरण (देह) को अपने परम साध्य (कारण-देह) की सिद्धि का साधन बनाए।**

लेकिन अहंवश, दुर्भाग्यवश, संस्कारोंवश, मूर्खतावश, अज्ञानवश तथा मायावश हम स्वयं को देह मान लेते हैं और इस पर अनधिकृत कब्ज़ा करके, इसे ही साध्य बना लेते हैं। जबकि यह साधन है और साध्य है, हमारी कारण-देह। साधक अपने सद्‌गुरु की कृपा, सद्‌निर्देशन व सद्‌सहायता के अंतर्गत इस साधन द्वारा जो भी जप, तप, ध्यान, मनन, चिंतन, स्वाध्याय, यज्ञ, हवन आदि प्रकरण करता है, **वह साधना है।**

सद्‌गुरु साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर का मूर्तिमान रूप है जो किसी परम जिज्ञासु साधक का निर्देशन करने के लिए पृथ्वी पर साकार देह धारण करके आता है और वही जीवात्मा के परम अभीष्ट लक्ष्य की सिद्धि की पुष्टि, प्रमाण व सत्यापन करता है। उसका महात्म्य सर्वोपरि है। साधना करने के लिए शक्ति भी तो अपेक्षित है। अतः सत्य को धारण करने की शक्ति ही **'श्रद्धा'** है। अरे! हममें तो असत्य को धारण करने की क्षमता भी नहीं है। अधिक धनवान और सम्पन्न व्यक्तियों को रात को दारू पिए बिना नींद नहीं आती। उनमें उस धन व सम्पत्ति को सम्भालने की शक्ति नहीं होती, वे भयभीत रहते हैं। जो कुछ भौतिक रूप से हमें प्राप्त है या हम प्राप्त करते हैं उसको धारण करने की क्षमता भी नहीं है, तो आध्यात्मिक सत्य व जीवन के अभीष्ट परम लक्ष्य की तो महान गरिमा और उदात्तता है। सत्य को धारण करने के लिए सद्+धा यानि श्रद्धा अपेक्षित है, जो ईश्वर कृपा करके यूँ ही दे देते हैं। **जब आप में उसकी कृपा से सद् को जानने की इच्छा पैदा होती है। सन्तों की सेवा के फलस्वरूप, माता-पिता के आशीर्वाद से और परम ईश्वरीय कृपा से आपमें जब उस परम सत्य की मान्यता व अवधारणा होने लगती है और उसे पाने की इच्छा जाग्रत हो जाती है तो ईश्वर आपको श्रद्धा से परिपूरित कर देते हैं। ईश्वर बहुत प्रसन्न हो जाते हैं कि कोई मुझे जानना चाहता है।** श्रद्धा के लिए मात्र एक औपचारिकता है—**'समर्पण'**। अरे! हमें तो हमारे भौतिक सम्बन्धों में भी श्रद्धा व समर्पण नहीं है, इसलिए आज घर-घर में आपस में क्लेश रहता है। इतना अहं है प्रत्येक जीव में, कि किसी अन्य के प्रति समर्पण व सेवा भाव ही

नहीं है। मैं कुछ दृष्टान्त दूँगाः—

गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज अपने दरबार में बैठे थे। उन्होंने एक शिष्य से जल मंगवाया, वह तुरन्त जल ले आया। जब उन्होंने उसके हाथ से जल का गिलास लिया तो गुरु महाराज को उसके हाथों का स्पर्श अत्यन्त कोमल प्रतीत हुआ और उन्होंने इसका कारण पूछा। उसने बताया कि महाराज मैं जागीरदार का बेटा हूँ, घर में अनेक नौकरों, सेवकों के होते हमने कभी काम नहीं किया, इसलिए मेरे हाथ कोमल हैं। गुरु महाराज ने उसके हाथों से लाया वह जल नहीं पिया और कहा कि जिस हाथ ने कभी सेवा नहीं की, वह हाथ अपवित्र होता है। सद्‌गुरु के दरबार में समर्पण व सेवा-भाव से जाना है। हमारे द्वारा दी गई पत्र, पुष्प रूप भेंट हमारे समर्पण की द्योतक है, सद्‌गुरु आपके सेवा-भाव से आपके समर्पण की गहनता जानना चाहता है।

एक बार देवराज इन्द्र को अनिद्रा रोग हो गया, वह बहुत अशान्त व दुःखी हो गए और रात को ही भगवान विष्णु के पास पहुँचे। अपनी समस्या बताई कि मैं अज्ञानवश तनावित रहता हूँ, पता नहीं कैसी-कैसी विचार श्रंखलाएँ मेरे मन-मस्तिष्क में चलती रहती हैं। तब विष्णु भगवान ने देवराज इन्द्र से कहा कि आप मेरा नाम लेकर गुरु विरोचन के पास जाइए, यदि वे आपको अपना शिष्य बना लेंगे तो आपका अज्ञान अवश्य दूर हो जाएगा। इन्द्र, गुरु विरोचन के पास गए और गुरुदेव कह कर प्रणाम किया। विरोचन ने गुरुदेव सम्बोधन से पुकारने के लिए आक्रोश व्यक्त किया कि हमने तो तुम्हें अभी अपना शिष्य नहीं बनाया, बताओ क्यों आए हो? देवराज इन्द्र ने कहा कि मेरा नाम देवराज इन्द्र है। मुझे अनिद्रा रोग हो गया है और भगवान विष्णु ने मुझे आपकी शरण में भेजा है। आपकी आज्ञा में रह कर मैं ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। गुरु विरोचन ने इन्द्र को एक वर्ष तक आश्रम में रहने की अनुमति दे दी। एक वर्ष तक देवताओं का ऐश्वर्यवान राजा इन्द्र, गुरु के आश्रम में सेवा करता हुआ रहने लगा। गुरु विरोचन जब प्रवचन देते थे तो उसे अपने साथ बिठा लेते थे।

साल व्यतीत होने पर गुरु विरोचन ने जब इन्द्र से पूछा कि तुमने क्या सीखा तो इन्द्र ने उत्तर दिया कि महाराज मैंने सब कुछ सीख लिया। जो-जो आप बोलते थे, वह सब मैंने याद कर लिया। गुरु विरोचन ने कहा कि तुमने अभी कुछ नहीं सीखा। अतः एक वर्ष तुम और यहाँ रहो। और गुरु विरोचन ने इन्द्र पर अनुशासन और कड़ा कर दिया तथा काम का बोझ भी बढ़ा दिया। दूसरा वर्ष व्यतीत होने पर गुरु विरोचन के वही प्रश्न पूछने पर इन्द्र ने कहा कि महाराज! आप जो कुछ कहते हैं मेरे पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा। आपकी प्रत्येक बात से अनेक शंकाएँ पैदा हो जाती हैं, मैं उनका अर्थ समझने में असमर्थ हूँ। गुरुदेव ने एक वर्ष और आश्रम में रहने के लिए कहा। तीसरे वर्ष उनकी सेवा का भार और बढ़ा दिया। तीसरा वर्ष पूरा होने पर गुरु विरोचन ने इन्द्र से उसकी आध्यात्मिक स्थिति के विषय में पूछा तो इन्द्र ने उत्तर दिया कि महाराज आपकी कोई बात मेरे पल्ले नहीं पड़ती, पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि मैं साधना करूँगा तो आपकी कृपा से मुझे सत्यानुभूति हो जाएगी। गुरु विरोचन ने तब इन्द्र का शिष्यत्व स्वीकार किया और आशीर्वाद सहित उन्हें राज-काज सम्भालते हुए साधनारत रहने के लिए वापिस इन्द्रलोक भेज दिया। सद्गुरु की कृपा के बिना, सेवा व समर्पण के अभाव में साधना हो ही नहीं सकती, तो सिद्धि कैसे मिलेगी।

अन्तिम है—**आत्मकृपा अथवा आत्मविश्वास**। जैसे-जैसे आप में श्रद्धा उत्पन्न होगी तो आत्मविश्वास भी आता जाएगा और सत्य स्वतः आपके चरणों में आ जाएगा। भौतिक जगत में अर्जित शक्तियों के लिए भी आपको अन्तःदौड़ चाहिए, ध्यान, चिन्तन, मनन, जप, तप, यज्ञ, हवन की आवश्यकता है। दुर्भाग्यवश इनके लिए हमारे पास समय नहीं होता, इसलिए भौतिक शक्तियों का भी भोग हम नहीं कर पाते। आध्यात्मिक सत्य की सिद्धि आत्मविश्वास व आत्मकृपा के बिना व श्रद्धा के अभाव में सम्भव ही नहीं है। भगवान शंकर भक्ति व विश्वास के स्त्रोत हैं, माता सती को भी उन पर अविश्वास के कारण उनका त्याग झेलना पड़ा था। यह कथा आपको विदित ही है कि किस प्रकार सीता के हरण के बाद वियोग विह्वल

राम की लीला से माता सती को भ्रम हो गया और भगवान शंकर के समझाने पर भी उन्होंने सीता का वेश बना कर राम की परीक्षा ली। शंकर द्वारा दक्षपुत्री सती का त्याग कर दिया गया और सती ने अपने पिता के यज्ञ में शरीर त्याग दिया तथा पुनः राजा हिमाचल के यहाँ पार्वती के रूप में जन्म लिया।

त्रिकालदर्शी महात्मा नारद द्वारा भविष्यवाणी की गई कि पार्वती को शंकर भगवान पति-रूप में मिलेंगे। पार्वती के कुछ बड़ी होने पर नारद की भविष्यवाणी पर विचार करते हुए, महाराज हिमाचल ने पार्वती को तप करने भेज दिया। पार्वती ने ग्यारह हज़ार वर्ष तक गहन तप किया। यहाँ विचारणीय विषय यह है कि पार्वती को भगवान शंकर पति-रूप में मिलने ही हैं, ऐसा ज्ञात होने पर तो महाराज के यहाँ उत्सव शुरू हो जाना चाहिए था, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। माता पार्वती ने घोर तप किया, सूख कर कांटा हो गईं। जल भी छोड़ दिया, उसके बाद पत्ते खाकर रहीं, कुछ वर्ष वायु के आधार पर रहीं और देह मात्र कंकाल रह गई। फिर भी सप्त ऋषियों ने उनकी परीक्षा ली और अन्ततः भगवान शंकर ने उनका वरण किया। प्रश्न यह उठता है कि जब **भगवान शंकर पति-रूप में मिलने ही थे तो तप क्यों किया! क्योंकि पूर्वजन्म में अविश्वास के कारण वह अपने पति शंकर को खो चुकी थीं। शिव जो भक्ति व विश्वास का स्त्रोत हैं, उन्हें वे दम्भ के कारण खो चुकी थीं और अब वह उन्हें पुनः खोना नहीं चाहती थीं।**

मात्र सम्बन्ध होना महत्त्वपूर्ण नहीं है, उन सम्बन्धों को आत्मसात् करने के लिए सेवा, समर्पण, त्याग एवं तप आवश्यक है, जिससे वे सम्बन्ध आपकी रूह में उतर जाएं। **आजकल पति-पत्नी व घर-परिवार में पारस्परिक सामंजस्य के अभाव का कारण वह व्यक्तिगत दम्भ व अहं है, जो सेवा-भाव, समर्पण, तप और आत्मविश्वास के अभाव के कारण पैदा हो गया है।** आप यह कह सकती हैं कि अगर पति ऐसा वैसा ही हो तो उसके लिए तप क्या करना है? अरे! जैसी आप हैं वैसा ही पति आपको मिलता है। आजकल बुद्धिजीवी नारियाँ यहाँ तक कहती हैं कि पति हमारे लिए तप क्यों

नहीं करता। आपको जब किसी वस्तु अथवा सम्बन्ध को रूह में उतारना है, तो आपको तप स्वयं ही करना पड़ता है। पति-पत्नी तो जीवधारी चेतन हैं, यहाँ तक कि तथाकथित जड़ पदार्थों जैसे कि अपने धन, मकान, कार और अन्य वस्तुओं के लिए भी तप करना पड़ता है। आपकी देह आपके लिए परम सत्य की सिद्धि का साधन बने, इसके लिए आपको अपनी देह का भी समर्पण करके सिद्ध करना पड़ेगा।

जीवन के अभीष्ट सत्य तथा किसी भी सिद्धि के सात सोपान हैं– सम्पर्क या परिचय, सान्निध्यता, सम्बन्ध, समर्पण, सामंजस्य, समर्पण का समर्पण और सिद्धि। पहला सोपान है–**'सम्पर्क'।** उदाहरण के लिए जब कोई मकान आपको लेना है, तो पहले आप कई मकान देखेंगे। उनमें से एक मकान अच्छा लगा तो आपका उससे **सम्पर्क** हुआ। दूसरा सोपान है **सान्निध्यता,** उस मकान में आप बार-बार आना-जाना तथा अपने स्वजनों व सम्बन्धियों को दिखाना शुरू करते हैं। इससे आप उसके और निकट आ जाते हैं। तीसरा सोपान है **सम्बन्ध।** ये सोपान व्यावहारिक एवं भौतिक जगत में भी प्रत्येक चीज़ की सिद्धि के लिए चलते हैं। आप पूछ सकते हैं कि इनका देह के साथ कैसे तालमेल होगा? जैसेकि बच्चा पैदा होता है तो धीरे-धीरे बड़ा होने पर उसका देह से हम परिचय कराते हैं। यही **सम्पर्क** है, फिर उसे हम उसकी देह के विभिन्न अंगों से परिचित कराते हैं कि ये आपके हाथ हैं, ये नेत्र हैं, ये बाल हैं, सिर है आदि-आदि। अपनी देह की स्वच्छता के प्रति उसे सजग करते हैं। यह **सान्निध्यता** है। उसके बाद उसका नामकरण करते हैं और इसके साथ ही उसका देह के साथ सम्बन्ध हो जाता है और गलती से **स्वरूप-सम्बन्ध** हो जाता है। वह स्वयं को देह मान लेता है कि मैं अमुक-अमुक हूँ। जब देह से स्वरूप-सम्बन्ध हो गया तो **वहाँ पर मुसीबत यह होती है कि वह मानव-शिशु देह को, देह बनाने वाले के प्रति समर्पित करने की बजाय स्वयं देह के लिए व देह के सामने समर्पित होना शुरू हो जाता है। वहीं से देह, साधन बनने की बजाय साध्य बन जाती है कि सब कुछ देह ही है।** मुझे डिग्रियाँ, गाड़ी, पद, नौकर न जाने

क्या चाहिए, कैरियर बनाना है, बच्चों का भरण-पोषण करना है आदि। यहीं से देह आपके विरुद्ध होनी आरम्भ हो जाती है। देह से आपका सम्बन्ध खराब हो जाता है एवं देह आपको दिशा-भ्रमित करने लगती है। क्योंकि देह आपकी नहीं थी, इसके एक-एक क्षण, एक-एक पल, धारणा, अवधारणा, श्वास, मान्यताओं तथा क्रियाओं का मालिक ईश्वर था, इसलिए ईश्वर इसके एक-एक क्षण का ब्यौरा रखता है और आप जन्म दर जन्म आधि, व्याधि और उपाधि रोगों के रूप में सज़ाएं भुगतते रहते हैं। देह, जिसके साथ मन, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां आदि हैं, वह आपको भगाना शुरू कर देती है।

जन्मों-जन्मान्तरों में इसी प्रकार धक्के खाते-खाते प्रभु-कृपा से जीव को कोई महापुरुष मिल जाए और जीव उसके सामने अपनी पीड़ा का वर्णन करे कि प्रभु! मैं आधि, व्याधि और उपाधियों से ग्रसित हूँ। आप कृपा करिए तो वह उसे सिद्धि के चौथे सोपान के विषय में बताता है—**समर्पण।** कि बेटा, देह तुम्हारी नहीं थी। क्या तुम स्वयं पैदा हुए थे, माता-पिता तुमने स्वयं बनाए थे, पैदा होने का स्थान तुमने स्वयं चुना था, माँ के गर्भ में अपनी देह के विभिन्न अवयव क्या तुमने बनाए थे, तुम एक विशिष्ट दिन ही क्यों पैदा हुए? तुम्हारा विवाह जिससे हुआ वह स्त्री या पुरुष क्या तुमने स्वयं बनाया था, तुम्हारी विशिष्ट सन्ताने क्यों पैदा हुईं, तुम कब, कैसे और कहाँ मरोगे, तुम्हारी चिता कौन तैयार करेगा, कन्धा कौन देगा? तुम्हारी अस्थियों को कौन प्रवाहित करेगा, कल इस समय तुम्हारे साथ क्या होगा, क्या तुम जानते हो? अरे! जब तुम यह सब नहीं जानते तो यह देह तुम्हारी कैसे हो गई? उस झटके से जीव को देह के विषय में कुछ ज्ञात होता है और वह आश्वस्त हो जाता है कि **देह मेरी नहीं थी बल्कि मेरे लिए थी, मैं देह के लिए नहीं था।** वहाँ से वह चौथे सोपान पर पहुँचता है—**समर्पण।**

समर्पण के सोपान पर आकर साधक स्वयं को देह से नहीं पहचानता। वह जान जाता है कि **देह अलग है और ''मैं पृथक हूँ, मैं विशुद्ध जीवात्मा हूँ और मुझे देह एक साधन व एक उपकरण रूप में मिली है। यह देह**

साध्य नहीं है। मेरा साध्य, मेरा विशुद्ध स्वरूप, कारण-देह, मेरा सच्चिदानंद स्वरूप है।'' फिर देह को यह जिसकी है, उस ईश्वर के सम्मुख समर्पित करना शुरू कर देता है। साधना का यह प्रथम आयाम है, क्योंकि देह साधन है और साधना के लिए साधन का सिद्ध होना परमावश्यक है। साधक जीव का साधन देह है, उसे सिद्ध करने के लिए सातों सोपानों पर से गुज़रना पड़ेगा–**सम्पर्क, सान्निध्यता, सम्बन्ध, समर्पण, सामंजस्य, समर्पण का समर्पण और सिद्धि।** आपकी देह आपकी आज्ञाकारी होनी आवश्यक है, तभी आप साधना कर पाएँगे। अगर आप तलवार लेकर लड़ने निकले और तलवार की धार तेज़ न हो तो वह युद्ध में क्या काम आएगी! इसलिए पुराने ज़माने में योद्धा अपने अस्त्र-शस्त्रों का पूजन करके, उन्हें सिद्ध करके चलते थे। प्रथमतः परम सत्य की मान्यता व अवधारणा की पुष्टि के लिए आपकी देह जो साधन है उसकी सिद्धि अत्यन्त आवश्यक है।

यहाँ मैं आपको बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य बता दूँ कि जब देह सिद्ध हो जाएगी तो उसी के समानान्तर आपका साध्य भी सिद्ध हो जाएगा। इसलिए **सुबह उठकर, शुद्ध होकर ईश्वर को, आपने जिस रूप, अरूप, नाम या अनाम में माना है, उसके सम्मुख रोते हुए तहे-दिल व रूह से अपनी देह को समर्पित करिए। उसके सम्मुख अपनी असमर्थता घोषित कर दीजिए, कि प्रभु! यह देह क्या है, मैं नहीं जानता। मुझे बल-बुद्धि-विद्याहीन, अशक्त, असमर्थ, तन-मन-धन-हीन कर दो, क्योंकि जब-जब मैंने अपनी बल-बुद्धि, विद्या, सामर्थ्य, शक्ति, तन, मन एवं धन का प्रयोग किया है तब-तब मैं फंसा हूँ। मुझे इनका प्रयोग करना नहीं आता। आपने यह देह मुझे कब दी, क्यों दी और कब इसे ले जाएँगे, मुझे इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है। अतः इस देह को मैं तहे दिल, मन व रूह से, आपकी इच्छा से व आपकी शक्ति से, आपके चरणों में अर्पित करता हूँ।** इसमें भी भाव यह रहता है कि प्रभु ने मुझे दी है, मैं समर्पित करता हूँ। समर्पण के समर्पण के सोपान पर यह भाव भी समाप्त हो जाता है

और नित्य ऐसा करते-करते यह देह आपकी होनी शुरू हो जाती है। आपका देह के साथ **सामंजस्य** होना शुरू हो जाता है।

उस सत्य-स्वरूप की अनुभूति के लिए यह देह पहले barrier थी, अब Carrier बनना शुरू हो जाती है। जब कोई आपका अपना होता है तो वह आपका हित-चिन्तक हो जाता है। पहले जब देह से आपने अपना स्वरूप-सम्बन्ध बना लिया था तो देह ईश्वर-प्रदत्त अपनी छः विभूतियों में से वैराग रूपी भस्मी को छिपा कर सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य व ख्याति के लिए भगाती है। लेकिन जब देह का उस परम सत्ता के सम्मुख नित्य समर्पण होता है तो एक समय ऐसा आता है कि देह के साथ **सामंजस्य** हो जाता है। वही देह आपको जिज्ञासु बना देती है। जो देह आपको दिशा-भ्रमित कर रही थी, अब वही दिशा-निर्देशन करने लगती है। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है मुझे, ईश्वर क्या है आदि-आदि प्रश्न आपको बेचैन करने लगते हैं। पहले आपकी बुद्धि की विवेक, प्रज्ञा, मेधा और ऋतम्भरा आदि चार विधाएँ पैरालाइज़ हो गईं थीं। आवृत हो गईं थीं। **इस पाँचवे सोपान पर जीव का मल उतरने लगता है तथा विवेक जाग्रत हो जाता है और दृष्टि सम्यक् होने लगती है।** वह विवेक ही आपके अन्दर सत्य की जिज्ञासा उत्पन्न करता है, आप सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना शुरू करते हैं। संतों, महात्माओं के सान्निध्य में बैठने लगते हैं।

जैसे ही जिज्ञासा उत्पन्न होगी, आपकी कारण-देह ईश्वर को बड़ी प्रसन्नता होती है कि मुझसे कोई सम्पर्क करना चाहता है। तब ईश्वर आपको स्वतः ही सत्य को धारण करने की क्षमता **'श्रद्धा'** दे देते हैं। वह श्रद्धा आपको सद्गुरु के दरबार में ले जाती है। अब आपको देह की उन पाँच विभूतियों—सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य व ख्याति में रुचि नहीं रहती। आपकी भाग-दौड़ न्यूनतम हो जाती है और आप अन्तर्मुखी होने लगते हैं। अब भी उसी देह की कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग होता है लेकिन उसका परिदृश्य बदल जाता है। आप एक बदले हुए व्यक्ति दिखने लगते हैं। आप सहज मुदित व आनन्दित रहने लगते हैं। आपकी हाय-हाय कम हो

जाती है; वाह-वाह तो पूरी तरह से नहीं होती लेकिन आप सन्तुष्ट रहने लगते हैं। आप ईश्वर-सम्मुख होने लगते हैं।

अब देह आपका सान्निध्य चाहती है, जिस देह को दूर हटाने के लिए आप नींद की गोलियाँ खाते थे, नशा करते थे, वह देह अब आपके साथ रहना चाहती है। इसे सामंजस्य कहा है। आपको देह की उन पाँच विभूतियों में कोई रुचि नहीं रहती। अब देह भी तो प्रभु की माया है न, इस सोपान पर देह को चिन्ता हो जाती है कि अब तो यह मेरी परवाह ही नहीं करता, मुझे समर्पित करके परे हट रहा है। फिर देह अपनी छठी विभूति **वैराग्य** या भस्मी को जीवात्मा के आगे रखती है। अब देह को आपसे प्यार हो जाता है। इश्क में व्यक्ति अपनी हैसियत व नाम-रूप को भूल जाता है। आपकी देह बाखुद अपने नाम-रूप को भूल जाती है, जीवात्मा के साथ इसका सामंजस्य हो जाता है। देह अपने सत्य से अवगत कराती है और देह को खाक-रूप समझते हुए अपनी सारी फीतियाँ और अहं जलाकर आप सद्गुरु के दरबार में पहुँचते हैं। **सद्गुरु पूछता है, कौन हो तुम? कि प्रभु मैं नहीं जानता मैं कौन हूँ?** आप ठसाठस मात्र भस्मी बन जाते हैं और समस्त ईश्वरीय विभूतियाँ—सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य व ख्याति आपसे प्रकट होने लगती हैं। अब श्रद्धापूरित खाकमय देह को लेकर जब आप सद्गुरु के चरणों में जाते हैं तो उससे पहले एक घटना और हो जाती है। **पहले जब आपने देह का समर्पण किया था तो आपका खोया हुआ विवेक जाग्रत हुआ था और अब उस समर्पण के फलस्वरूप देह के साथ सामंजस्य होने पर आपकी मेधा और प्रज्ञा भी जाग्रत हो जाती हैं।**

मेधा बुद्धि की वह विधा है जो शास्त्र को आत्मसात् कर ईश्वर के बारे में जान सकती है। इस सोपान पर आप श्रद्धामय हो जाते हैं लेकिन आपके जीवन में बड़े-बड़े तूफ़ान आने शुरू हो जाते हैं। उनसे जीव घबराता नहीं, क्योंकि मेधा के साथ ही साथ उसकी प्रज्ञा भी जाग्रत हो जाती है, जो इन तूफ़ानों में उसे सम रखती है। जीवन के तूफ़ान आपके संशोधन व परिवर्धन के लिए होते हैं। **मेधा के साथ प्रज्ञा जाग्रत होते ही आपकी वासनाएँ**

उपासना में बदलनी शुरू हो जाती हैं। आसक्तियाँ भक्ति में बदल जाती हैं और सांसारिक पदार्थों में आपका राग, वैराग से होता हुआ ईश्वर के चरणों के अनुराग में परिवर्तित हो जाता है। तब चारों ओर आपको मात्र आपका इष्ट ही नज़र आता है। आपकी देह, सोच, धारणाएँ, मिलने-जुलने वाले सब बदल जाते हैं, क्योंकि देह अपने सत्य-स्वरूप भस्मी से आपको अवगत कराती है। जो भस्मी देह के चले जाने के बाद प्रकट होनी थी, वह जड़ थी। उस भस्मी से यह देह, देह के रहते हुए ही जीवात्मा को अवगत करा देती है, कि **'मैं'** भस्मी हूँ। **यह भस्मी चेतन है। चेतन भस्मी का दूसरा नाम शिवत्व है।**

श्रद्धा मिलते ही शिवत्व जाग्रत होना शुरू हो जाता है। वह शिवत्व ही आपको सद्‌गुरु के चरणों में ले जाता है। वहाँ भी यही देह और उसकी शक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं। सद्‌गुरु आपसे जप, तप, ध्यान, यज्ञ, हवन आदि विभिन्न प्रकरण आपकी मानसिक एवं भौतिक शक्तियों के अनुसार करवाता है। उसके बाद **इस स्तर पर आपकी बुद्धि की खोई ऋतम्भरा नामक विधा जाग्रत हो जाती है। जब आपका ईश्वर से सम्पर्क कटा था तो सबसे पहले ऋतम्भरा लुप्त हुई थी, उसके बाद मेधा और प्रज्ञा तथा अन्त में विवेक गया था और बुद्धि हाय-हाय करने लगी। जब आपने देह ईश्वर के प्रति अर्पित की तो प्रथम जाग्रत हुआ विवेक, फिर देह से सामंजस्य पर मेधा और प्रज्ञा तथा अन्त में समर्पण के समर्पण पर देह से आप मात्र ईश्वरीय कृत्यों को ही करते हैं, उस समय आपको समर्पण भी भूल जाता है। आपको लगता है कि आप समर्पण भी क्या करें, देह तो उसी की है ही।** उस स्तर पर देह आपको अपने अन्तिम सत्य भस्मी से अवगत कराती है कि तू मुझसे मेरी भस्मी-रूप में जुड़ा रह।

जब देह आपको मात्र भस्मी प्रतीत हो तब आपकी ऋतम्भरा जाग्रत हो जाती है। इस स्तर पर देह आपकी इतनी मुरीद हो जाती है कि अपने रहस्य अनावृत करने शुरू कर देती है। अपने रहस्य किसी को कोई तब बताता है, जब वह आपका हो जाता है। देह का हर पल, हर विधा, हर

स्थिति, हर प्रकरण आपके लिए आनन्दमय हो जाता है। समस्त वेद, पुराण, श्रुतियाँ, स्मृतियाँ जो आपके दिव्य मानस में हैं, आपके समक्ष प्रकट हो जाती हैं। अन्तिम सोपान है—**'सिद्धि'**।

'मैं तो नाला हूँ ज़िन्दगी से मगर,
ज़िन्दगी मुझसे प्यार करती है,
मैंने कितना इसे ज़लील किया,
फिर भी कम्बख्त मुझपे मरती है।'

फिर देह को आप छोड़ते हैं, देह आपको नहीं छोड़ती, इस स्थिति को कहा है—**'निर्वाण'।** आप निर्वाण के अधिकारी हो जाते हैं। देह छूटती है, पुनः देह मिलती है। यदि आप सिद्धि के सोपानों पर साधनामय जीवन व्यतीत करते हैं तो जिस भी सोपान पर आपकी देह छूटती है, अगले जन्म में संशोधित व परिवर्धित होकर उसी स्तर से आप अपनी आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ करते हैं। यदि हम देह से देह की उन पाँच विभूतियों—सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य व ख्याति के पीछे भागते हैं तो जितना लाभ व शक्तियाँ आपने अर्जित की हैं और बीच में देह छूट जाए तो अगले जन्म में यात्रा पुनः प्रारम्भ से शुरू करनी पड़ती है। आप फिर से ए. बी. सी. डी. पढ़ते हैं। फिर नौकरी या व्यापार करते हैं। सब कुछ पुनः ज़ीरो से शुरू करना पड़ता है।

आध्यात्मिक जगत में जब देह आपकी अपनी हो जाती है तो सिद्ध देह आपके साथ अगले जन्म में भी सिद्ध ही चलती है। जितने आरिफ, पीर, पैगम्बर या महापुरुष हैं, वे पैदायशी सिद्ध होते हैं। उन्हें पैदा होते ही सांसारिक व भौतिक वस्तुओं में कोई रुचि नहीं होती, वे मात्र जगत के कल्याण के लिए ही देह धारण करते हैं। तो सद्‌गुरु की कृपा से साधना करते-करते ऋतम्भरा जाग्रत हो जाती है और ऋतम्भरा बुद्धि की वह शक्ति है, जो ईश्वर को पा सकती है, उसके रहस्यों को आत्मसात् कर सकती है। मेधा ईश्वर के बारे में जनवाती है और ऋतम्भरा, ईश्वर जो आपका सच्चिदानंद-स्वरूप है, उसे जनवाती है। यही मेरे जीवन का अभीष्ट सत्य है। उस सत्य की अवधारणा की पुष्टि, प्रमाणिकता एवं सत्यापन मुझे किसी

भी तरह से अवश्य होना चाहिए। अन्यथा मैं अतृप्त, असंतुष्ट, अशान्त, असुरक्षित, आसक्त, अविश्वास व विक्षेप से ग्रसित आसक्तियों को लिए हुए जन्मता-मरता रहूँगा। अपने उच्चतम केन्द्र अपनी कारण-देह व सच्चिदानंद-स्वरूप से कटा सा होने के कारण मेरी प्रज्ञा, मेधा, विवेक व ऋतम्भरा बुद्धियाँ आवृत हो जाएँगी तथा वाह-वाह करने वाली बुद्धि हाय-हाय करती रहेगी। मैं मल, विक्षेप व आवरण से ग्रसित आधि, व्याधि व उपाधि रोगों से पीड़ित रहूँगा। जिनको इनसे छुटकारा नहीं पाना उन्हें सिद्धि की कोई आवश्यकता नहीं है। हम आपको आशीर्वाद देते हैं कि इष्ट-कृपा से आप सब उस कारण-देह सच्चिदानंद ईश्वर से कटा सा अपना सम्पर्क पुनः स्थापित कर आनन्दमय जीवन जिएँ।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(23 मई व 6 जून, 2004)

सिद्धि

(भाग 2)

आज इस व्यास-पीठ से परम इष्ट-कृपा एवं आप सब महाजिज्ञासुओं की विशिष्ट जिज्ञासावश **'सिद्धि'** विषय की अगली कड़ी का विमोचन करूँगा। कृपया इसका अति श्रद्धापूर्वक श्रवण व मनन करें। जैसाकि मैंने **'सिद्धि'** के गत प्रवचन में इंगित किया था कि आप सब सच्चिदानंद हैं, क्योंकि आपका निर्माता, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता सच्चिदानंद है। परन्तु जब हम इस भव्यतम, विलक्षणतम मानव-देह व देह पर आधारित समस्त जगत का कर्त्ता-धर्त्ता स्वयं को मान लेते हैं तो अपने परम **'कारण'** सच्चिदानंद ईश्वर से कट से जाते हैं। हम पैरालाइज़ होकर आधि, व्याधि और उपाधि रोगों से ग्रसित हुए जन्म-जन्मान्तरों के काल-चक्र में बँधे, जन्मते-मरते रहते हैं। अपने उच्चतम केन्द्र **कारण-देह** से कटने के कारण हमारी चारों दिव्य बुद्धियाँ—विवेक, मेधा, प्रज्ञा, ऋतम्भरा आच्छादित हो जाती हैं। जो बुद्धि ईश्वर ने हमें ईश्वरीय कृत्यों व इन अनंतानन्त ब्रह्माण्डों की सुन्दर नाट्यशाला की वाह-वाह करने के लिए दी थी, उसकी कार्य-प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाती है। हम हाय-हाय करते ही जन्मते हैं, हाय-हाय करते ही जीते हैं और हाय-हाय करते ही मर जाते हैं। इसका मुख्य कारण यह होता है कि मानव-देह, जो जीव को उस परम सत्य आनन्दमय कारण-देह की सिद्धि के लिए साधन-रूप में मिली थी, साधना के एक उपकरण के रूप में मिली थी, वह देह ही हमारी साध्य बन जाती है।

देह का इस प्रकार दुरुपयोग होने से यह देह ही हमसे घृणा करने

लगती है और हमें दिग्भ्रमित करती रहती है। मानव-देह स्वयं ईश्वर द्वारा निर्मित एक अद्‌भुत चमत्कार है। इस देह में सभी लोक-लोकान्तर, युग-युगान्तर, सतयुग, द्वापर, त्रेता व कलिकाल चारों युग हैं। चौरासी लाख योनियों का प्रतिनिधित्व करती है यह मानव-देह। हिन्दू संस्कृति में अठारह पुराण बताए गए हैं, मैंने इष्ट-कृपा से उन्नीसवां पुराण जोड़ा था—**'देह-महापुराण'**। देह में ही ब्रह्मत्व, विष्णुत्व व शंकरत्व है। भाव जगत के समस्त भाव स्वर्ग, बैकुण्ठ व अपवर्ग तथा नरक एवं रौरव नरक तक सभी इसी मानव-देह में हैं।

वास्तव में देह में ही सब कुछ है। सब वेद, पुराण, श्रुतियाँ, उपनिषद्, गीता, शास्त्र, भागवत सभी मानव-देह में हैं क्योंकि ये ग्रन्थ विशिष्ट दिव्य मानसिक स्थिति में रचे गये। आपको किसी भी अभिव्यक्ति के लिए एक विशेष मानसिक अवस्था चाहिए। वस्तुतः प्रकटीकरण विशिष्ट देशकाल, परिस्थिति में विशिष्ट मानसिक अवस्था का ही होता है। अब दारू पीकर मांस आदि का सेवन करके व्यक्ति गाली-गलौच ही करेगा, उसके मुख से कोई पुराण या श्रीमद्‌भागवत के श्लोक तो निःसृत नहीं होंगे! उस समय उस तामसिक, मानसिक स्थिति में जो सृजन होगा वह मन-अनुरूप ही होगा। इस प्रकार हमारे विवेकशील महापुरुषों की मेधा, प्रज्ञा, विवेक व ऋतम्भरा-युक्त बुद्धि तथा ईश्वरीय आनन्दमय मानस के समन्वय से पूर्ण मानसिक स्थितियों से ये शास्त्र, वेद-पुराण आदि प्रकट हुए हैं, पूर्णतः ईश्वरीय ध्यान में समाहित होकर इनकी रचना हुई है। उन ग्रन्थों के रहस्यों को आत्मसात् करने के लिए आपको भी वे मानसिक स्थितियाँ चाहिएँ।

इसी देह में आपके स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर का रहस्य छिपा है। **स्थूल-देह का रहस्य मानव-देह 'निद्रा' में रखती है, सूक्ष्म-देह के रहस्य की चाबी 'मृत्यु' में है और कारण-देह का रहस्य 'भस्मी' में अन्तर्निहित है।** कृपया श्रद्धापूर्वक, सजग व सचेत होकर सावधानी से इस विषय का श्रवण करें। यह नितान्त अनुभूतिगत विषय है, परम गोपनीय है। प्रथम बार यह गहन रहस्य जो कदाचित् श्रुतिज्ञान रहा

होगा, मैं आपकी जिज्ञासावश, परम इष्ट-कृपा से उद्घाटित कर रहा हूँ। **निद्रा, मृत्यु व भस्मी तीनों हमारी भौतिक देह की भौतिक अवस्थाएं हैं।** हम नित्य निद्रा में जाते हैं। यदि जन्म हुआ है तो कभी भी, कहीं भी, किसी भी प्रकार से मृत्यु भी अवश्य होगी। जब म्त्यु होगी तो अन्ततः खाक या मिट्टी भी अवश्य बनेगी, यह कोई कल्पना नहीं है। आध्यात्म व ईश्वर को भूलकर देह की भौतिक अवस्थाओं पर एकाग्र करिए, तीनों ऐसी अवस्थाएं हैं, जब हम नहीं होते। **हम जानते हैं कि एक न एक दिन हमारी देह भस्मी में अवश्य परिणत होगी लेकिन तब हम नहीं होंगे, इसी प्रकार जब हम मृतक होंगे तो हम नहीं होंगे और गहरी नींद में भी हमें अपनी कोई खबर नहीं रहती, तो हमारे स्थूल, सूक्ष्म व कारण की कुंजी कैसे मिलेगी?** निद्रा, मृत्यु व भस्मी की अवस्थाओं का मन्थन कर इन चाबियों को ढूंढने का तरीका बताता है।

किसी व्यक्ति की चाहे कितनी भी बड़ी मनोकामना पूरी हो जाए, चाहे उसे पूरे ब्रह्माण्ड का शासन, धन, सम्पदा, ऐश्वर्य, ख्याति, शक्ति, सौन्दर्य, ज्ञान मिल जाए, चाहे वह अष्ट सिद्धियों और नौ निधियों का स्वामी बन जाए, चाहे कुछ भी प्राप्त कर ले, लेकिन वह रात को सोना अवश्य चाहता है। **सोते हुए उसे अपनी प्राप्तियों की खबर नहीं होती, तो वह सोना क्यों चाहता है?** कोई अति निर्धन व्यक्ति हो और उससे कहा जाए कि तुम्हारे घर की छत में छेद करके हम धन बरसाते हैं, तुम एकत्र करते रहो लेकिन सोना नहीं। वह बड़ा प्रसन्न होगा एक, दो दिन वह बिना सोए धन एकत्र करता रहेगा। अन्ततः धन को ठुकरा कर सो जाएगा। किसी दम्पति के विवाह के कई वर्षों बाद मन्नतों व आशीर्वाद के फलस्वरूप सुन्दर बच्चा हुआ और वह जब रात को रोता है तो वही कहते हैं कि इसे बाहर ले जाओ, हमें सोने दो। बहुत महत्त्वपूर्ण बात है, पदोन्नति हो गई, पद छिन गया, नौकरी मिल गई या छिन गई, तबादला हो गया या तबादला रुक गया हर हाल में हम सोना चाहते हैं। **ऐसी क्या बात है निद्रा में कि हम कुछ भी बन जाएँ मगर सोना चाहते हैं, यह जानते हुए भी कि सुषुप्ति में यह सब कुछ**

नहीं रहेगा। न हमारी देह होगी न देह पर आधारित जगत होगा, न धन होगा, न पद, न व्यवसाय, न सगे-सम्बन्धी, न देश, न विदेश, न काल, न लिंग, न धर्म, न कर्म, न कर्त्तव्य, न घर-बार, न डिग्रियाँ, न जन-बल, न धन-बल कुछ नहीं होगा। फिर भी हम सोना क्यों चाहते हैं? बात बड़ी गहन है लेकिन बहुत स्पष्ट और सरल भी है।

एक अवस्था हम ऐसी चाहते हैं जब हम अपने नाम-रूप की चेतना से परे हो जाएँ। हमारे साथ नित्य घटित होता है कि हम कुछ भी बन जाएँ, कुछ भी प्राप्त कर लें लेकिन हम उससे उपरामता चाहते हैं। खोने से, पाने से, मिलने से, बिछुड़ने से, खुशी से, ग़म से, सौन्दर्य से, कुरूपता से, ज्ञान से, अज्ञान से, यश से, अपयश से, शक्ति से, निर्बलता से हम निजात पाना चाहते हैं क्योंकि ये सब नाम-रूप की प्रतीति में ही है। निद्रा में हम अपने नाम-रूप की चेतना में नहीं होते, हम धर्मातीत, मायातीत, कर्मातीत, देशातीत, कालातीत, लिंगातीत, कर्त्तव्यातीत होते हैं। सुषुप्तावस्था में वही कुछ होता है जो मृत्यु में होता है। लेकिन हम अपने किसी प्रिय सम्बन्धी को सोते देखकर घबराते नहीं कि हे राम! यह सोने लगा है। लेकिन मरते हुए को देखकर रोते हैं। सोए हुए को हम चैन से सोने देते हैं लेकिन किसी के मरने के वक्त परिदृश्य ही बदल जाता है। जबकि बात वही होती है, ऐसा क्यों? अपने दैनिक जीवन की अवस्थाओं, घटनाओं तथा जीवन के सत्य पर विचार करिए।

विश्राम में हम अपने नाम-रूप की प्रतीति में होते हैं लेकिन हमारी शारीरिक सक्रियता नहीं रहती। निद्रा में हम अपने नाम-रूप की प्रतीति से परे होते हैं। अज्ञात रूप से, हम जानें या न जानें हमारे नाम-रूप की चेतनता में ही मल-विक्षेप और आवरण के फलस्वरूप ये तीनों रोग घटित होते हैं—आधि, व्याधि और उपाधि। इसलिए हम सोना चाहते हैं। मान लीजिए गहन निद्रा आ गई जो अक्सर लोगों को नहीं आती और सुबह उठे तो हम प्रफुल्लित हो कहते हैं **कि मैंने निद्रा का आनन्द लिया**। पूछो, कि निद्रा में आपने अपनी इन्द्रियों का कौन सा सुख लिया, न जीभ से स्वाद लिया, न

नेत्रों ने मनोहारी दृश्य देखे, न कानों ने मधुर संगीत सुना, न त्वचा ने कोमल स्पर्श किया, न नाक ने सुवासित पदार्थों को सूंघा तो आनन्द काहे का लिया? और जब आपको अपने नाम-रूप की अप्रतीति का आनन्द आ रहा था, उस समय आप सो रहे थे। उठकर ही तो कहते हैं न कि I enjoyed my sleep. सोते-सोते यदि कोई कहता है तो इसका अर्थ है कि उसे नींद आई ही नहीं। यदि आपको गहन और अच्छी नींद आई है तो उठने पर उस अवस्था का एक तत्कालीन आनन्दमय प्रभाव होता है। लेकिन आप अपने नाम-रूप की चेतनता से परे होते हैं। आपकी नींद तो खुल गई है आपकी मानसिक अवस्था कुछ देर तक ऐसी ही चलती है और आप अपनी पहचान में यह अनुभूति करते हैं कि मुझे आनन्द आया। निद्रा के दौरान हम उस अवस्था का आनन्द इसलिए नहीं ले सकते क्योंकि उस वक्त सोए हुए होते हैं। अगर निद्रा में हमें अपने नाम-रूप की अचेतनता और अपनी कारण-देह की सम्मुखता का आनन्द आ जाता तो हम सबको निद्रा की गोलियाँ वितरित करवा देते, कि सोते रहा करो।

शास्त्र ने निद्रा को भी जड़ता कहा है। निद्रा में अपने नाम-रूप की चेतना नहीं होती लेकिन उस समय हमें अपने स्वरूप की चेतनता भी नहीं होती। निद्रा समाधि नहीं है। इसका अर्थ यह है कि Non awarement of your name and form is not the awarement of your real self. जो आपका वास्तविक सत्य स्वरूप है, वह आपके नाम-रूप की अप्रतीति अथवा अपने नाम-रूप की बेखबरी से प्रकट हो जाए, ऐसा नहीं है। सोने में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब हम सोने जाते हैं तो हमें मालूम होता है कि मैं सोने जा रहा हूँ, लेकिन हमने कभी स्वयं को सोए हुए नहीं देखा। यदि हम देखते हैं तो इसका अर्थ है कि हम सोए ही नहीं। उठकर घड़ी देखते हैं और अनुमान लगाते हैं कि मैं कितने घण्टे सोया। वह भी अनुमान है, क्योंकि मैं नहीं जानता कि कितने बजे सोया। नींद कब आई और कब खुली, निश्चित तौर पर मैं नहीं बता सकता। सोने के वक्त की गणना का अनुमान भी हम जाग कर ही कर पाते हैं।

सोने से जागने के बाद हमें दो बातें मालूम चलीं कि उस सुषुप्ति में मुझे काल की जानकारी नहीं थी, अतः मैं कालातीत था। (ईश्वर भी कालातीत है, अकालपुरुष है) दूसरे, मैं अपने नाम-रूप की प्रतीति में नहीं था। उस समय न मेरा कोई नाम होता है, न व्यवसाय, न धन, न सम्पदा, न सम्बन्ध, न पद, न देश, न मित्र, न शत्रु, न धर्म, न कर्म। साथ ही किसी वस्तु का अभाव भी था, जिसके कारण हम इन दो अवस्थाओं के प्राप्त होने पर भी असंतुष्ट थे, इसीलिए तो हम जागे। ये दो अवस्थाएँ कालातीत होना और नाम-रूप की बेखबरी तो नशा करके भी हो जाती हैं। अफीम, गांजा या भांग खा कर भी व्यक्ति कालातीत हो जाता है। रात के एक-दो बजे तक उसे आभास ही नहीं होता कि कितना समय बीत गया है। बिचारी धर्मपत्नी खाना लिए प्रतीक्षा करती रहती है। उसमें भी नाम-रूप की प्रतीति नहीं होती, व्यक्ति न जाने किस जगत में चला जाता है।

जिस चीज़ के लिए हम दोनों अवस्थाओं को आत्मसात् करने पर भी तड़पते हैं, वह है हमारा आनन्द, क्योंकि आनन्द के लिए जागृति का होना परमावश्यक है। जीव को सुषुप्ति में वह आनन्द नहीं मिलता तो वह **सुषुप्ति में** जागता है, जिसे स्वप्नावस्था कहते हैं, हम सोए हुए भी भाग-दौड़ करते हैं। हम स्वप्न से उठते हैं तो कई बार तो स्वप्न सृष्टि से सीधे जागृति में आ जाते हैं, कभी पुनः सो कर फिर जागृति में आते हैं। **इस जागृति को भी तथाकथित जागृति कहते हैं। स्वप्न को स्वप्न, जाग्रत होकर ही कहा जाता है।** स्वप्न के दौरान तो वह भी इस जागृति जैसी ही अवस्था होती है। जिस प्रकार कि निद्रा के दौरान निद्रा का ज्ञान हमें नहीं होता, जागकर हम जानते हैं कि हम सोए। हम जागते हैं, फिर सोते हैं। हाय-हाय करते ही हम सोते हैं और हाय-हाय करते ही हम जागते हैं। सोते भी हम तथाकथित हैं, दारू पीकर या नशे की गोलियाँ लेकर सोने में भी जागते हैं, जिसे **स्वप्न** कहा जाता है। **पहले हम दिन भर के कृत्यों से थकते हैं और थक कर सोते हैं, सोने से ऊबने पर हम सोने में जागते हैं, फिर सोते हैं और अन्ततः मर जाते हैं।** जब सोने, जागने, सोने में जागने, सोने से जागने और

जागने से सोने से दिल नहीं भरता, कुछ पल्ले नहीं पड़ता तो मर जाते हैं, फिर पुनः पैदा हो जाते हैं और फिर वही सिलसिला शुरू हो जाता है और वैसे ही समाप्त हो जाता है।

सुषुप्ति में हम नाम-रूप की प्रतीति एवं काल दोनों से परे हो गए और अस्थायी तौर पर सुकून भी मिला। **नाम-रूप की प्रतीति के अभाव में यदि विश्राम पाते हो तो फिर जागते क्यों हो ? कि कुछ करना है, तो फिर सोते क्यों हो ? कि जो कुछ किया है, खोया है, पाया है उसे भूलने के लिए। तो आप स्वयं को क्या कहेंगे ?** सद्‌गुरु से सद्‌शिष्य कहता है कि सब ऐसा ही करते हैं तो मैं भी ऐसा कर रहा हूँ। पूरे ब्रह्माण्ड का शासन पाने, धन पाने के बाद भी आपको ऐसी अवस्था की खोज रहती है जिसमें आप उसे भूल जाएँ, यह रोज़ की कहानी है। उस निद्रावस्था में जाने के बाद भी आपको कुछ तलाश रहती है जिस कारण या तो आप निद्रा में जागते हैं (स्वप्न) या निद्रा से जागते हैं (जाग्रतावस्था) अर्थात् कोई ऐसी चीज़ है, जो आपको कहीं नहीं मिल रही है।

आप दिन भर भागते हैं, दौड़ते हैं, यह डिग्री ले ली या धन प्राप्त कर लिया, लेकिन फिर थक कर सो जाते हैं, निद्रा में भी वह वस्तु नहीं मिलती और निद्रा से जागृति की अवस्था में भी आपको वह वस्तु नहीं मिलती, इसीलिए आप पुनः सो जाते हैं। वह क्या चीज़ है; जिसे हम जागकर, सोकर, स्वप्नावस्था में ढूंढते हुए भटकते रहते हैं। **आधि, व्याधि और उपाधि रोगों से ग्रसित जीव को समाधि में ले जाने से पहले एक परियोजना है**, **जिसे गुरु बताता है कि बेटा अब तुम जाग्रतावस्था में अपनी सुषुप्तावस्था को जोड़ दो, मानसिक अवस्था निद्रा की हो और दैहिक अवस्था जागृति की हो।** निद्रा में हमारी अवस्था थी कि 'I am not aware that I am not aware.' मुझे पता नहीं था कि मुझे कुछ भी पता नहीं है। जागृति में सुषुप्तावस्था को आत्मसात् करके I am aware that I am not aware of my name and form. यही समाधि है। मैं पूर्ण जाग्रत हूँ और अपने नाम-रूप की चेतना से परे हूँ, काल से परे हूँ और मैं यह जानता भी हूँ। कैसे हो यह अवस्था ?

हमने निद्रा में जाना चाहा, नशा करना चाहा, किसलिए? कि हम अपने नाम-रूप की चेतना से परे चले जाएँ, हमें सुकून मिले, हम काल से परे हो जाएँ, हम हो गए। नशा टूटने व निद्रा से जागने पर हमने अनुभव किया कि ऐसा हो गया था लेकिन पूर्ण सुकून इसलिए नहीं मिला क्योंकि हम सोए हुए थे या नशे की हालत में बेहोश थे और अपनी चेतन सत्ता से भी परे थे। **नाम-रूप की चेतना से परे होने पर, काल से परे होने पर हम अपने सच्चिदानंद-स्वरूप अपनी कारण-देह की सम्मुखता की अनुभूति कर लें, ऐसा बिलकुल नहीं है। इससे हमारा आनन्द जाग्रत हो जाएगा, यह भ्रम है।** सद्‌गुरु दिशा-निर्देश करता है, तुम अपने नाम-रूप में उलझे हो। तुम ईश्वर को, अपनी उस निराकार कारण-देह, आनन्द-स्वरूप को नाम-रूप में मानकर उसका सिमरन, भजन, जप, तप, दान, पुण्य, प्राणायाम, तीर्थ, सत्संग, यज्ञ, हवन आदि करो, कुछ ऐसा करो जिससे तुम सीधे अपने आनन्द से जुड़ जाओ।

वास्तव में यही पुरुषार्थ है, अपनी मानसिक चेतनता के स्तर को बढ़ाना। जो आप कर्मठता में करते हैं, उसमें आप थकते हैं तो फिर सोते हैं। गुरु द्वारा निर्देशित पुरुषार्थ द्वारा एवं अपनी जाग्रतावस्था में निद्रा को आत्मसात् करके कारण-देह के सम्पर्क द्वारा जब आपको अपनी स्थूल-देह का रहस्य मालूम चल जाएगा तो आपकी समस्त बाह्य भाग-दौड़ समाप्त हो जाएगी। **स्थूल-देह के इस रहस्य की चाबी देह ने निद्रा में रखी थी और अब उस निद्रा को जब आप अपनी जाग्रतावस्था में आत्मसात् करते हैं तो समाधिस्थ हो जाते हैं।** आप एक-एक पल जाग्रत होंगे लेकिन अपने नाम-रूप की प्रतीति से परे होंगे। इसलिए महापुरुषों ने **नाम** का आधार बताया है:–

''नानक दुखिया सब संसार, सो सुखिया जो नाम आधार।''

आप अपने नाम की बजाय ईश्वर के नाम के साथ जुड़ जाओ नहीं तो संसार में सुख नाम की कोई चीज़ ही नहीं है। क्योंकि हमें सोना पड़ता है, सोकर फिर **सोने में** उठना पड़ता है और **सोने से** उठना होता है और फिर

सोना पड़ता है, इसी प्रकार हमारा जीवन बीत जाता है। **लेकिन तथाकथित जागृति में भाग-दौड़ को बन्द करके, स्थिर होकर निद्रा के साथ आत्मसात् होने पर जब हम अपने आनन्द व कारण-देह के साथ जुड़ जाते हैं तो फिर भी हम सोते हैं, फिर भी हम जागते हैं, हमारा सोना-जागना बन्द नहीं होता लेकिन परिवर्तन यह हो जाता है कि हमारी जागृति में समाधि होती है और हमारी निद्रा भी समाधि होती है।** योगी की निद्रा समाधि स्थिति होती है। लगता है कि जागते हुए कार्य कर रहा है लेकिन वह समाधिस्थ होता है क्योंकि उसे कुछ खोने या पाने से मतलब नहीं होता। **वह, ईश्वर जो करवाता है, वही करता है और ईश्वर द्वारा करवाये गए कृत्य स्वतः होते हैं और प्रारम्भ, मध्य व अन्त में आनन्द से युक्त होते हैं।**

इस प्रकार जाग्रतावस्था में ईश्वर को नाम-रूप में मानकर जब हम एक क्षण भर के लिए भी अपने आनन्द से जुड़ेंगे, उस अवस्था में स्वतः ही हमें काल व अपने नाम-रूप की प्रतीति ही नहीं रहेगी। यह दैवीय नियम है और यह स्वतः हो जाएगा। निद्रा व नशा आदि में कालातीत होना व नाम-रूप की चेतना से परे होना प्रयासपूर्वक हुआ, जो कि समाधि में स्वतः ही हो गया। आपको इन्हें प्रयासपूर्वक लाना नहीं पड़ा। समाधि में योगी अपने उस सच्चिदानंद-स्वरूप जिसे उसने किसी भी नाम-रूप में माना है, उससे सम्पर्क करने के लिए जब उसके ध्यान में जाता है तो उस ध्यान को कहा है—**समाधि**। शास्त्र ने 21 प्रकार की समाधियाँ बतायी हैं—उसके प्रेम में अश्रु बहाएँ , उससे प्यार भरी बातें करें, किसी भी प्रकार से या सब प्रकार से उसमें लीन हो जाएँ। समाधि एक मानसिक अवस्था है। उस का शारीरिक मुद्राओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। **किसी भी प्रकार से आपको अपने उस शुद्ध स्वरूप की मान्यता और अवधारणा हो जाए, उससे सम्पर्क हो जाए, उससे चाहे क्षणिक ही सही, सम्मुखता हो जाए तो उसी का नाम 'समाधि' है। उस समाधि स्थिति में आपका जाग्रत होना परमावश्यक है।** समाधि तभी होगी जब आप अपनी पूर्ण चेतना में सराबोर होंगे और आपको अपने

नाम-रूप की प्रतीति उस समय तक नहीं होगी जिस समय तक आप अपने यार के साथ समाधि स्थिति में होंगे। उस स्थिति का नाम **'आनन्द'** है। निद्रा में आप अपने नाम-रूप की प्रतीति में तो नहीं होते लेकिन आप अपने स्वरूप के सम्मुख भी नहीं होते हैं, इसीलिए आनन्द की अनुभूति नहीं होती।

स्वप्न में क्या होता है? अब एक व्यक्ति लीजिए 'रामकुमार'। रामकुमार सोया और उसे स्वप्न आया और वह किसी भी रूप में स्वप्न में प्रकट हुआ। उस स्वप्न में उसने अपने मित्र, सम्बन्धी, देश, धन, सम्पदा न जाने क्या-क्या देखा। मिला, बिछुड़ा, पाया, खोया, लिया, दिया सब कुछ ऐसे ही दृश्य उपस्थित हुए जैसे कि जागृति में होते हैं। किसी का जन्म देखा, किसी की मृत्यु देखी, वह अपने मित्र श्याम कुमार से मिला, उसे एक लाख रुपये दिये और फिर वह जाग गया। जागृति में आकर उसने अपने स्वप्न पर विचार किया और वह जान गया कि जो भी दृश्य मैंने देखे थे, वह मेरा स्वप्न था। स्वप्न देखने से पहले एक औपचारिकता है कि पहले रामकुमार को सोना पड़ेगा तभी वह स्वप्न में प्रवेश करेगा। स्वप्न की संरचना भी तब हुई जब साकार, रामकुमार अपनी निराकार अवस्था में गया तभी उसने स्वप्न देखा जिसमें उसने अपने मित्र श्यामकुमार को एक लाख रुपये उधार दिये। अब जाग्रत होकर वह श्यामकुमार से अपने एक लाख रुपये वापिस मांगे तो वह उसे पागल घोषित करे देगा। मान लो, उसने अपने मित्र की माँ को स्वप्न में मरते देखा और उठकर वह अपने मित्र से उसकी माँ के लिए अफसोस करे तो वह मित्र उसके किसी सम्बन्धी को उसे डाक्टर या मनोचिकित्सक का परामर्श लेने की सलाह अवश्य देगा।

हमारा स्वप्न हमारे नाम-रूप की सृष्टि होती है और स्वप्न का आधार हमारी नाम-रूप की देह होती है। जैसेकि यहाँ उस पूरे स्वप्न प्रकरण का आधार रामकुमार था, न कि कोई अन्य। स्वप्न में कोई मिले या बिछुड़े, पैदा हो या मर जाए, जब तक स्वप्न देखने वाले की नाम-रूप की देह उस स्वप्न में है, स्वप्न चलता रहता है क्योंकि वही उस स्वप्न का आधार होती है। जब हम स्वप्न से जाग्रत होते हैं तो विचार करने पर जैसे निद्रा का प्रभाव जाग

कर पता चलता है, उसी प्रकार स्वप्न के प्रभावों का भी ज्ञान हो जाता है।

प्रथम, स्वप्न में विचरण करने से पहले मेरा निराकार होना या सो जाना आवश्यक होता है। दूसरे, स्वप्न में जो मेरी स्वप्न वाली देह होती है, पूरे स्वप्न का आधार वही होती है और स्वप्न में वह देह भी होती है तथा वास्तव में वह भी नहीं होती। स्वप्न में आपको फ्रैक्चर हो जाए या चोट लग जाए, पाँच सात टांके लगें तो जाग्रत होकर किसी के हाल-चाल पूछने पर यह तो नहीं कहते न कि रात को स्वप्न में फ्रैक्चर हो गया था या पाँव में टांके लगे थे, लेकिन अब ठीक हूँ। आप पूर्ण आश्वस्त होते हैं कि स्वप्न में जो आपकी देह थी वह यह जागृति वाली देह नहीं थी, क्योंकि आप जिस बिस्तर पर सोए थे, वहीं से उठे हैं। लेकिन स्वप्न वाली देह तो न जाने कहाँ-कहाँ भटकती रही अर्थात् सम्पूर्ण स्वप्न-सृष्टि आपके निराकार मानस से प्रकट हुई थी। **तीसरा, प्रभाव आपको यह मालूम चलता है कि स्वप्न से जागने के बाद आप पुनः उस स्वप्न में नहीं जा सकते।** जवानी में बड़े-बड़े मनमोहक स्वप्न आते हैं। किसी को जगा दो तो वह तड़प उठता है कि क्यों जगा दिया। उससे कहो कि फिर सो जाओ तो यही कहेगा कि अब वह स्वप्न कहाँ से आएगा? स्वप्न के लिए फिर सोना पड़ेगा और फिर सोकर वह स्वप्न आए या न आए, क्या पता उससे विपरीत स्वप्न आ जाए!

एक जिज्ञासु निद्रा से जागा और निद्रा में जागा और उस स्वप्न से फिर जागा तथा पुनः उस स्वप्न में नहीं जा पाया तो वह विचार करने पर बाध्य हो जाता है कि जिसको मैं जागृति कह रहा हूँ कहीं यह भी मेरा स्वप्न ही तो नहीं है। यह विचार करने का उसे पूरा अधिकार है कि वह निद्रा में जागा या निद्रा से जागा, बात तो वही है। मैं तथाकथित जागृति में जो यह सृष्टि देख रहा हूँ कहीं यह भी मेरा स्वप्न तो नहीं है, क्योंकि स्वप्न का कोई सिर-पैर नहीं होता, मुर्गी पहले पैदा हुई कि अण्डा पहले पैदा हुआ। शास्त्र ने इस संसार को स्वप्न ही कहा है। **स्वप्न का, स्वप्न तब पता चलेगा जब हम जागेंगे।** रामकुमार जब स्वप्न देख रहा था तब वह स्वप्न नहीं था, स्वप्न वह कब घोषित हुआ, जब वह जागा।

जिज्ञासु निद्रा से अथवा स्वप्न से तथाकथित जागकर सोचता है कि इस तथाकथित जाग्रत रूप से मैं कैसे जागूँ। मैं शायद ऐसी निद्रा में हूँ जिससे मुझे जागना होगा और जिससे जागने के बाद मैं पुनः इस स्वप्न में लौटकर नहीं जा सकता। मेरी वास्तविक जागृति कैसे होगी तो सद्‌गुरु बताता है कि बेटा जीते जी जागृति में मृत्यु की मानसिक स्थिति पर एकाग्र कर के देख। **जागृति में सुषुप्ति यदि समाधि है तो जागृति में मृत्यु की मानसिक स्थिति पर एकाग्र करने से आपको अमरत्व का आभास हो जाएगा।** अमरत्व पर आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि आप अमर होना चाहते हैं तो मृत्यु की मानसिकता को जीते जी आत्मसात् करो। जैसेकि समाधि में जाने के लिए आपको जागृति में सुषुप्तावस्था की मानसिक स्थिति में विचरना होगा। उसी प्रकार अमरत्व पद के लिए आपको जागृति में मृत्यु की मानसिक स्थिति को आत्मसात् करना होगा, किसी भी तरह से अथवा सब तरह से।

हम सभी साल के किसी दिन, किसी भी समय पैदा हुए और हम जन्म-दिन मनाते हैं। जन्म तो एक विशेष समय हुआ लेकिन हम जन्म-दिन पूरा दिन मनाते रहते हैं। **साल में एक दिन मृत्यु-दिवस भी मना लिया करें। बड़ा कठिन है कि मृत्यु-दिवस कौन सा मनाएँ।** जन्म-दिन की तो हम प्रतीक्षा करते हैं कि आज मेरा जन्म-दिवस है। पूरे दिन में 24 घण्टे होते हैं एक घण्टे में 60 मिनट होते हैं तो पूरे दिन में 1440 मिनिट हुए और साल के किसी दिन आप मरेंगे अवश्य तो आप पूरे दिन के 1440 मिनिट से साल के 365 दिन के मिनिटों को विभाजित कर दीजिए तो लगभग 4 मिनिट आता है। अतः आप 4 मिनिट के लिए रोज़ मृत्यु स्थिति पर एकाग्र करिए। कोई दिन निश्चित नहीं करना, रोज़ 4 मिनिट अपनी मृत्यु को भी दीजिए। हम आपको अनुभव की बात बता रहे हैं कि जब आप 4 मिनिट मृत्यु से आत्मसात् होंगे, तो वह समय 4 – 5 घण्टे हो सकता है लेकिन जब आप उस अवस्था से उठेंगे तो आपको 4 मिनिट ही लगेगा, क्योंकि उस अवस्था में आप महाकालातीत हो जाएँगे।

मृत्यु में क्या होता है, सब जानते हैं। सब हमारे लिए रोते हैं लेकिन हम किसी के लिए नहीं रोते, क्योंकि हमारा किसी से कोई सम्बन्ध नहीं होता। एक देह के नाम-रूप की Awarement में जब हम उस देह के साथ तदरूप हो जाते हैं, तो उस निराधार बन्धन को पालने के लिए उसके परिचय, पूर्णता, प्रमाण, प्रतिष्ठा, परिस्थितियाँ, प्राप्तियों व पागलपन में बन्धनों का जाल बिछा लेते हैं (बंधन और मुक्ति शीर्षक प्रवचनों में मैंने इसकी विस्तृत व्याख्या की है)। लेकिन उन 4 मिनिटों में जब हम स्वयं को मृत्यु की मानसिक स्थिति में पाते हैं तो अपने बंधनों की निरर्थकता व नकारात्मकता का बोध हो जाता है। **उस असत्य के सत्य का आभास हो जाता है और यह उस तथाकथित जागृति में आपकी परम जागृति होगी। दूसरे, सबसे बड़ा भय भी मानव को मृत्यु का ही है तो रोज़ 4 मिनिट के लिए अपने शव से आत्मसात् होने पर मृत्यु का भय समाप्त हो जाएगा।** यह मृत्यु के विरुद्ध मानसिक टीकाकरण होगा क्योंकि न किसी ने अपनी मृत्यु देखी है, न देखनी है, यह भय निर्मूल है। आपको ज्ञान हो जाता है कि मैंने कभी अपनी मृत्यु नहीं देखनी क्योंकि मृत्यु होती ही नहीं है। **तीसरे, हम अपनी जागृति में कितना फूंक-फूंक कर कदम रखते हैं कि कहीं ऐसा न हो जाए, मुझे सावधान रहना चाहिए लेकिन कुछ क्षणों के लिए जब आप मृत्यु के बाद की मानसिक स्थिति में विचरते हैं तो उठने पर आप में इतना उत्साह भर जाता है कि आप बड़े-बड़े रिस्क लेने पर तत्पर हो जाते हैं।** आपको लगता है कि मेरा क्या बिगड़ जाएगा! नंगा-भूखा आया था, ऐसे ही चले जाना है। मेरा क्या चला जाएगा? आप कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। आप यह याद रखिए कि यदि आप ज़िन्दगी का भरपूर आनन्द लेना चाहते हैं तो जीते जी मरने की यह कला सीखनी परमावश्यक है। **"If you want to know the art of living you must know the art of dying."**

आपमें स्वतः भाव से एक विशेष उत्साह की जागृति होती है आपको जीवन के शून्यवाद का अहसास होता है। **जीवन शून्य से प्रारम्भ होता है**

और शून्य पर ही समाप्त होता है। मध्य में भी शून्य ही है। शून्य की गुणात्मकता के लिए उसके साथ एक ईश्वरत्व को लगाना आवश्यक है। आपको यह रहस्य पल्ले पड़ जाएगा कि मैं जो तथाकथित कर्मठ हूँ, जो प्राप्त करता हूँ, या खोता हूँ उसके साथ ईश्वर का नाम लगाना आवश्यक है, अन्यथा वह ज़ीरो होगा। शून्य का एक आध्यात्मिक अर्थ भी है, जो आपको सद्गुरु-कृपा से पल्ले पड़ जाएगा। आप कोई भी अंक लिखें—एक से नौ तक, हरेक का प्रारम्भ और अन्त है, लेकिन शून्य अनादि व अनन्त है, तो **उस मृत्यु योग से आप स्वयं आदि से अनादि और अन्त से अनन्त में प्रवेश कर लेंगे। आपको आभास होने लगेगा कि मैं अनादि, अनन्त, अजर, अमर सच्चिदानंद हूँः—**

''निराकार रूपं शिवोऽहम् शिवोऽहम्
सच्चिदानन्दोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।''

अनेक अनुभूतियाँ और भी होती हैं। रोज़ मात्र चार मिनिट मृत्यु की मानसिक स्थिति में विचरिए, मरना तो अवश्य है ही, बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी! जितनी चाहे मैडिकल रिर्पोटें संभाल लो, स्वास्थ्य के प्रति सतर्क रहो, ब्लड शुगर, ब्लड प्रैशर, खान-पान नियन्त्रित रख लो, पार्क में जाकर हा-हा कर लो (Laugh Therapy), बड़ा कुछ करते हैं, लेकिन एक दिन वह शुभ दिन अवश्य आएगा। इसलिए रोज़ 4 मिनिट अवश्य मृत्यु की मानसिक अवस्था पर एकाग्र करिए, आप शिवत्व को प्राप्त हो जाएंगे। जीवन-काल में हम सभी विशेष व असाधारण बनना चाहते हैं, लेकिन बन नहीं पाते। स्पर्धा की भावना हमें आनन्दित नहीं रहने देती, हम शेष में भटकते रहते हैं। वह मुझसे बड़ा है, वह मुझसे ज्यादा सुन्दर है, उसकी पोस्ट मुझसे बड़ी है, हम एक-दूसरे से तुलना करते रहते हैं और इस तथाकथित कम्पीटीशन में अन्ततः आसक्तियों को लिए मर जाते हैं। हम अपने ध्यान में शव को चिता में जलाते हैं, उसकी भस्मी बनती है और हम अपनी भस्मी से आत्मसात् हो जाते हैं, उन 4 मिनिटों में ही। **वो भस्मी क्योंकि हमारा महाशेष है, अतः उसे धारण करते ही हम भी महाविशेष व**

अतुलनीय हो जाते हैं। जब आप वर्तमान में खाक से जुड़े रहेंगे तो संसार की किसी भी वस्तु का महात्म्य ही नहीं रहेगा। आप स्वयं भगवान शंकर की तरह अति असाधारण हो जाएँगे। आप संसार में सक्रिय होंगे, कार्य करेंगे, लेकिन कुछ प्राप्त करने के लिए नहीं, बल्कि आनन्द में खेलेंगे। आपका खोना व पाना सब कुछ आनन्दमय होगा।

सिकन्दर दिग्विजय के लिए निकला तो उसके गुरु सुकरात ने उसे शिक्षा दी थी कि आप भारत में जाएगे तो वहाँ के संतों, फकीरों को तंग मत करना, उनसे कुछ सीखना, उन्हें प्रणाम करना। एक स्थान पर एक हृष्ट-पुष्ट साधु धूप में लेटा हुआ था। सिकन्दर की दृष्टि में किसी की शारीरिक पुष्टता का केवल एक ही उपयोग था कि उसे अच्छा लड़ने वाला सैनिक मिले। सिकन्दर ने अपना घोड़ा वहाँ खड़ा किया और उस फकीर को सलाम करके उसके हृष्ट-पुष्ट शरीर व स्वास्थ्य की प्रशंसा की तथा उसे अपनी फौज में भरती होने को कहा। फकीर ने पूछा, कि क्यों ? तो सिकन्दर बोला हम आपको बहुत अच्छी ट्रेनिंग दिलाएँगे, आप हृष्ट-पुष्ट हैं, जल्दी ही आपकी पदोन्नति करके हम आपको सूबेदार बना देंगे और जब पाँच-सात युद्ध आप जीत लेंगे तो हम आपको प्रधान सेनापति बना देंगे। फकीर ने पूछा तो फिर क्या होगा? सिकन्दर बोला, फिर आप आनन्द से लेटना, खाना, पीना, आराम करना। फकीर बोला वह तो मैं अभी भी कर रहा हूँ। सिकन्दर उसके उत्तर से प्रभावित हुआ और कहा कि फकीर बादशाह आप हमारे योग्य कोई सेवा बताइए, उस फकीर ने कहा सेवा यही है कि आप चूंकि मेरी ओर आ रही धूप रोक रहे हैं, अतः आप यहाँ से चले जाइए।

आप जब भस्मी रूप महाशेष को धारण कर लेते हैं तो आपकी तथाकथित दौड़-भाग समाप्त हो जाती है और आपका जीवन यथार्थ की ओर अग्रसर होता है। **यहाँ पर जो एक विशेष प्रकरण होता है, वह यह है कि वही सद्‌गुरु जिसे आपने एक नाम-रूप में माना था, धारण किया था, वह भी आपको मानने लगता है।** सद्‌गुरु किसी तथाकथित जाग्रत अथवा सोए हुए को उपदेश नहीं देता, उसे कोई जाग्रत साधक चाहिए। जब आप

मृत्यु को अपने जीवन-काल में आत्मसात् कर लेते हैं तो आप जागृति की ओर अग्रसर हो जाते हैं। **पहले आपने सद्गुरु को माना था, धारण किया था, अब वह आपको मान लेता है, धारण कर लेता है और तब सद्गुरु मात्र अपने नाम-रूप में नहीं रहता। उसे नाम-रूप में सीमित मानने की भूल कभी मत करना। वह उस निराकार ईश्वर का सीधा साक्षात् प्रतिनिधि है, जो अपने श्रद्धालु जिज्ञासु को मंज़िल की अनुभूति कराने के लिए साकार देह धारण करके आता है।**

जब आप जाग्रत होना शुरू हो जाते हैं तो सद्गुरु अपने आठ स्वरूपों में आपके जीवन में प्रकट होने लगता है—उस समय आपको लगता है कि मैं स्वप्न-सृष्टि की देह ही तरह तथाकथित जाग्रत था। अपनी उस स्वप्न वाली नाम-रूप की देह के परिचय, प्रमाण, प्राप्तियों, प्रतिष्ठा, परिस्थितियों, पूर्णता व पागलपन के लिए न जाने कितने भ्रम-जाल में उलझा रहा और मेरी देह चली गई, न जाने मैं छोटे-छोटे लक्ष्यों की प्राप्ति में कितना-कितना कर्मठ बना रहा पर बाद में पता चला कि वह सब करके मैंने क्या कर लिया! वह समय आप परोपकार में लगाते, ईश्वर के भजन, चिंतन, मनन, जप, तप, सिमरन, ध्यान, पूजा, यज्ञ, हवन, तीर्थ-यात्रा आदि पुरुषार्थ कर्मों में लगाते तो कुछ लाभ होता। इस प्रकार आप जाग्रत होना प्रारम्भ हो जाते हैं, तो **वही सद्गुरु जिसे आपने एक नाम-रूप में माना था, अपने आठ स्वरूपों में प्रकट हो जाता है।**

पहला स्वरूप है पुकार, पहले आप सद्गुरु के पास जाते थे, अब सद्गुरु आपको पुकारता है। सद्गुरु को किसी से कुछ लेना-देना नहीं होता, ज़मीन और भौतिक जगत का कोई भी आकर्षण उसे आकर्षित नहीं करता। अतः सद्गुरु जब आपको किसी भी बहाने से पुकारे, तो समझो उसने आपको अपना लिया है। उस पुकार को आप ईश्वरीय सन्देश मानिए। **दूसरा स्वरूप है—पदार्पण**, वह कभी भी आपके यहाँ आपकी जिज्ञासावश समय-बेसमय पदार्पित हो जाता है। जब आप देखें कि सद्गुरु महाराज का पदार्पण हुआ है, तो आप मान लीजिए कि आप उसकी विशेष

चाहत में हैं। **तीसरा स्वरूप है—प्रकटीकरण**, वह आपके स्वप्न, आपकी जागृति, आपके ख्याल में किसी भी अवस्था में प्रकट होकर आपको कुछ न कुछ शिक्षा दे जाता है, उसमें शक्ति होती है, प्रकट होने की।

उसका चौथा स्वरूप है—परिणति, सद्गुरु ने जब आपको अपना लिया था, तब आपको कोई तीव्र जिज्ञासा हुई और आपने टी. वी. खोला तथा वहाँ से किसी महापुरुष के शब्द आपको सुनाई दिए, तो वह भी आपका सद्गुरु होता है। अतः महापुरुषों की कभी आलोचना नहीं करना। पता नहीं सद्गुरु किसके मुख से, किसका स्वरूप धारण कर, आपकी जिज्ञासाओं को शांत करते हैं, यह आप नहीं जानते। **असंख्य नाम असंख्य रूपों में सद्गुरु एक ही होता है, न जाने वह किस नाम से किसके रूप में आपको क्या-क्या बता दे। पाँचवा स्वरूप है—परिस्थिति**, जब सद्गुरु आपको अपना लेता है तो आपके जीवन में कोई परिस्थिति उत्पन्न कर देगा, परिस्थिति के समस्त पहलू वह स्वयं बन जाता है। आपकी दैहिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थिति ऐसी उत्पन्न कर देता है कि वह परिस्थिति आपको बहुत कुछ सिखा देती है। अतः जब भी साधक अथवा जिज्ञासु के जीवन में कोई विशेष अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति आ जाए, तो आपने उसे अपने सद्गुरु का प्रसाद ही समझना है। उस परिस्थिति को प्रज्ञापूर्वक बिना डावांडोल हुए समझने का प्रयत्न करिए, वह परिस्थिति आपके जीवन का परिदृश्य ही बदल देगी। शर्त यही है कि आपको सद्गुरु में पूर्ण अटल विश्वास हो।

छटा स्वरूप है—प्रकृति, आप किसी विशेष कार्यवश घर से बाहर निकले कि बहुत बारिश हो गई, आँधी, तूफान आ गया तो सद्गुरु उस प्राकृतिक स्वरूप में आ जाता है, यह बताने कि इस कार्य को मत कर। सद्गुरु में वह शक्ति होती है कि वह प्रकृति बनकर आपके कार्य में या तो बाधा उत्पन्न कर देता है या बाधा दूर कर देता है। तो कभी प्रकृति को मत कोसना कि मौसम खराब हो गया, नहीं तो मैं यह कार्य कर लेता! मौसम को खराब कभी नहीं कहना, न जाने सद्गुरु अथवा ईश्वर वह प्रकृति बनकर

आपके सम्मुख आपके हित के लिए किस-किस रूप में खड़ा है। **सातवां स्वरूप है—पदार्थ या वस्तु**, आप गाड़ी से बाहर निकले, आपके सामने एक बड़ा पत्थर आ गया तो सद्‌गुरु वह पत्थर बनकर आपके सम्मुख खड़ा है, रुक जाइए! सोचिए वह रास्ता आपके लिए अनुचित भी हो सकता है अथवा जिस कार्य के लिए आप जा रहे हैं, कालेश्वर आपके हित के लिए समय का सुनियोजन कर रहा है। **सद्‌गुरु का आठवां स्वरूप है—प्राणी**, वह कुत्ता, सूअर, गीध, मगरमच्छ, रीछ, मक्खी, मच्छर आदि किस वक्त, किस प्राणी का रूप लेकर आपको वह क्या सिखा देता है! आप नहीं जानते। आप जा रहे हैं, रास्ते में एक मरा कुत्ता पड़ा है, आप नाक पर रुमाल रखकर निकलते हैं। तभी देखते हैं कि गीध वहाँ ऐसे चाव से फड़फड़ा रहे हैं जैसेकि वहाँ उन्हें बहुत बड़ी दावत का निमन्त्रण हो। यहाँ सद्‌गुरु गीध बन कर सिखाता है कि देख गीध को, जिसे हम निकृष्ट जीव कहते हैं, वह कितना महत्त्वपूर्ण है कि उसे उस मरे हुए कुत्ते से दुर्गन्ध ही नहीं आ रही। अर्थात् इस प्रकृति एवं संसार महानाट्यशाला में हर प्राणी स्वयं में परिपूर्ण है:—

''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते,
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।''

इस प्रकार सद्‌गुरु कोई भी प्राणी बनकर आपको न जाने किस-किस प्रकार से सृष्टि व प्रकृति के रहस्यों का ज्ञान करवाता रहता है। जब जीवन-काल में मृत्यु की स्थिति से आत्मसात् होने पर आपके जीवन में जागृति आती है (इसे लय-योग या मृत्यु-योग भी कहा है) **तो उस समय आपका सद्‌गुरु, जिसे आप एक नाम-रूप में मानते हैं, अनेक नाम और अनेक रूपों में आपको कहीं भी अकेला नहीं छोड़ता, क्योंकि सद्‌गुरु ने आपको जिज्ञासु से मुमुक्षु बनाने का बीड़ा उठाया हुआ है।** जिज्ञासु के पाँच स्तर हैं—सामान्य जिज्ञासु, जिज्ञासु, महाजिज्ञासु, परम जिज्ञासु, अति जिज्ञासु। अति जिज्ञासु से सद्‌गुरु आपको मुमुक्षु की श्रेणी में ले जाता है, जहाँ पर आप अपने जीवन-काल में मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं और वहाँ जाकर सद्‌गुरु विलुप्त हो जाता है। न वहाँ आप सद्शिष्य रहते हैं, न वह

सद्‌गुरु ही रहता है। आप सीधे उस परम पिता परमेश्वर के द्वार पर पहुँच जाते हैं, जहाँ ईश्वर का ज्ञान आपको स्वयं ईश्वर ही देता है:–

''सो जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।''

सबसे बड़ी सावधानी सद्‌गुरु के दरबार व उसकी शरण में यह रखनी पड़ती है कि कभी भी सद्‌गुरु से कुतर्क न करें। वह आपको कहां ले जाना चाहता है, उसे आपको क्या सिखलाना है, उसे क्या नज़र आ रहा है! सद्‌गुरु की हज़ार निगाहें होती हैं, उससे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। जब उसकी शरण में जाएँ तो कभी भी कुछ बनकर मत जाना, आपको आश्वस्त हो जाना चाहिए कि आप वहाँ क्यों जा रहे हैं? उस चौदह भुवनों के स्वामी से कुछ भी नहीं छिपाना है और कुतर्क नहीं करना है। इस विषय में दिल्ली के सम्राट जनमेजय से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करूँगा।

आज से चार हज़ार नौ सौ पैंसठ वर्ष पूर्व की बात है। महाराज परीक्षित के पुत्र थे जनमेजय। जो दिल्ली (तब इसे इन्द्रप्रस्थ कहा जाता था) के सम्राट थे। अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए (जैसा कि सबको विदित ही है कि महाराज परीक्षित की मृत्यु श्रापवश सर्प-दंश से हुई थी) उन्होंने समस्त भूमण्डल के सर्पों को मारने का बीड़ा उठाया और 21 हवन कुण्ड बनाकर विशाल नाग-यज्ञ किया, जिसमें पृथ्वी के सर्प, मन्त्रों के प्रभाव से स्वयं ही यज्ञाग्नि में आ-आ कर भस्म होने लगे। अन्ततः भगवान विष्णु के शेषनाग की बारी भी आई, भगवान विष्णु ने स्वयं प्रकट होकर जनमेजय से वह यज्ञ बन्द करने की प्रार्थना की तो महाराज जनमेजय ने वह यज्ञ बन्द कर दिया। परन्तु उन्हें इसका बहुत अभिमान हो गया कि भगवान विष्णु स्वयं उनसे प्रार्थना करने आए। एक दिन जनमेजय अपने सद्‌गुरु महाराज व्यास जी के पास बैठे महाभारत के युद्ध की कथा-श्रवण कर रहे थे। जनमेजय परम बुद्धिमान, परम सशक्त और असीम आध्यात्मिक शक्तियों से परिपूरित थे। उन्होंने गुरु व्यास से कहा कि महाराज महाभारत के उस भयानक युद्ध के समय भगवान कृष्ण, भीष्म

पितामह, द्रोण आदि थे, यदि वे चाहते तो उस भयंकर नरसंहार को रोक सकते थे। व्यास जी ने कहा कि महाराज कठिन प्रारब्ध की घटनाएँ हो कर ही रहती हैं, उस समय ऐसा होना ही था। लेकिन महाराज जनमेजय ने गुरु व्यास की बात काटकर कहा कि मैं यह नहीं मानता, यदि मैं उस समय होता तो मैं यह युद्ध कदापि नहीं होने देता। व्यास जी समझ गए कि राजा को अभिमान हो गया, और **सद्‌गुरु कभी भी अपने सद्‌शिष्य का अभिमान नहीं रहने देता।**

गुरु व्यास त्रिकाल-दर्शी थे। उन्होंने जनमेजय से कहा, राजन महाभारत की बात छोड़ो, मैं आपको सावधान कर रहा हूँ कि आप आगामी एक वर्ष में काले घोड़े पर मत बैठना, मगर तुम अवश्य बैठोगे। काले घोड़े पर बैठ भी जाओ तो तुम वन में और वन में नदी की ओर मत जाना, मगर आप अवश्य जाएँगे। वहाँ सत्रह वर्ष की सुन्दर कन्या खड़ी होगी तू घोड़ा वहाँ मत खड़ा करना, घोड़ा वहाँ खड़ा कर भी ले तो उस कन्या को घोड़े पर मत बिठाना, उसे घोड़े पर बिठा भी लो तो उसे महल में मत लाना और महल में लाकर उससे विवाह मत करना और यदि विवाह भी करो तो शास्त्रज्ञ विद्वान पंडितों से करवाना, ब्राह्मण बटुकों से मत करवाना, मगर तू सब कुछ ऐसा ही करेगा और तुझे किसी बात पर क्रोध आए तो भी उन पर हाथ नहीं उठाना, मगर तू 21 ब्राह्मण बालकों का वध भी अवश्य करेगा। अब तू जा। महाराज जनमेजय गुरुदेव के वचन सुनकर हतप्रभ रह गए और पूरा वर्ष वे काले घोड़े पर नहीं बैठे।

एक वर्ष बीतने पर एक दिन महाराज को घुड़सवारी की इच्छा हुई तो उन्होंने सोचा कि साल तो बीत चुका है अब काले घोड़े पर बैठने में क्या हर्ज है। परन्तु उस वर्ष में एक अधिक मास था, जिसे पुरुषोत्तम मास कहा जाता है, तो महाराज की वर्ष-गणना गलत हो गई। वे काले घोड़े पर सवार हुए, वन में नदी की ओर गए, वहाँ सुन्दर युवती थी, उससे बात करके उसे घोड़े पर बिठाकर महल में ले आए और उस युवती ने उनसे विवाह करने की इच्छा प्रकट की, दोपहर का समय था पता चला कि नगर के समस्त विद्वान

ब्राह्मण मेला देखने गए हैं तो उन्होंने ब्राह्मणों के लड़कों को विवाह-कार्य सम्पन्न कराने के लिए बुला लिया। विवाहोपरान्त इक्कीस ब्राह्मण युवकों का ब्राह्मण भोज हुआ और इतने में तेज हवा चली और महारानी के सिर से दुपट्टा उड़कर एक ब्राह्मण बटुक की थाली में गिर गया। उस समय भारत में विशेष कर नवविवाहित स्त्री के सिर से दुपट्टा गिरना ठीक नहीं माना जाता था। उन इक्कीस ब्राह्मण लड़कों में एक लड़का महारानी की ओर देख कर हँस पड़ा और उसे हँसता देख सभी ब्राह्मण बटुक हँसने लगे। महाराज जनमेजय को इतना क्रोध आया कि तुरन्त तलवार निकाल कर उन 21 ब्राह्मण बालकों की गर्दनें काटकर हवनकुण्ड में डाल दीं और जैसे ही हवनकुण्ड में इक्कीसवें बालक का सिर पड़ा तो आकाशवाणी से महाराज को कोढ़ी होने का श्राप उद्घोषित हो गया तथा महाराज जनमेजय कोढ़ी हो गए। कोढ़ से ग्रस्त जब वह महल में आए तो दासियाँ भी उनसे घृणा करने लगीं।

उस अवस्था में वे गुरु के पास गए। क्षमा-याचना की कि महाराज मैंने आपका कहा नहीं माना और मैं तो महाभारत का युद्ध रुकवाने की बात कर रहा था, मैं तो यह छोटी सी घटना भी नहीं टाल पाया। गुरुदेव अब मुझ पर कृपा करो। गुरु व्यास ने उन्हें गुरु पराशर के आश्रम में जाने और वहाँ श्रद्धापूर्वक सत्संग सुनने की आज्ञा दी। समर्थ सद्गुरु के मुख से सत्संग सुनने से कई प्रकार के दैहिक विकार और विक्षेप दूर हो जाते हैं। महाराज जनमेजय गुरु पराशर के आश्रम में गये और रोज़ वहाँ सत्संग सुनने से उनका कोढ़ ठीक होना शुरू हो गया। सिर से, मुँह से, गले, छाती से धीरे-धीरे जाता हुआ अब मात्र पैर के अंगूठे के एक अंश तक थोड़ा सा कोढ़ रह गया तो वे बड़े प्रसन्न हो गए कि अब मैं ठीक हो गया हूँ। दो-चार दिन में इस अंगूठे का रोग भी दूर हो जाएगा फिर मैं अपने महल में जाकर आनन्द लूँगा।

रोग ठीक होने पर महाराज जनमेजय की अहं बुद्धि पुनः जाग्रत हो गई। संयोगवश उस दिन पराशर मुनि महाभारत की कथा का प्रसंग सुना

रहे थे कि महाभारत के युद्ध में भीमसेन, जो हनुमान जी के भाई थे, उन्हें पाँचों-प्राणों की सिद्धि थी (यहाँ एक बात मैं बहुत स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि आजकल सभी जो तथाकथित प्राणायाम कर रहे हैं वह प्राण-व्यायाम या Breathing Excercise है, प्राणायाम वस्तुतः प्राण, अपान, समान, व्यान व उदान पाँचों-प्राणों के आयाम को कहते हैं; जिनसे ईश्वर सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड की रचना, पालन व संहार करते हैं। योगी प्राणायाम द्वारा इन पाँचों-प्राणों पर नियन्त्रण करते हैं।) जब भीम युद्ध-भूमि में अकेले उतरे और सामने दुर्योधन हाथी पर सवार होकर आया तो भीमसेन को इतना क्रोध आया कि उन्होंने सूंड से हाथी को पकड़ कर आकाश में इतना ऊँचा फेंका कि वह पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण सीमा के बाहर नभमण्डल में चला गया। अब महाराज जनमेजय को संशय होने लगा । पराशर मुनि ने कथा सुनाते हुए कहा कि भीमसेन ने एक के बाद एक पाँच हाथी इसी प्रकार ऊपर फेंक दिए, जो आज भी नभमण्डल में जीवित घूम रहे हैं। महाराज जनमेजय अब बोल ही उठे कि आप कह रहे हैं तो मुझे हाँ कहना ही पड़ता है, पर मुझे विश्वास नहीं होता कि इस तरह हाथी कैसे कोई ऊपर फेंक सकता है! पराशर मुनि स्वयं प्राणसिद्ध महात्मा थे। उन्होंने जनमेजय के संशय का उत्तर देने के लिए पूछा कि क्या मैं उस हाथी को नीचे खींचू तो जनमेजय ने हामी भर दी। मुनि पराशर ने सूक्ष्म प्राणों पर नियन्त्रण करके हाथ ऊपर किया और पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण सीमा से बाहर जाकर अपनी प्राण शक्ति से एक हाथी को नीचे फेंक दिया, जो चिंघाड़ता हुआ धरती पर आ गिरा। पराशर मुनि ने पूछा कि क्या शेष चार हाथी भी देखने हैं? महाराज जनमेजय हतप्रभ रह गए। अब सद्‌गुरुदेव पराशर मुनि ने कहा कि राजन! तुम मूर्ख हो। तुमने हमारी बात पर कुतर्क किया, इसीलिए अब तेरा कोढ़ पूरा साफ नहीं होगा। तुम अब यहाँ से चले जाओ। अतः महाराज जनमेजय अपने अंगूठे के कोढ़ सहित ही महल में वापिस आ गए।

सद्‌गुरु को जिस समय, जिस भी अवस्था में देखना है, उसे प्रणाम करना है क्योंकि वह किस समय किसको क्या सिखाना चाह रहा है, आप

नहीं जानते। उसके व्यक्तिगत जीवन में दखलअन्दाज़ी मत करिए। उसका अन्धानुसरण मत करिए, उसने आपको जो आज्ञा दी है, उसका अनुसरण करिए। वह समर्थवान है, वह आपको जो दिशानिर्देश देता है, आप मात्र उसका अनुसरण करिए। तभी आप परम जाग्रत हो पाएँगे। अतः जिसे आज हम अपनी जाग्रतावस्था कहते हैं, वह भी हमारा स्वप्न है लेकिन **स्वप्न है** यह पता कब चलेगा, जब हम कुछ क्षण के लिए मृत्यु की मानसिक स्थिति को अपने जीवन में धारण कर लेंगे। उससे हमें वास्तविक जागृति महसूस होने लगेगी और निरर्थक धारणाओं व नकारात्मक कर्मकाण्ड से हम परे हो जाएँगे तो जीवन में सुख, शान्ति, संतोष, समृद्धि, स्वास्थ्य, स्वजन, सत्संग एवं दिव्यता का पदार्पण हो जाएगा। आपका साधारण जीवन दिव्य-जीवन बनने लगेगा जो कि हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता, सर्वसम्पन्नता, भक्ति, मस्ती, शक्ति, साहस, उत्साह, ईश्वरीय-कृपा, प्रेम व आनन्द से परिपूरित होगा।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(20 व 27 जून, 2004)

सिद्धि

(भाग 3)

सम्पूर्ण ईश्वरत्व का प्रतिनिधि व सम्पूर्ण महा चेतना तथा आनन्द का संघनित स्वरूप मानव, अपने नाम-रूप की चेतनता में आकर जब एक ही नाम-रूप में सिमट गया तो अपने उस **'कारण'** सच्चिदानंद स्वरूप से वंचित सा, परे सा, विमुख सा हो गया। **'कारण'** कभी भी इससे विमुख नहीं होता, इसलिए जन्मों-जन्मान्तरों में यह धक्के खाने लगा। ईश्वर की परम विलक्षण, सर्वोत्कृष्ट, महा चमत्कारिक व अति अद्‌भुत् रचना मानव-देह आधि, व्याधि व उपाधि से ग्रसित होकर संसार में सबसे अधिक कष्टों, पीड़ाओं, रोगों, दोषों और सब प्रकार के दुःखों का घर बन गई। इसअवस्था में किसी न किसी जन्म में संस्कारोंवश तथा माता-पिता की कृपावश किसी महापुरुष की शरण प्राप्त हुई, जिसने इसका दिशा-निर्देशन किया और **आधि, व्याधि व उपाधि से मुक्त होने के लिए समाधि में जाने का परामर्श दिया।** 'समाधि' वह मानसिक अवस्था है, जहाँ 'धी' अर्थात् बुद्धि सम हो जाती है।

ईश्वर ने मानव-देह को प्रज्ञा, विवेक, मेधा व ऋतम्भरा इन चार ईश्वरीय बुद्धियों से परिपूरित किया था। लेकिन जैसे ही हम मानव अहंवश, संस्कारोंवश, अज्ञानवश, मूर्खतावश एवं पाश्चात्यानुगमनवश अपने नाम-रूप की चेतना में फँस गए तो हमारी मात्र आई. क्यू. वाली बुद्धि ही देह का संचालन व जीवन का निर्देशन करने लगी और हम अपने **'कारण'** से परे से होकर तथा अपनी चारों ईश्वरीय दिव्य बुद्धियों से वंचित होकर पैरालाइज़

हो गए। इस पैरालैसिस से आज सम्पूर्ण मानव समाज ग्रसित है। अपने **'कारण'** ईश्वर, उस सच्चिदानंद स्वरूप से अवगत होने व उसे जानने के लिए देह मात्र एक साधन है, लेकिन अपने नाम-रूप की चेतना में हमने देह को ही साध्य मान लिया। देह को अपना स्वरूप मानकर हम समझने लगे कि मुझे ही सब कुछ करना है, मैं ही अपने लिए, परिवार के लिए, कैरियर के लिए, समाज के लिए, देश व विश्व के लिए उत्तरदायी हूँ और न जाने हम अपने नाम-रूप की चेतनता में कितने ठेके ले लेते हैं! अतः नाम-रूप की चेतनता में ही हम फँसे, कैसे? मैं कुछ चित्र आपके सम्मुख रखूँगा।

एक व्यक्ति सोया हुआ है, उसका एक नाम व एक रूप है, उसमें चेतना भी है, क्योंकि वह मरा हुआ नहीं है, सोया हुआ है। लेकिन वह स्वयं अपने नाम-रूप की चेतना में नहीं है। कोई व्यक्ति यदि हमारे आंगन में आकर सो जाए तो उसके परिचय के लिए पहले हम उसे जगाएँगे। जागने के बाद उसकी चेतना नाम-रूप की चेतनता में परिवर्तित हो जाएगी कि मैं अमुक-अमुक हूँ। **सोए हुए भी** चेतना **थी, उसका नाम-रूप भी था, लेकिन जब तक हम उसे जगाएँगे नहीं, तब तक वह स्वयं अपनी नाम-रूप की** चेतनता **में नहीं आएगा।** जागकर उसकी awareness मात्र उसके नामरूप तक ही सीमित होगी क्योंकि उसे ऐसी ही आदत पड़ी हुई है। यह सुषुप्त स्थिति में चेतनता है, जो हमारे **'कारण शरीर'** की महा चेतनता है, हमारा सच्चिदानंद स्वरूप है। जब हमने स्वयं को मात्र अपने ही नाम-रूप में पहचाना कि मैं अमुक-अमुक हूँ, ये मेरी डिग्रियाँ, घर-बार, पद, व्यवसाय, रिश्ते-नाते, सम्बन्धी, मित्र-शत्रु, धर्म, कर्म, देश, विदेश, सामाजिक प्रतिष्ठा व प्रभाव है, तो वह ईश्वरीय शक्ति, वह महा चेतनता, हमारा सच्चिदानंद स्वरूप, वह अकाल पुरुष सिमटकर मात्र एक हमारी देह के नाम-रूप तक सीमित हो कर अति तुच्छ व संकीर्ण हो गया।

कोई चिकित्सक सोया हुआ है और एक रोगी वहाँ पहुँचे, तो उस डाक्टर से लाभ लेने के लिए, उससे परामर्श लेने के लिए चिकित्सक को जगाना पड़ेगा। जागने के बाद चिकित्सक को अपनी प्रतिभाओं एवं गुणों का

ज्ञान होगा कि मैं अमुक चिकित्सक हूँ। सोए हुए क्योंकि वह अपने नाम-रूप की चेतना में नहीं होता तो उसे अपनी प्रतिभाओं व डिग्रियों का कोई ज्ञान नहीं होता। डॉक्टर जागकर मरीज़ को देखने लगे और संयोगवश रोगी सो जाए तो रोगी को भी जगाना पड़ेगा अर्थात् **सोया हुआ व्यक्ति रोगी भी नहीं होता। आपका रोग, दोष, पाप-पुण्य, गुण-प्रतिभाएँ सब कुछ नाम-रूप की प्रतीति में हैं।**

एक नवजात शिशु किसी के घर पैदा हुआ और उसके माता-पिता व सगे सम्बन्धी अक्सर प्रसन्न होते हैं और सब उसके माता-पिता व सम्बन्धियों को बधाई देते हैं, लेकिन उस बच्चे को कोई बधाई नहीं देता। **आप अपने नाम-रूप की** चेतना **में बधाई भी उन्हीं को देते हैं जो नाम-रूप की** चेतना **में हैं।** बच्चे को कोई इसलिए बधाई नहीं देता क्योंकि बच्चे को मात्र चेतना है, लेकिन नाम-रूप की चेतना नहीं है। दूसरी ओर किसी घर में कोई मर गया है उसकी लाश पड़ी हुई है, तो मरने का अफसोस भी उसके घर वालों को करते हैं। मुर्दे को कोई अफसोस नहीं करता, कि हमें तुम्हारे मरने का बहुत दुःख है। **बच्चे में मात्र** चेतना**है लेकिन नाम-रूप की नहीं है और मृतक में नाम-रूप है, लेकिन** चेतना **नहीं है और सोए हुए व्यक्ति में नाम-रूप है,** चेतना **है, लेकिन नाम-रूप में** चेतना **नहीं है।** इसलिए उसे जगाना पड़ता है। ये तीनों उदाहरण नित्य दोहरा लीजिए, आपको कोई शास्त्र पढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, सारा सत्य पल्ले पड़ जाएगा।

हमारे जगत का समस्त व्यवहार हमारे नाम-रूप की चेतनता में होता है। नवजात शिशु के साथ, सोए हुए व्यक्ति के साथ और मृतक के साथ कोई व्यवहार नहीं करता। सबसे अद्‌भुत् चमत्कारिक तथ्य यह है कि किसी ने अपना रूप आज तक नहीं देखा। दर्पण में जब हम अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं तो वह हमारा उल्टा रूप होता है, हमारी दायीं आंख प्रतिबिम्ब की बाईं आँख होगी। **आज तक किसी ने अपना वास्तविक रूप नहीं देखा। वे आँखें जो सारे जगत को देखती हैं, उन आँखों ने खुद को नहीं देखा।** फोटो जितनी व जैसी चाहे खिंचवा लो, 90 वर्ष के बूढ़े को 20 वर्ष का जवान

दिखाया जा सकता है, आजकल बड़ी-बड़ी तकनीक आ गईं हैं। अपना यथार्थ स्वरूप क्या है? वह रूप आज तक किसी ने भी नहीं देखा है। हम क्यों भटक रहे हैं, इस भटकन के पीछे दर्शन क्या है? वास्तव में हम संसार में अपना स्वरूप देखना चाहते हैं। **इस जगत में हम अपना रूप खोज रहे हैं। एक अज्ञात टीस है सबको और जहाँ पर हमें कुछ, किसी रूप में थोड़ी सन्तुष्टि मिलती है, वहाँ हम ठहर जाते हैं, उसे अपना बना लेते हैं।** हम जन्मों-जन्मान्तरों में, एक ही देह के विभिन्न रूपों, बचपन, जवानी, बुढ़ापे में अपना रूप ढूँढ रहे हैं लेकिन हमें वह कहीं नज़र नहीं आता, क्योंकि हम अपने स्वरूप से **वंचित से** हो गए हैं।

अन्त में हम संसारियों को अपनी सन्तान में कुछ अपना सा रूप नज़र आता है, इसीलिए सन्तान सबको बहुत प्यारी होती है, यह आध्यात्मिक सत्य है। ईश्वर ने यह प्रजनन की प्रक्रिया क्यों बनाई। किसी से पूछो कि आपका नाम, वह तुरन्त बता देगा, आपके पिता का नाम, वह भी सबको अधिकतर पता ही होता है, कि आपके दादा जी का नाम, कुछ सोचकर वह भी बता देता है, कि उनके पिता का नाम यानि परदादा का नाम क्या था? तो कोई भी भला आदमी कहेगा कि भैया तुम्हें क्या और काई काम नहीं है। हम बच्चे पैदा करते हैं ताकि नाम चलेगा। आप स्वयं से पूछिए कि आपको कितनी पीढ़ियों का नाम याद है और लकड़दादा व परदादा का नाम मालूम भी हो तो उनको या आपको क्या अन्तर पड़ जाएगा? आप कुछ भी बोल दीजिए। हम बच्चे पैदा करते हैं, क्योंकि हम अपना रूप देखना चाहते हैं। **एक अज्ञात दर्शन है, एक टीस है कि हम अपनी शक्ल देखने के लिए पागल हैं। हम स्वयं को अपनी सन्तान में देखना चाहते हैं, लेकिन हमें अपना रूप वहाँ भी नज़र नहीं आता, क्योंकि हम अपने स्वरूप से वंचित से हो गए हैं और जब कभी प्रभु-कृपा से अपने स्वरूप का दिग्दर्शन होता है** (**जो कि आँखें मूंदकर होता है**) तो जीव झल्ला हो जाता है।

संसार को देखते-देखते यह जीव थक जाता है और अपने **'कारण'** के प्रति समर्पित होने लगता है। ईश्वर की मान्यता व अवधारणा हो जाती है

और इसकी देह इससे प्यार करने लगती है तथा विवेक जाग्रत हो जाता है। जप, तप, सिमरन, यज्ञ, हवन, प्राणायाम, स्वाध्याय, दान, पुण्य शुरू हो जाता है और कभी विशेष कृपा-वश इसे अपने स्वरूप की झलक मिलती है तो इसके नेत्र मुंदने शुरू हो जाते हैं, नेत्र खोलने को दिल नहीं करता, क्योंकि इसे अपने स्वरूप की झलक मिलने लगती है। कभी आप अपने घर के स्टोर में किसी चूहे को देखिए। वह चंचल सा यहाँ-वहाँ कुतर-कुतर करता रहता है, चलता रहता है। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह अपना स्थान बदलता रहता है। संयोग से यदि उस चूहे के मुख में पारा लग जाए तो उसकी गरदन लुढ़क जाती है और दौड़-भाग बन्द हो जाती है। अरे! जब आपको अपना स्वरूप नज़र आएगा तो आपकी बाह्य दृष्टि व भाग-दौड़ बन्द हो जाएगी। आप सब परम सौन्दर्यवान हैं। जब अपना वह स्वरूप व सौन्दर्य आपको नज़र आएगा, इष्ट के रूप में जब जीव स्वयं को देखता है (क्योंकि उपासना द्वैत में होती है) तो वह कह उठता हैः—

''आप ही मोरे नयनवा पलक ढाँप तोहे लूँ,
ना मैं देखूँ और को ना तोहे देखन दूँ।''

तुम मेरे नयनों में समा जाओ ताकि मैं पलक ढांप कर तुम्हें अपने नेत्रों में बन्द कर लूँ; तब ना मैं तुझे किसी को देखने दूँगी न स्वयं किसी और को देखूँगी। कभी संयोग से मेरी आँखे खुल जाएँ तो यदि मैं देखूँ तो वह तुम ही हो और यदि तुम देखो तो वह मैं ही हूँ। इतना महासौन्दर्य है वह, कि जीवात्मा अपना रूप भूल जाती हैः—

''अपनी छवि बनाय के जो गई पिया के पास,
जब देखी छवि पी की तो अपनी भूल गई।''
''छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नयना मिलाय के
बलि बलि जाऊँ मैं तोरे रंगरेजवा
अपनी सी कर लीन्हीं रे मोसे नयना मिलाय के
प्रेम भटी का मधवा पिलाय के
मतवारी कर दीन्हीं रे मोसे नयना मिलाय के।''

जीवात्मा कहती है कि मैं बहुत श्रंगार करके उनके पास गई लेकिन जब अपने स्वरूप, उस सच्चिदानंद का हुस्न देखा तो अपना रूप भूल गई। **आपकी अपनी खूबसूरती इतनी है कि आप अपने रूप को जब अपने स्वरूप में देखते हैं तो आप खो जाते हैं और आपको बाहर देखने की इच्छा ही नहीं होती**ः–

''क्या-क्या बताऊँ मैं तेरे मिलने से क्या मिला,
मुद्दत मिली, मुराद मिली, मुद्दा मिला,
सब कुछ मुझे मिला जो तेरा नक्शे पां मिला।''

अपने स्वरूप से तद्‌रूप होते ही, आँखें मुंद जाती हैः–

''वे मुझसे पूछते हैं ये क्या बात है शकील
दुनिया पुकारती है मुझे तेरे नाम से।''

अपनी जिस महाचेतन सत्ता को हमने अपने एक नाम-रूप में समेट लिया था, जब हमें उस स्वरूप की झलक आती है तो हमारी महा चेतना जाग्रत हो जाती है। हमारे मानस में जिज्ञासाएँ उत्पन्न होने लगती हैं। हमारे जिस मानस में पहले इच्छाएँ उत्पन्न होती थीं, वहीं जिज्ञासाएँ उठने लगती हैं। ईश्वर क्या है, कहाँ रहता है, मेरा व उसका सम्बन्ध क्या है, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है मुझे? ईश्वर यदि साकार है तो पूर्ण विश्व में एक ही नाम-रूप से क्यों नहीं जाना जाता और यदि यह निराकार है तो इस समस्त नामरूपात्मक सृष्टि का निर्माण कौन करता है? यह सुषुप्ति क्या है, निद्रा क्या है, योग क्या है, भोग क्या है? क्या है, कौन है, कहाँ है? ये प्रश्न किसी भी जिज्ञासु की बुद्धि में कौंधने लगते हैं। ईश्वर के बारे में और ईश्वर को जानने की जिज्ञासा, उसी मानस में उत्पन्न होती है, जिस मानस में पहले संसार के बारे में और संसार को जानने की इच्छाएं पैदा होती थीं। मानस एक ही है।

मैं यह समस्त अनुभूतिगत विषय आपके सम्मुख रख रहा हूं। मानस की इच्छा के तीन स्वरूप हैं। जब हम किसी इच्छा को अपने नाम-रूप की चेतना में अपने तक ले लेते हैं कि **यह मेरी इच्छा है और मैं इसे पूरा करके**

दिखाऊँगा तो यह इच्छा का निकृष्टतम स्वरूप है, यदि वह इच्छा पूर्ण भी हो जाए, आपको अभीष्ट वस्तु प्राप्त भी हो जाए तो दैवीय अधिनियमानुसार आप उसका भोग नहीं कर सकते बल्कि वह प्राप्तव्य अभीष्ट अहं के कारण आपके दुख व कष्ट का कारण बनकर आपका जीना दूभर कर देगा और अहं के कारण आपके मानस में हुई विपरीत प्रतिक्रिया का उत्पाद आपको मरने भी नहीं देगा, साथ ही प्रारब्ध भी बनेगा, जिससे आपका अगला जन्म भी दुश्वार हो जाएगा। अपने **'कर्म-बन्धन'** शीर्षक प्रवचन में इसका मैं सविस्तार वर्णन कर चुका हूँ। अपनी आई. क्यू. वाली बुद्धि का प्रयोग छल-कपट करके अभीष्ट वस्तु या धन प्राप्त करने में नहीं करना, किसी को अपने से विलग नहीं देखना, किसी से धोखा नहीं करना, यदि करेंगे तो उसके साथ धोखा होगा या नहीं, आपके साथ धोखा होना उसी समय शुरू हो जाएगा, क्योंकि वह एक चेतना सबमें है:—

एक ज्योति तों सब जग उपजया, क्या चंगे क्या मंदे।'

इच्छा का दूसरा स्वरूप है कि मेरी इच्छा है, प्रभु आप इसे पूरा करो। अपनी इच्छा पर अभिमान करके प्रभु से उसके पूरा करने के लिए प्रार्थना की जाए तो आपको उस इच्छा का फल भुगतना पड़ता है।

इच्छा का जो सर्वोत्तम, विलक्षण व अद्‌भुत् स्वरूप है कि प्रभु आप ही इच्छा हो, आप ही इच्छुक हो, आप ही इच्छापूरक हो और आप ही इच्छाफल हो। प्रभु यह इच्छा जो मेरे मन में उत्पन्न हुई है, यह आपकी शक्ति से हुई है। आप जानते हैं कि एक मुर्दे में कभी भी कोई इच्छा उत्पन्न नहीं हो सकती। **इच्छा के चारों अंग इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक व इच्छाफल उस सर्वशक्तिमान को समर्पित कर दीजिए। इसमें हो सकता है कि आपकी कोई इच्छा पूरी न हो तो प्रभु आपके हित में ही उसे अधूरा छोड़ देते हैं। अब उसी मानस से जिज्ञासा भी उत्पन्न होती है और वही तीनों स्वरूप जिज्ञासा के भी हैं।** मैं ईश्वर के बारे में जानना चाहता हूं और मैं जानकर छोड़ूँगा तो जीव दुनिया भर की पुस्तकें, शास्त्र, उपनिषद् पढ़-पढ़ कर पागल हो जाता है, पल्ले उसके कुछ भी नहीं पड़ता और पुस्तकें

रट कर, लोगों को सुना कर ही सोचते हैं कि ईश्वर को पा लिया। आजकल ऐसे लोगों को काफी वाह-वाही भी मिल जाती है। अतः **जब ईश्वर के बारे में जानने की शुभेच्छा हो जिसे जिज्ञासा कहा है, तो उस जिज्ञासा का भी ईश्वरीकरण करना परमावश्यक है, नहीं तो श्रद्धा नहीं मिलेगी,** कि हे प्रभु! मेरे मन में आपके बारे में जानने की और आपको जानने की यह जो शुभ जिज्ञासा उत्पन्न हुई है, यह आपकी ही कृपा से हुई है। इसलिए प्रभु आप ही इसे पूरा करें। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है, सांसारिक इच्छा पर चाहे आप अपना अधिकार रख लेना लेकिन जिज्ञासा पर कभी मत रखना। जब ईश्वर के बारे में जानने की जिज्ञासा को **आप ईश्वर-समर्पित कर देंगे तो ईश्वर कृपा करके आपको श्रद्धा दे देंगे तथा श्रद्धा देकर आपको किसी सद्गुरु से भी मिलवा देंगे।**

ईश्वर के श्रीचरणों में समर्पित की हुई जिज्ञासा और ईश्वर-प्रदत्त श्रद्धा को लेकर ईश्वर-कृपा से ही आप जब सद्गुरु के श्रीचरणों में जाते हैं, तो वह आपकी जिज्ञासा व श्रद्धा को भाँप कर आपकी जिज्ञासा को पूर्ण करता है। आपकी जिज्ञासा के अनुसार ही सद्गुरु उसका उत्तर देता है व उसका समाधान करता है। इस प्रकरण को मैं चिकित्सा के परिदृश्य द्वारा समझाऊंगा। कोई किसी भयानक रोग से पीड़ित है तो वह जितने बड़े डॉक्टर के पास जाएगा, उसी के अनुसार उसे जेब में पैसे ले जाने पड़ेंगे और जैसे बड़े या तथाकथित बड़े डॉक्टर के पास वह जाएगा तो उसी के अनुसार डॉक्टर ने इलाज करना है। जब दवाई आपको मिली तो आपको दवाई खानी पड़ती है, तभी तो आपको लाभ होगा। इस प्रकरण के तीन मुख्य अंग हैं—**रोग का डायग्नोज़ होने पर दवाई देना, दवाई को खाना और लाभ होना। प्रस्तुतिकरण, प्रतिग्रहण और प्रभावात्मकता, (Projectivity, Receptivity and Effectivity)** अब चार-पाँच रोगियों से जो उस चिकित्सक के पास गए थे, उनका हाल पूछा तो पहले ने बताया कि क्या बताएं दवाई लेते ही एलर्जी हो गई, पैसे बहुत खर्च हो गए, नाम तो बहुत था, ताम-झाम भी खूब था, मगर लाभ होने के स्थान पर विपरीत प्रतिक्रिया

हो गई। दूसरे ने कहा दवाई तो ठीक थी मगर न लाभ हुआ न नुकसान हुआ, मैं वैसा ही हूं। तीसरे ने कहा कि शायद कुछ तो लाभ हुआ है, वैसे खास नहीं, चौथे ने दवाई का बहुत अच्छा प्रभाव बताया कि दवाई काम कर रही है और पाँचवे ने कहा कि दवाई लेते ही मैं बिल्कुल भला-चंगा हो गया, मैं एक ही खुराक में ठीक हो गया। अब यहाँ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है लाभ होना, उसका अनुकूल प्रभाव होना, Effectivity of the Medicine.

इसी परिदृश्य को सद्‌गुरु व सद्‌शिष्य के प्रकरण में भी ठीक वैसे ही देखा जा सकता है। आप जिज्ञासा रूपी पूंजी लेकर सद्‌गुरु के पास गए और अपना हाल बताया, अपनी शंकाएँ रखीं और उसने आपकी जिज्ञासानुसार उसका समाधान दिया—शब्दों द्वारा, दृष्टि द्वारा, मौन द्वारा, स्पर्श द्वारा, प्रवचन द्वारा, प्रकृति द्वारा, प्राणी द्वारा, परिस्थिति द्वारा, चरणामृत द्वारा, प्रसाद द्वारा और किसी भी चीज़ के द्वारा, सद्‌गुरु की अपनी बात है। यही projectivity या प्रस्तुतिकरण है। उसे आपने ग्रहण किया। **सद्‌गुरु की प्रस्तुति आपकी जिज्ञासानुसार होती है और उसका प्रतिग्रहण आपकी श्रद्धानुसार होता है। जिज्ञासा भी ईश्वरीकृत हो तभी श्रद्धा मिलती है, तो जिज्ञासा और श्रद्धा शिष्य की है। उसी के अनुसार प्रस्तुतिकरण और प्रतिग्रहण होगा। लेकिन प्रभावात्मकता पूर्णरूपेण हर तरह से सद्‌गुरु-कृपा पर आधारित है। यहाँ एक दिव्य अधिनियम और है, यदि सद्‌गुरु-कृपा हो जाए तो वहाँ प्रस्तुतिकरण और प्रतिग्रहण की आवश्यकता ही नहीं है।** अतः सद्‌गुरु के प्रवचनों को समझने के लिए बुद्धि लगाने, ध्यान लगाने की आवश्यकता नहीं है, बस श्रद्धा से आँखों में अश्रु लिए बैठे रहिए। आप उन शब्दों, उस दृश्य, उस परिस्थिति, सबको प्रणाम करिए। शेष सब सद्‌गुरु-कृपा से हो जाएगा। जैसेकि एक लोटे में शहद भरा है, उसे यदि उंडेल दिया जाए तो सारा शहद गिर जाएगा, लेकिन फिर भी लोटे की दीवारों पर थोड़ा बहुत शहद चिपका रह जाएगा। **सद्‌गुरु की बातें चाहे एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल भी दी जाएं फिर भी आपके दिल, दिमाग में ये शब्द चिपक जाते हैं और उनका उचित प्रभाव**

हो ही जाता है। श्रीमुख से निकले वे शब्द ब्रह्मवाक्य हैं, जिनका अनुकूल प्रभाव होकर रहता है। सद्‌गुरु एक ही होता है, हर रूप में उसका ही स्वरूप श्रद्धा से देखना है। सद्‌गुरु के शब्दों में विश्वास व निष्ठा तथा सत्य को धारण करने की शक्ति को श्रद्धा कहते हैं। सद्‌गुरु की सेवा, समर्पण व श्रद्धा का अत्यधिक महात्म्य है। मैंने गत प्रवचन में महाराज जनमेजय की कथा का दृष्टांत दिया था।

सद्‌गुरु की यदि सेवा नहीं कर सकते तो वहां कम से कम चतुरता मत करना, नहीं तो अनर्थ हो जाता है। किसी ईश्वरीय सत्ता (जोकि आपका हितचिन्तक है) के साथ कभी भी चतुरता मत बरतना। यदि आपको कुछ पल्ले नहीं पड़ा तो उसकी आलोचना मत करना क्योंकि आपमें उसे पूर्णरूपेण समझने की शक्ति नहीं है। सद्‌गुरु आपसे सेवा इसलिए लेता है, ताकि आपके हृदय की मलिनता, आपका अहं धुल जाए, क्योंकि रंच मात्र भी अहं के रहते यह गहन विषय आपको हृदयंगम हो ही नहीं सकता। गत प्रवचन में देवराज इन्द्र की कथा भी आपने सुनी थी। जब आप सद्‌गुरु की सेवा करके समर्पित हो जाएँगे तो सद्‌गुरु एक **नाम-रूप में नहीं रहता। वह असंख्य नाम-रूपों में कभी आपको नहीं छोड़ता। पुकार के द्वारा, पदार्पण के द्वारा, प्रकाट्य के द्वारा, परिस्थिति के द्वारा, प्रकृति के द्वारा, पदार्थ बन कर, परिणति के द्वारा, प्राणी के द्वारा** किसी भी रूप में प्रकट होकर हर वक्त आपके साथ रहता है। जब आप पूर्णतः गुरु को अपना लेते हैं, तन, मन व धन से उसके श्रीचरणों में समर्पित हो जाते हैं, तो **सद्‌गुरु अपने इन आठ स्वरूपों में आपको आच्छादित किए रहता है, जब तक वह आपको जिज्ञासु से मुमुक्षु नहीं बना देता,** जिसके लिए सद्‌गुरु देह से कई साधनापरक प्रकरण व पुरुषार्थ कर्म करवाता है—जप, तप, ध्यान, मनन, चिन्तन, नित्याध्यासन, यज्ञ, हवन, स्वाध्याय, समाधि, तीर्थयात्रा, प्राणायाम आदि, जो भी आपके स्वभाव व परिस्थितियों के अनुकूल हो।

सद्‌गुरु इस तत्त्व को, अध्यात्म के इस मूल बिन्दु को आपको समझाने व दिग्दर्शित कराने के लिए **'हवन'** का महात्म्य बताता है व हवन करवाता

है। पाँच-प्राण हैं (**प्राण**, **अपान**, **उदान**, **व्यान** और **समान**) और ईश्वरीय छः विभूतियाँ हैं—सौन्दर्य, शक्ति, ऐश्वर्य, ज्ञान, ख्याति एवं वैराग्य। हम विभिन्न पदार्थ श्रद्धापूर्वक हवनकुण्ड में डालते हैं, जिनसे अग्नि की लपटें निकलती हैं। **उस अग्नि की लालिमायुक्त नृत्य करती लपटें ईश्वरीय सौन्दर्य का प्रतीक हैं और सौन्दर्य का द्योतक एवं वर्धक प्राण, उदान प्राण है।** जैसे ही आप श्रद्धा से **'ॐ उदानाय स्वाहा'** कहेंगे तो अग्नि की लपटों का **सौन्दर्य** प्रदीप्त हो जाएगा। जब आप **'ॐ प्राणाय स्वाहा'** कहेंगे तो उन लपटों में **प्रचण्डता, शक्ति व ऊर्जा** बढ़ जाएगी, यज्ञाग्नि की यह शक्ति **ईश्वरीय शक्ति** की प्रतीक है और यही प्राण नामक प्राण हमारी **दैहिक शक्ति** का द्योतक है। जब हम **'ॐ व्यानाय स्वाहा'** कह कर श्रद्धा पूर्वक आहूति डालते हैं तो उस यज्ञाग्नि की लपटों का **प्रकाश** बढ़ जाता है। यह प्रकाश ही **ईश्वरीय ज्ञान** का प्रतीक है और व्यान नामक प्राण देह में **ज्ञान** का वर्धक है। हम **'ॐ अपानाय स्वाहा'** उच्चारित कर श्रद्धापूर्वक आहूति डालते हैं तो यज्ञाग्नि का धूना फैल जाता है और वह **धूना** ही **ईश्वरीय ख्याति** का द्योतक है तथा अपान-प्राण देह की **ख्याति** को उद्दीप्त करता है। इसी प्रकार महापुरुषों की ख्याति गुफा में रहते हुए भी चारों ओर स्वतः विकीर्ण होती रहती है।

समान-प्राण शेष दो ईश्वरीय विभूतियों का प्रतीक है। ऐश्वर्य (पदार्थ) और (भस्मी) या वैराग। हमने गत वर्ष गुरुपूर्णिमा पर **'लक्ष्मी व भस्मी'** शीर्षक से एक प्रवचन दिया था। पंच-रत्न, पंच-प्रसाद, पंच-मेवा, इत्र, पंच-फल, श्रीफल, नारियल, गौ घृत आदि **जो भी पदार्थ एवं सामग्री आप हवन में श्रद्धापूर्वक अर्पित करते हैं, वह हवन-अग्नि का ऐश्वर्य है। अब हवन-अग्नि में जो लपटें उठीं वे विभिन्न समिधाओं व सामग्रियों से ही तो निकलीं, तो लपटों का सौन्दर्य, उनका प्रकाश, उनकी ऊर्जा व धूना पूर्णरूपेण उन पदार्थों अथवा हवन-अग्नि के ऐश्वर्य पर ही निर्भर करता है। अतः ऐश्वर्य से ही सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति व ख्याति प्रकट हुई और अन्ततः वे सब पदार्थ अथवा ऐश्वर्य स्वयं भस्मी बनते हुए भस्मी में ही**

समाहित हो गए। जब लपटों का सौन्दर्य समाप्त हो जाता है, जब उनका प्रकाश व ऊर्जा नहीं रहती, जब उसका धूना समाप्त हो जाता है तो आप उन पदार्थों को अलग नहीं कर सकते। वह सब भस्मी या वैराग में बदल जाता है। **अतः वैराग्य की पूर्णता के लिए सम्पूर्ण ऐश्वर्य का महात्म्य समाप्त होना परमावश्यक है।** अल्पकाल के लिए अस्थायी वैराग्य भी होता है, किसी आत्मीय के मर जाने पर अथवा व्यापार में घाटा होने पर या किसी भी कारणवश, तो वह वैराग्य क्षणिक होता है। **कई लोग उस क्षणिक वैराग्य** की मनःस्थिति में भगवा वस्त्र धारण करके सन्यासी बन जाते हैं, वह सन्यास भी अस्थायी होता है। **इसलिए यदि आप पूर्ण वैराग्य को पाना चाहते हैं तो आपको समान रूप से पूर्ण ऐश्वर्यवान होना अति आवश्यक है। जब पूर्ण भस्मी बनती है तो यज्ञाग्नि का धूना भी पूर्णरूपेण समाप्त हो जाता है और लपटों का सौन्दर्य, प्रकाश तथा प्रचण्डता भी नहीं होती और वे समस्त पदार्थ भी नहीं होते। जब तक आपको ख्याति की आकांक्षा होगी या सौन्दर्य, शक्ति, ज्ञान व ऐश्वर्य की चाह होगी, तब तक आप वैरागी नहीं हो सकते।**

वैराग ही अन्ततः आपको ईश्वर के चरणों के अनुराग में ले जाता है। समान-प्राण ऐश्वर्य व भस्मी दोनों का द्योतक है। **समस्त पदार्थ भस्मी में विलीन हुए और वे पदार्थ प्रकट कहाँ से हुए थे? वे भस्मी से ही तो प्रकट हुए थे! ये समस्त समिधाएँ आदि मिट्टी से ही तो उत्पन्न होती हैं। अतः जितना आपका सौन्दर्य, शक्ति, ज्ञान, ऐश्वर्य, ख्याति उद्दीप्त प्रदीप्त होती है, वास्तव में वैराग्य अथवा भस्मी से ही होती है। श्रीफल, नारियल, गोले व समस्त पदार्थ जो यज्ञ में श्रद्धापूर्वक डाले जाते हैं, वे मिट्टी से ही तो पैदा होते हैं!**

इसलिए जीवन में जब कभी आपका सौन्दर्य, शक्ति, ज्ञान, ख्याति व ऐश्वर्य बढ़ जाए तो अपने वैराग्य या भस्मी को नहीं छोड़ना, अहं मत करना क्योंकि शक्ति का महात्म्य उतना नहीं है जितना कि शक्ति को सम्भालने की शक्ति का महात्म्य है। यदि हममें यह शक्ति नहीं होगी तो हमारी अपनी

शक्तियाँ ही हमें भस्मासुर की तरह खा जाएँगी। भस्मी से जुड़े नहीं रहेंगे तो आपका धन, निर्धनता में, ख्याति, बदनामी में, ज्ञान, अज्ञान में तथा सौन्दर्य, कुरूपता में ले जाएगा। भस्मी आपकी देह की एक भौतिक अवस्था है, अतः इससे अपने जीवनकाल में आत्मसात् होना है। अपनी मृत्यु अथवा भस्मी का नित्य कम से कम पाँच मिनट के लिए अवश्य दर्शन करना है, नहीं तो आपकी प्राप्तियाँ ही आपके विध्वंस का कारण बन जाएँगी। **यहाँ एक बात और महत्त्वपूर्ण है कि जब आप भस्मीभूत हो जाएँगे तो सारी शक्तियाँ जिनके पीछे आप भाग रहे थे, वे स्वतः आपके भीतर से प्रकट होनी शुरू हो जाएँगी।**

जब सद्‌गुरु इस भस्मी स्थिति से अपने सद्‌शिष्य को अवगत कराता है, जोकि अन्तिम मूल तत्त्व है और शिष्य अपनी जीते जी जागृति में उस भस्मी को आत्मसात् करता है तो वह भस्मी चेतन हो जाती है और शिष्य में शिवत्व जाग्रत हो जाता है। उसी वक्त सद्‌गुरु आपको छोड़ देता है और आप जिज्ञासु से मुमुक्षु बन जाते हैं:–

''ऊंकाराय बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ऊंकाराय नमो नमः।''

ॐ–अ, उ, म तीन अक्षरों से बना है। 'अ' ब्रह्म का द्योतक है, 'उ' माया का और 'म' जीव का प्रतीक है। ब्रह्म, जीव और माया की लुकन-छिपाई का खेल है यह जगत। ॐ में तीन अक्षर हैं लेकिन दायीं तरफ बिन्दु एक ही है। वह बिन्दु तत्त्व है, इस अन्तिम तत्त्व का वर्णन हम इस व्यास-गद्दी से नहीं कर सकते। तत्त्वदर्शी महात्माओं ने इसका दर्शन किया है, वह बिन्दु तीनों का सार है ब्रह्म, जीव और माया तीनों को अलग नहीं किया जा सकता। ब्रह्म ही जीव बनकर माया में खेलता है, निर्माण, पालन व संहार करता है और तीनों क्रियाएं आनन्द में होती है :–

न मैं बन्दा था, न खुदा था,
दोनों इल्लत से जुदा था, मुझे मालूम न था,

चाँद बदली में छिपा था, मुझे मालूम न था,
मैं खुद ही खुद में पर्दा बना था, मुझे मालूम न था।

यह तत्त्व-दर्शन है, जहाँ सद्गुरु आपको ईश्वर के द्वार पर छोड़ देता है और अन्तिम ज्ञान आपको स्वयं आपका इष्ट ही देता है, चाहे वह साकार हो या निराकार और यदि सद्गुरु को आपने इष्ट मान लिया है तो उसमें भी यह क्षमता होती है। सद्गुरु ने ईश्वर के बारे में बताया और ईश्वर का ज्ञान आपको ईश्वर ही देता है:—

''सो जानइ जेहि देहु जनाइ, जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।''

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(11 जुलाई, 2004)

सद्-तन्त्र

आज इष्ट की विशेष कृपा एवं आदेश से तथा आप सब जिज्ञासुओं की विशिष्ट जिज्ञासावश मैं आपके सम्मुख स्वतन्त्रता का आध्यात्मिक प्रारूप प्रस्तुत करूँगा। आज उस भारत में पिछले सत्तावन वर्षों से **स्वतन्त्रता दिवस** मनाया जा रहा है जो भारत न कभी परतन्त्र था, न है और न कभी हो सकता है, क्योंकि कोई भी विशुद्ध भारतीय त्रिकाल में कभी भी परतन्त्र हो ही नहीं सकता। आज **यह व्यास-गद्दी, हम विशुद्ध भारतीयों को स्वतन्त्रता का उद्‌बोधन, प्रमाण एवं सत्यापन दे रही है कि हम सदा से ही स्वतन्त्र एवं स्वाधीन तो हैं ही, उसके साथ हम सद्-तन्त्र एवं सत्याधीन भी हैं, क्योंकि यह हमारी फितरत एवं संस्कारगत स्वभाव व विशेषता है।** **'सद्-तन्त्र'** व **'सत्याधीन'** शब्द आपने कदाचित् प्रथम बार सुने होंगे। आज हम यहाँ राजनीति की चर्चा नहीं करेंगे, बल्कि अपनी स्वतन्त्रता के आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन करेंगे। कभी कोई राजनीतिज्ञ मिले तो उसे अवश्य बता देना।

'स्वतन्त्र' शब्द स्व+तन्त्र से मिलकर बना है। यन्त्र, मन्त्र व तन्त्र उपासना की तीन विधाएँ हैं। चिकित्सा विज्ञान में Nervine System को तन्त्रिका-तन्त्र कहते हैं। मानव-देह के सम्पूर्ण संचालन, पालन, निर्देशन, क्रिया-कलाप व विचार श्रृंखलाओं आदि में हमारे नर्वस सिस्टम एवं हारमोन की विशेष भूमिका रहती है। **स्व+तन्त्र का अर्थ है कि तन्त्रिका-तन्त्र हमारा अपना हो, क्योंकि अक्सर लोगों का तन्त्रिका तन्त्र अपना होते हुए भी अपना नहीं होता।** हमारी सोच अपनी हो, हमारे विचार अपने हों, हमारी

चाल अपनी हो तथा हमारे कदम वहीं जाएँ जहाँ हम चाहते हों, हमारे हाथ वही करें जो हम चाहते हों, हमारी वाणी, गन्ध, स्वाद, दृष्टि, श्रवण, स्पर्श सब कुछ अपना हो, हम किसी के अधीन न हों, हमारे जीवन का समय हमारा अपना हो—इसे कहा है **'स्वतन्त्रता'।** जब हम बिके हुए होते हैं तो हमारी सोच हमारी अपनी नहीं होती, हमारी डिग्रियां व प्रतिभाएं हमारी नहीं होतीं, हम किसी के लिए नाचते हैं और किसी के लिए गाते हैं। हमारा लेखन व वाणी अपनी नहीं होती, हमें वही बोलना और लिखना होता है जो हमें कोई अन्य बुलवाता है या लिखवाता है। कदम हमारे होते हैं लेकिन वह किसी अन्य के आदेश पर चलते हैं। हाथ हमारे होते हैं लेकिन करते वही हैं, जो कोई हमसे करवाता है। इसको कहा है—**'परतन्त्रता'**।

धार्मिक व आध्यात्मिक मानव कभी परतन्त्र नहीं होते, वे न केवल स्वतन्त्र होते हैं बल्कि सद् तन्त्र भी होते हैं। वे स्वाधीन भी होते हैं और सत्याधीन भी होते हैं। हमारी चाल अपनी है, हमारे हाथ वह कर रहे हैं, जो हम चाहते हैं परन्तु इसका निर्णय कौन करेगा कि जो हम कर रहे हैं, जहाँ व जैसे हम चल रहे हैं, वह ठीक है या नहीं? हम क्या बोल रहे हैं, कहाँ और किसके सम्मुख बोल रहे हैं, उसे कौन निश्चित करेगा कि वह सही है या गलत। हम सही सोच रहे हैं या गलत, हमारी प्रार्थनाएँ सही हैं या नहीं। हमारा खान-पान व पहरावा जो हम अपने हिसाब से खा रहे हैं, पहन रहे हैं, व्यवहार कर रहे हैं, क्या वह सही भी है? इसका निर्णय कौन करेगा? हम सब चल रहे हैं, सब अपना-अपना राग अलाप रहे हैं, क्योंकि हम बहुत स्वतन्त्र हो गए हैं, लेकिन हम पिछड़ते जा रहे हैं। भारत से अंग्रेज चले गए लेकिन अंग्रेज़ियत छोड़ गए। हमारी वाणी, हमारा पहरावा, हमारे त्यौहार, हमारे ख्याल, हमारा इतिहास, हमारा भूगोल कुछ भी अपना नहीं रहा। कौन कहता है कि हम स्वतन्त्र हैं? हमारी स्वतन्त्रता को किसने दिशा-भ्रमित किया है, किसने इसे आच्छादित किया है, क्यों किया है? इसका निर्णय आज प्रथम बार भारत की राजधानी दिल्ली में इस व्यास-गद्दी से आप सब देशभक्तों व परम जिज्ञासुओं के सम्मुख अवश्य होना चाहिए।

हम स्वतन्त्र तो हुए, लेकिन सद्-तन्त्र नहीं हुए। हमारी स्वतन्त्रता में मुख्य भूमिका हमारी आई. क्यू. वाली बुद्धि की थी। **'सिद्धि'** विषय पर पिछले प्रवचनों में मैंने बहुत स्पष्ट रूप से पुनः-पुनः इंगित किया था कि मानव-देह के स्थूल, सूक्ष्म व कारण तीनों आयामों में 'कारण' सच्चिदानंद ईश्वर है, जो अदृश्य व निराकार होते हुए भी हमारे स्थूल व सूक्ष्म दोनों का आधार है। हम अपने नाम-रूप की चेतनता में उस अपने **'कारण'** से **कट से** जाते हैं। वह कारण-देह जो हमारा उच्चतम केन्द्र है, उससे हम विमुख से हो जाते हैं। विमुख से इसलिए क्योंकि हमारा **'कारण'** हमसे कभी परे नहीं होता। **इस प्रकार दिव्य-बुद्धि से कट कर मल, विक्षेप व आवरण से ग्रसित हुए पैरालाइज़्ड जीवन व्यतीत करते हैं।** हमारी चारों दिव्य बुद्धियां विवेक, मेधा, प्रज्ञा व ऋतम्भरा आच्छादित हो जाती हैं और वाह-वाह करने के लिए प्रदत्त आई. क्यू. वाली बुद्धि ही हमारे जीवन का संचालन व निर्देशन करती है। वास्तव में स्वतन्त्रता हमारी इस बुद्धि की है। आज जो हम तथाकथित स्वतन्त्र हैं, इसीलिए पतन की ओर अग्रसर हो रहे हैं। स्वतन्त्र होते हुए भी हम असंतुष्ट, आसक्त व विक्षिप्त ही हैं। इस आई. क्यू. वाली बुद्धि पर जिन चार दिव्य बुद्धियों का नियन्त्रण था, वे आच्छादित हो गईं और हम **'सद्'** से कट गए। स्वतन्त्रता तो मिल गई लेकिन सद्-तन्त्रता चली गई। हमारा तन्त्रिका तन्त्र 'सद्' के अधीन था। हम जो करते थे, जो बोलते थे, जो सुनते थे, जो चखते थे, वह 'सद्' था। ईश्वर का दूसरा नाम है **'सच्चिदानंद'** और मानव-देह सद्, चेतन व आनन्द का अकाट्य व अविरल संगम है। मानव का मन मूलतः ईश्वरीय मन है जो ईश्वरीय आनन्द से ओत-प्रोत है तथा बुद्धि ईश्वरीय चेतनता से परिपूरित है और इन दोनों के पारस्परिक सामंजस्य से जो भी हमारी इन्द्रियों द्वारा प्रकटीकरण होता है, वह **'सद्'** है। **जब हमारी बुद्धि ईश्वरीय चेतना व मन ईश्वरीय आनन्द से जुड़ा हुआ रहता है तो इनके समन्वय से हमारी इन्द्रियों द्वारा 'सद्' का ही प्रकटीकरण होता है।** लेकिन जब हम अहंवश अपने उस **'कारण'** सच्चिदानंद ईश्वर से कट से गए और स्वयं को जब हमने अपने नाम-रूप

की चेतना की स्थूल-देह में सीमित कर लिया तो हमारी समस्त शक्तियाँ संकुचित व तुच्छ हो गईं। उस स्थिति में हमने समस्त कृत्यों व उत्तरदायित्वों को अपने ऊपर ले लिया और मल, विक्षेप व आवरण के कारण आधि, व्याधि व उपाधि से ग्रसित होकर पक्षाघातपूर्ण (Paralysed) जीवन जीने लगे।

जीवन के अतीत के किसी भी काल पर यदि हम विचार करें तो हम पाएंगे कि हमारे लिए सब कुछ अनिश्चित था। हमारा निश्चित रूप एक विशेष समय व स्थान पर विशेष माता-पिता से जन्म हुआ, जो हमारे लिए अनिश्चित था। हम ईमानदारी से कहें तो यह सब क्यों हुआ, हम नहीं जानते। यह निश्चित था कि हमारा जन्म ऐसे ही होना था लेकिन वह हमारे लिए अनिश्चित था। इसी प्रकार जीवन की अन्य घटनाएँ जो हमारे साथ घटीं, वे क्यों घटीं हम नहीं जानते। ईश्वर से विशिष्ट प्रतिभाएँ क्यों मिलीं, विशिष्ट स्त्री-पुरुष से हमारा विवाह क्यों हुआ, हमारी विभिन्न सन्तानें क्यों हुईं, हम नहीं जानते। जीवन के अतीत में जो भी घटनाएँ हो चुकी हैं, उन पर यदि ईमानदारी से विचार करें तो हम पाएँगे कि वे घटनाएँ हुईं, उनमें हमारी बुद्धि का कोई भी योगदान व भूमिका नहीं थी।

'आप न जावै ताहि पै ताहि तहाँ ले जाए' जब वे घटनाएँ होनी थीं, उन्हीं के अनुसार हमारी बुद्धि प्रेरित हो गई। हम जा कहीं और रहे थे, पहुँच कहीं और गए, हम मिलना किसी और को चाहते थे, मिल कोई और गया, करना कुछ चाहते थे, हो कुछ गया। अतः हमारे जीवन का रिमोट जिसके हाथ में है, वास्तव में यह जीवन भी उसी का है। हमारी देह व जीवन-काल, हमारा नहीं है और यदि इसे अपना मानते हैं तो हम बहुत गफलत में हैं। जैसा आज तक हुआ वैसा भविष्य में भी होगा। यदि जन्म सुनिश्चित है तो मृत्यु भी सुनिश्चित है, लेकिन हमारे लिए अनिश्चित है। कब होगी, कैसे होगी, कहाँ होगी? हम नहीं जानते।

कल क्या होगा? वही और वैसे ही होगा जैसे अतीत में हुआ है। अपने आप होगा। आप विचार करें तो आप पाएंगे कि आपके हाथ में कुछ भी नहीं

है। फिर भी हम कुछ न कुछ करते रहते हैं। हम जानते हैं कि जो भी हम करते हैं, उसके पीछे हमारी एक विशेष इच्छा रहती है कि हम कुछ पाना चाहते हैं। हम अन्धाधुन्ध दौड़ रहे हैं, आई. क्यू. वाली बुद्धि के कारण हम चैन से नहीं बैठ सकते, कुछ न कुछ करते रहते हैं। लेकिन होता वही है जो मंजूरे खुदा होता है। **हम** करते हैं, **या मैं** करता हूं, क्योंकि अपने नाम-रूप की चेतना में आते ही हम अपनी देह, परिवार, समाज, देश यहाँ तक कि विश्व के ठेकेदार बन जाते हैं कि मेरे बिना कैसे होगा? मुझे कुछ बनना है **कि बन जाओ**, बनने का अर्थ मूर्ख बनना ही होता है। सभी आधि, व्याधि व उपाधि से ग्रसित हैं और मूर्ख बने हुए हैं, जिसका वर्णन मैं **'सिद्धि'** विषयक प्रवचनों में कर चुका हूँ।

हम जो भी करते हैं, उस कृत्य के तीन परिणाम होंगे। अपने ज्योतिषी आप स्वयं बन जाइए। **यदि हम कृत्य अपने अहं से कर रहे हैं** तो उसका पहला परिणाम यह हो सकता है कि वह कृत्य **तथाकथित सार्थक होगा** कि उस कृत्य के द्वारा जो पाना चाहते थे वह पा लेंगे, वह दूसरी बात है कि हम अपनी अपेक्षा से अधिक पाएं, कम पाएँ या उतना ही पाएँ। यदि वह कृत्य आपने अहं से किया है तो जो भी आप पाएँगे वह प्राप्ति आपको जीने नहीं देगी, क्योंकि उसका भोग आप कर ही नहीं सकते। आपने छल से, बल से सत्ता हथियाई, कोई पद पाया, कोई प्रॉपर्टी पाई, धन पाया तो वह प्राप्ति आपको जीने इसलिए नहीं देगी क्योंकि जब भी हम ईश्वर-विमुख होकर अपने अहं से कुछ पाते हैं तो वह प्राप्ति कभी भी संतुष्ट नहीं करेगी और हमारे अन्दर और-और की आसक्ति बढ़ जाएगी। उस अहं से हमारे मानस में उसी के अनुपात में नकारात्मक व विपरीत प्रतिक्रिया होगी, जिसका उत्पाद कभी न कभी हमारे सामने आ जाएगा, जो हमारा मरना दूभर कर देगा। साथ ही प्रारब्ध भी बनेगा, जिससे अगला जन्म भी दुश्वार हो जाएगा।

अपने अहं से किए गए कर्म का दूसरा आयाम होगा—**कि परिणाम निरर्थक होगा।** बहुत कुछ किया, बड़ी योजनाएँ बनाईं लेकिन हुआ कुछ भी नहीं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति निराशा में चला जाता है। जो भी आप कर रहे

हैं, उसका दूसरा परिणाम यही होगा तथा तीसरा आयाम होगा कि परिणाम नकारात्मक हो जाए, कि बहुत कुछ किया परन्तु जो पास में था वह भी चला गया। जो कर्म हम करते हैं, जिसके लिए हम स्वयं को कर्मठ व कर्मयोगी घोषित करवाने से भी नहीं चूकते, उन कर्मों के **तीन आयाम परिणाम में मिलते हैं—तथाकथित सार्थक, निरर्थक व नकारात्मक।** बात-बात पर हम गीता को उद्धत करते हैं कि श्रीकृष्ण ने कहा है तू कर्म कर, फल मेरे ऊपर छोड़ दें। फल तो वैसे भी उसी के ही हाथ में है पर आप कर्म क्या कर रहे हैं, किस भाव से कर रहे हैं, आपको इसका पता होना चाहिए। यदि भगवान श्रीकृष्ण न भी कहते कि फल मेरे ऊपर छोड़ दो तो फल आप किस पर छोड़ते। तब भी फल किसी कृष्ण पर ही छोड़ते। श्रीकृष्ण ने तो कुछ और कहा था, परन्तु आपने उसे भी अपने हिसाब से समझा व समझाया है, क्योंकि आप बहुत बुद्धिजीवी हैं।

अब होने में और आपके करने में सम्बन्ध क्या है? यह मानव होने के नाते आपको जानना परमावश्यक है। मैं करता कुछ और हूँ और होता वह है जो ईश्वर को मंजूर होता है। तो यह अलगाव क्यों हैं? क्या मैं मूर्ख तो नहीं बन रहा? मानव-देह मिलने पर भी यदि हम यह न जान पाए तो हम जन्म-दर-जन्म व्यर्थ, निरर्थक व नकारात्मक जीते व मरते रहेंगे।

हम जानते हैं, कि हम नहीं जानते, क्या होगा? और कोई जानता है, कि वह जानता है, कि क्या होगा तथा वह हमारा ही स्वरूप, हमारी कारण-देह है। यदि हम उसके हो जाएँ तो हमारे कृत्य 'करना' अभिप्रेरित न होकर 'होना' अभिप्रेरित हो जाएँगे। क्योंकि न तो आप स्वयं पैदा हुए, न स्वयं मरेंगे और न ही जीवन की घटनाएँ आपके परामर्श से ही घटती हैं। क्या कोई कह सकता है कि मैं माँ के गर्भ में नौ महीने बहुत व्यस्त रहा? क्या यह बात जंचती है। परमात्मा ने बहुत अच्छा किया कि माँ के गर्भ में आपकी बुद्धि शान्त रखी, नहीं तो वहाँ भी हमारी बुद्धि सक्रिय होती तो पैदा होते ही इतिहास लिखते कि नौ महीने मैंने आँख, मुँह आदि शारीरिक अंग कैसे बनाए! जो अधिक सुन्दर पैदा होते, वे विशेषकर अपने कृत्यों का

उल्लेख कर औरों को भी प्रेरणा देते कि तुम भी माँ के गर्भ में ऐसा करना। लेकिन सब कुछ बना बनाया मिलता है। यह सुन्दर चमत्कारिक देह हमें स्वतः चुपचाप बिना कुछ करे ही मिली है और सम्पूर्ण जीवन किसी अदृश्य शक्ति के संकेत पर चलता है तथा हमसे सलाह लिए बिना ही एक दिन यह देह चली जाती है। हम मर जाते हैं, अर्थी बनी बनाई मिलती है तथा क्रिया-कर्म हो जाता है। हमें स्वयं कुछ नहीं करना पड़ता। तभी मैं पुनः पुनः कहता हूँ कि **यदि जीवन का भरपूर आनन्द लेना चाहते हैं तो या शिव बन जाइए या शव बन जाइए।** इसके बीच में अन्य कोई रास्ता है ही नहीं। नहीं तो करते रहेंगे, मरते रहेंगे और होगा वही जो ईश्वर चाहेगा।

यदि आप 'होना' अभिप्रेरित (Oriented) करना चाहते हैं कि आप वही करें जो होगा तो उसके लिए आपको उसका होना पड़ेगा। तो जो होना होगा उसमें यदि आपकी आवश्यकता है, तो वह ईश्वरीय शक्ति आपको प्रेरणा देकर आपसे करवा लेगी। आप सोंचेगे कि क्या मेरी आवश्यकता नहीं भी हो सकती? हां, ऐसा भी हो सकता है। क्योंकि दैनिक जीवन में आप देखते हैं कि कभी-कभी काम हो रहा होता है, आप उसमें टांग अड़ाकर काम बिगाड़ देते हैं। हम बीच में कुछ न कुछ करने से बाज नहीं आते और बना बनाया काम बिगाड़ देते हैं। यदि हम उसके हो जाएँ तो वह हमें व्यर्थ टांग अड़ाने से रोक देगा कि तुम अपनी वाणी, अपने हाथों, पैरों को रोको और बैठो तथा देखो तुम्हारा काम स्वतः हो रहा है। जैसेकि तुम्हारा जन्म हुआ। **अब यहाँ हमारी अकर्मण्यता ही कर्म है। स्वयं को रोकना ही कर्म है, यहाँ।** कोई बहुत बड़ी प्राप्ति आपको मात्र अपने कुछ न करने से ही हो जाती है।

जब आपने स्वयं अहंवश कर्म करके तथाकथित सार्थक प्राप्ति की थी तो तीन बड़ी भारी अड़चनें आ गई थीं, परन्तु यहाँ जो प्राप्ति होगी उसका आपको आनन्द आएगा। जीवन में हमारा मुख्य लक्ष्य आनन्द ही है, क्योंकि जो भी हमारी प्राप्तियाँ हैं, वे सब हमें छोड़ कर जानी पड़ेंगी। प्रौपर्टी, धन, स्त्री, सन्तान, देश, पद यहाँ तक कि अपनी देह तक हमें यहीं छोड़कर जानी

पड़ेगी। हम जीवन से यही तो चाहते हैं कि **हमारे जीवन का एक-एक पल, एक-एक क्षण आनन्दमय हो। अतः उसके लिए हम जो भी करें, उसके होकर करें। उसके होकर करने से हो सकता है कि किसी बड़ी प्राप्ति के लिए वह हमें निठल्ला बैठा दे। उससे वह प्राप्ति अथवा वह खोना, दोनों आपके लिए आनन्दमय ही होंगे।** अब कोई खेल खेलना है, हॉकी या क्रिकेट, तो दो टीमों को खेलने के लिए प्रेरणा मिलेगी। उसमें से एक टीम ही जीतेगी और दूसरी हारेगी। परन्तु खेलने का आनन्द दोनों को आएगा। हार-जीत महत्त्वपूर्ण नहीं होगी।

अतः प्रभु के होकर, उस सद्, चेतन व आनन्द के साथ जुड़कर जब हम कृत्य करते हैं तो ईश्वर हमें करने की प्रेरणा देता है और उस समय हम मात्र एक व्यक्ति नहीं रहते। जब ईश्वर ने कोई कार्य कराना होता है तो उस कार्य में जो व्यक्ति, स्थान, वस्तुएँ व धन आवश्यक होता है, ईश्वर उस समय एक साथ सबको प्रेरणा देता है और आपका काम बना बनाया सा होता है, आपको मात्र हाथ लगाना होता है। इस सत्य से आप समझ गए होंगे कि जीवन का कितना समय हम निरर्थक व्यतीत कर देते हैं। जैसेकि मैंने एक उदाहरण दिया था कि किसी की बेटी जवान हो गई। उसने 24 – 25 लड़के देखे, बहुत व्यस्त रहा, मगर बात नहीं बनी। अन्ततः छब्बीसवें लड़के से बात बन गई। अब वह कहे कि मैंने बड़ी मेहनत की थी तब जाकर छब्बीसवां मिला, जिससे बात बनी। भला कोई तुक है इस विचारधारा में कि पच्चीस लड़कों के लिए मैंने धक्के खाए, समय व धन खर्च किया, बहुत परिश्रम किया तब जाके छब्बीसवां लड़का मिला। क्योंकि श्रीकृष्ण ने भी कहा है कर्म कर, फल मेरे ऊपर छोड़ दे! अरे! कर्म ना करते पच्चीस के लिए, तो भी छब्बीसवां मिलना ही था और वह पहला होता, छब्बीसवां न होता। इसी प्रकार हम निरर्थक कार्यों में व्यस्त हैं, करते रहते हैं पर हमारे 'करने का' 'होने से' कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। **अब इस करने और होने का जीवन की धाराओं के साथ क्या सम्बन्ध है, यह जानना परमावश्यक है। कृपया आप एकाग्रतापूर्वक सुनें।**

हम सब **जीवन के लिए** जी रहे हैं। विचार करिए, स्वयं अपने साथ बैठिए। परन्तु समस्या यह है कि हमारे पास सबके पास बैठने का वक्त है, गप्पें मारने व मनोरंजन के लिए वक्त है लेकिन अपने साथ बैठने का समय नहीं है। हम सब जीवन के लिए व्यस्त हैं, जो भी कर रहे हैं जीवन के लिए ही कर रहे हैं। धन चाहिए, प्रौपर्टी, पद, सन्तान, परिवार, सम्बन्धी चाहिएं, बड़ा कुछ चाहिए। फिर जो प्राप्त करते हैं उसे सम्भालने के लिए भी बहुत कुछ चाहिए। आजीवन हम जीवन के लिए ही व्यस्त रहते हैं, जीवन के लिए तो कुत्ता, बिल्ली, सांप, चूहा, गधा आदि जानवर भी करते रहते हैं। जैसे हम पैदा होते, मरते हैं, वे भी ऐसे ही पैदा होते व मरते हैं। वे बच्चे पैदा करते हैं, हम करते हैं, उन्हें भी बच्चों से बहुत प्यार होता है, हमें भी होता है। करने का अपना-अपना स्तर है। जिसकी जितनी हैसियत है, उसी के हिसाब से वह करता है। **हम आजीवन पशुओं की तरह ही जीवन के लिए करते रहते हैं पर कभी यह सोचा कि जीवन काहे के लिए है?** बहुत आलीशान गाड़ी खरीद ली, उसे रोज़ धो-धो कर चमकाते रहे। पूछो कि गाड़ी है काहे के लिए? इसी प्रकार अत्यन्त उत्कृष्ट काया ईश्वर ने हमें दी है, जो सम्पूर्ण ईश्वरत्व का प्रतिनिधित्व करती है, **उस देह के लिए हम करते-करते मर जाते हैं पर कभी यह सोचा कि देह प्रभु ने काहे के लिए दी है। मुझे प्रभु ने मानव क्यों बनाया?** अरे! पशुओं में तो बहुत कम मस्तिष्क है। चींटी को देखो वह कितनी व्यस्त रहती है। चींटी का दिमाग मात्र कुछ सैन्ट का होगा और हमारा डेढ से दो किलो तक का मस्तिष्क है। वह क्या प्रभु ने मुझे इसलिए दिया है कि तू इसे मात्र अपनी रोज़ी-रोटी के लिए ही इस्तेमाल कर। जब उससे भी पेट नहीं भरता तो हम कहते हैं कि मैं अपने बेटों, पोतों, नातियों के लिए कर रहा हूँ, क्योंकि मुझे कुछ न कुछ करना चाहिए। क्या कभी हमने यह जानने का प्रयत्न किया है कि जीवन काहे के लिए है।

'जीवन के लिए' और 'जीवन काहे के लिए' जीवन की ये दो प्रमुख धाराएँ हैं। जीवन के लिए जब हम करते हैं तो **हम** करते हैं। जब आप कुछ भी करेंगे चाहे वह जप, तप, ध्यान, दान, पुण्य, प्राणायाम आदि पुरुषार्थ कर्म

भी क्यों न हों, तो आप आश्वस्त हो जाइए कि आप जीवन के लिए ही कर रहे हैं। हम कुछ न कुछ प्राप्त करना चाहते हैं जीवन के लिए। जब आप स्वयं कर रहे हैं, जब आप अपने अहं को महत्त्व देते हैं कि मैंने गुरु ढूंढ लिया, मैंने वेद, शास्त्र सब पढ़ लिए, मैं इतने घंटे ध्यान में बैठता हूं। यदि यह भाव होगा तो मान लीजिए कि आप जीवन के लिए ही कर रहे हैं। **लेकिन जब हम उस परमात्मा के होकर करते हैं तो वह करना 'जीवन काहे के लिए' के लिए हो जाता है। यदि हम ईश्वर की आज्ञा, उसकी प्रामाणिकता, प्रेरणा व पुष्टि से करते हैं तो हमारे जीवन के समस्त कृत्य 'जीवन काहे के लिए' के लिए हो जाते हैं।** अब मैं इस परम सत्य को आत्मसात् करने के लिए कुछ उदाहरण दूंगा :—

मानों एक दुकानदार चन्दन-तिलक आदि लगाकर, तैयार होकर धूपबत्ती कर, अपनी दुकान पर जाता है, इस प्रार्थना के साथ कि प्रभु आज खूब कमाई हो, ग्राहक आएँ। ग्राहक आया तो वह उस ग्राहक को मीठी-मीठी बातों से लुभाकर फंसा लेता है और बेहतरीन पैकिंग में कूड़ा-कबाड़ा मनमाने भाव से बेच देता है। यह कृत्य उस दुकानदार ने स्वयं दुकानदार बनकर किया तो छल से जो धन कमाया, वह धन छल से उसके पास रहेगा और जब वह धन जाएगा तो छल से ही जाएगा। **यह जीवन के लिए कृत्य तथाकथित सार्थक होगा क्योंकि वह धन मात्र धन ही होगा, जो लक्ष्मी के अन्य छः अंगों—सुख, शान्ति, सन्तोष, स्वास्थ्य, स्वजन व सत्संग को चाट जाएगा।** घर में कोई छली सन्तान या छली रिश्तेदार पैदा हो जाएगा जो उसे भी मीठी-मीठी बातों से लुभाकर धन हड़प लेगा, अथवा बिल्डिंग का ठेकेदार सीमेंट की जगह रेता ही भर देगा क्योंकि पैसा छल से कमाया गया है। आप मात्र जीवन के लिए दुकानदारी कर रहे हैं।

जिस दिन किसी महापुरुष का सत्संग मिला और आप में भाव आया कि जीवन काहे के लिए है, तो भी आप उसी दुकान पर जाएँगे, तब आपके भीतर का दुकानदार आपका इष्ट या सद्गुरु होगा। जो ग्राहक आएगा उसमें भी आप इष्ट को ही देखेंगे। आपकी दुकान पर ग्राहक आना तो एक

ईश्वरीय घटना है, आपका दुकान पर जाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि सारी दुकानें छोड़ कर एक ग्राहक का, आपकी दुकान पर आना महत्त्वपूर्ण है। वह तो मानों स्वयं ईश्वर ही ग्राहक बनकर आपकी दुकान पर आपको कुछ देने आता है। आपका व्यवहार बदल जाएगा आप उसका सम्मान करेंगे और बहुत ईमानदारी से थोड़ा बहुत नफा लेकर उत्तम से उत्तम वस्तु उसे देंगे। वह ग्राहक वस्तु लेकर आपको धन भी देगा। **जब आप स्वयं और ग्राहक दोनों में ईश्वर को देखेंगे तो आपकी दी हुई वस्तु उस ग्राहक के लिए प्रसाद बन जाएगी और उसका दिया हुआ धन लक्ष्मी बन जाएगा जो सुख, शान्ति, संतोष, समृद्धि, स्वजन, स्वास्थ्य, सत्संग सातों अंगों से युक्त होगा।** वह ग्राहक ही आपका स्वजन बन जाएगा। अतः लक्ष्मी प्रगट होती है, और धन कमाया जाता है।

जब हमने कृत्य किया और उसके बदले जो भी प्राप्ति हुई, वह तथाकथित प्राप्ति ही होगी, क्योंकि वह न तो हमें जीने देगी, न मरने देगी और प्रारब्ध अलग बनेगा। वही कृत्य जब आप किसी महापुरुष की कृपावश 'जीवन काहे के लिए' के भाव से दिल-दिमाग और रूह से ईश्वर समर्पित होकर करते हैं तो हमारे वे ही कृत्य जो पहले जीवन के लिए थे अब 'जीवन काहे के लिए' के लिए हो जाते हैं। आप युद्ध भी लड़ेंगे तो ईश्वर के नाम से, आप पढ़ाई करेंगे तो ईश्वर के नाम से, सभी विद्यायें आपके लिए ब्रह्म-विद्या बन जाएंगी। आप नौकरी करेंगे, अफसर बनेंगे, कर्मचारी बनेंगे, लेकिन आप अपने में और अपने चहुँ ओर मात्र ईश्वर को ही देखेंगे। कार्य वही होगा लेकिन उसका परिदृश्य बदल जाएगा। आपको सुख, सन्तोष, समृद्धि, शान्ति, स्वजन, सत्संग व संत मिलेंगे।

अब यहाँ स्वतन्त्रता की क्या भूमिका है, यह भी जानना आवश्यक है, क्योंकि विषय **'सद्-तंत्र'** पर चल रहा है। जब आप स्वयं दुकानदार बनकर दुकान पर गए थे तो आप स्वतन्त्र थे, आपने स्वयं दुकान खोली थी मौके की जगह पर, जहां आपके सामान को खरीदने अधिक ग्राहक आएँ। **लेकिन जब आपने ईश्वर को अपना कर्त्ता-धर्त्ता मान लिया तो आप स्वतन्त्र से**

सद्तन्त्र हो गए। पहले आप स्वाधीन थे, अब सत्याधीन हो गए क्योंकि आपकी रूह, दिल व दिमाग पर सत्य, सद्‌गुरु अथवा ईश्वर का शासन हो गया। स्वतन्त्रता का प्रयोग जब भी आप करेंगे तो आप घोर अन्धकार व पतन के गर्त में गिर जाएंगे। जब तक हमारे दिल, दिमाग व रूह पर सद् का शासन नहीं होगा, सद्‌गुरु अथवा ईश्वर का शासन नहीं होगा, तब तक हमारी स्वतन्त्रता हमें गर्त में ले जाएगी, जैसा कि आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

हम मानव होते हुए भी **'मानव-धर्म'** नहीं जानते। आप हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई किसी भी धर्म के हैं, क्या आप मानव भी हैं या नहीं! हम किसी कुत्ते, गधे को उसका धर्म नहीं सिखलाते कि तुम्हें अच्छा कुत्ता या अच्छा गधा बनना चाहिए। क्योंकि वे जानवर हैं, परन्तु आप मानव हैं। आपका जो भी धर्म या कर्म है, आपको अच्छा मानव बनना है, क्योंकि हममें बनने की मूलभूत व चमत्कारिक विशेषता है, हम पशु नहीं हैं। धर्म क्या है, हमें पता होना चाहिए। धर्म के नाम पर जो लड़ाई-झगड़े व खून-खराबे करते हैं या करवाते हैं, उन्हें धर्म की परिभाषा का भी ज्ञान नहीं है। अधिकतर यह कहते सुना जाता है कि धर्म जीवन-शैली है। वास्तव में धर्म एक भौतिक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसके तीन अंग हैं—**नीति, पद्धति और अध्यात्म।**

नीति सब धर्मों की एक ही है—सहनशीलता, परोपकार, अबलाओं की रक्षा, बुर्जुगों का सम्मान आदि-आदि। कोई धर्म यह नहीं कहेगा कि किसी को लूटो, किसी के यहां डाका डालो। सभी धर्मों की नीति एक ही है और अध्यात्म भी एक ही है। सभी धर्मों में, जो लोग पैदा होते हैं, वे मरते भी हैं, यह दूसरी बात है कि किसी धर्म में मुर्दे को जलाते हैं, किसी में दफन कर देते हैं। मरने के बाद क्रिया-कर्म की रीति भले ही सबकी अलग-अलग है। विवाह-शादी की पद्धतियाँ चाहे अलग-अलग हैं लेकिन ईश्वर तो एक ही है न! कोई केश रखते हैं, कोई बाल कटवा लेते हैं। कोई गोल, कोई लम्बा तिलक लगाते हैं, इससे क्या अन्तर पड़ता है; लेकिन हमारी समस्त लड़ाइयाँ और हमारे राग व द्वेष महज़ पद्धतियों के कारण ही हैं। नीति व अध्यात्म में किसी की लड़ाई हो ही नहीं सकती। अध्यात्म सागर है व धर्म

रूपी नदियाँ अलग-अलग हैं, अन्ततः वे सभी सागर में जा मिलती हैं और अपना नाम-रूप खो देती हैं। **कोई भी धर्म जो वास्तविक धर्म है, वह आपको ईश्वर से मिला देगा। वह परम सत्य है, वह अध्यात्म है। वहाँ मिलने के बाद धर्म भी अपना नाम-रूप खो देता है। हम पद्धतियों में उलझकर धर्म के वास्तविक लक्ष्य व अर्थ को भूल गए हैं।**

हमें ज्ञात होना चाहिए कि मानव-धर्म क्या है ? अरे! आप ईश्वर को मानते हैं, उसे आप राम के रूप में मान लो, कृष्ण, हनुमान किसी भी रूप में मान लो, निराकार, साकार किसी भी रूप में चुन लो, ईश्वर तो एक ही है। जब आप ईश्वर को मानेंगे तो आप पर सद् का शासन होगा और आप सत्य का अनुसरण करेंगे। आप स्वाधीन के बजाय सत्याधीन होंगे तथा आपको अपने जीवन का आनन्द आएगा। **जब आप सद्तन्त्र व सत्याधीन होंगे तो आप एक से अनेक हो जाएँगे। आपके जीवन के समस्त कृत्य 'जीवन के लिए' न हो कर 'जीवन काहे के लिए' के लिए हो जाएँगे। वहाँ ईश्वर आपको एक सुविधा और देंगे कि उस समय आपकी समस्त शक्तियाँ एकदम असंख्य गुणा बढ़ जाएँगी।** आपके अन्दर असंख्य शक्तियाँ सुषुप्त पड़ी हैं और वे सुषुप्त इसलिए हैं, क्योंकि आप पशुओं की तरह जीवन के लिए दौड़ रहे हैं। जब आप मानवों की श्रेणी में आ जाएँगे तो आपकी समस्त शक्तियाँ असंख्यगुणा, अतुलनीय और गणनातीत हो जाएँगी। हम सब में हनुमंत-शक्ति है, जिस दिन **'जीवन काहे के लिए है'** इस विषय में दिल-दिमाग व रूह से विचार करने लगेंगे तो हम सब में वह अतुलनीय शिव-शक्ति का संगम हनुमंत-शक्ति जाग्रत हो जाएगी। तब घर-घर में हनुमंत-अवतार हो जाएगा।

आप स्वयं परिवार के प्रजापति हैं, प्रधानमंत्री हैं। आपको ज्ञात होना चाहिए कि परिवार कैसे चला रहे हैं। परिवार का एक धर्म है, परिवार में धर्मपत्नी शक्ति है और पति शिव है, लेकिन आज पाश्चात्यानुगमन के कारण एक का मुँह एक तरफ, दूसरे का मुँह दूसरी तरफ रहता है, क्योंकि हम बहुत बुद्धिजीवी हो गए हैं। घर में सभी लोग कमाने लगे हैं लेकिन पैसे

की बरकत समाप्त हो गई है। समय बचाने के साधन बहुत हो गए हैं लेकिन समय का फिर भी अभाव ही रहता है। अतः गलती कहाँ पर है? गलती यह है कि हम परिवार-धर्म भूल गए हैं। परिवार धर्म क्या है, आपको ज्ञात होना चाहिए। परिवार में शिव-शक्ति संगम क्या है? जैसे कि देह में मन-बुद्धि के सामंजस्य से सद् का प्रकटीकरण होता है, उसी प्रकार पति-पत्नी के पारस्परिक समन्वय से उस परिवार में एक चमत्कारिक शक्ति जाग्रत हो जाती है। आप किसी परिवार का जीवन-स्तर व भौतिक चमक-दमक मत देखना, आप उस परिवार की जीवन-शैली देखिए। कितना भी आलीशान मकान हो, यदि वहाँ पति-पत्नी में परस्पर समन्वय नहीं है, वहाँ आपका दो घड़ी भी रुकने का, यहाँ तक कि जल ग्रहण करने तक का मन नहीं करेगा। जहाँ समन्वय होगा, तो वे चाहे छोटी सी झोंपड़ी में ही क्यों न रहते हों, आपको वहाँ जाकर ऐसा अनुभव होगा कि जैसे आप किसी देवालय में आ गए हों।

परिवार-धर्म है कि विवाह-शादी भौतिक नहीं मानसिक व आध्यात्मिक हो। वे स्थूल, सूक्ष्म व कारण, तीनों को दृष्टि में रखकर हों। कोई भी सम्बन्ध यदि मात्र भौतिक होगा, मात्र स्थूल-देह व उससे सम्बन्धित वस्तुओं पर आधारित होगा तो वह इन भौतिक वस्तुओं की तरह ही क्षण-भंगुर व परिवर्तनशील होगा। किसी का रूप, धन, पद या भौतिक उपलब्धियाँ देखकर यदि हमारा सम्बन्ध उस से होगा तो इन वस्तुओं की तरह ही अस्थिर व नश्वर होगा। अतः **कोई भी सम्बन्ध बनाते समय स्थूल, सूक्ष्म व कारण को नहीं भूलना!** आजकल सब कुछ भौतिक व स्थूल पर ही आधारित हो गया है। विवाह-शादी के मापदण्ड व आधार भौतिक हो गए हैं, जो हमें अंग्रेज़ सिखा गए, क्योंकि वे जाते-जाते अंग्रेज़ियत तो यहाँ छोड़ ही गए। हमारे यहाँ विवाह-शादी के सम्बन्ध मानसिक होते थे, सूक्ष्म-मण्डल के आधार पर होते थे। माता-पिता पहले कुल, घर-बार, पूर्वजों के साथ अपना तारतम्य देखते थे। परिवार का इतिहास देखा जाता था। इस प्रकार सम्पूर्ण सूक्ष्म-मण्डल को ध्यान में रखा जाता था। सूक्ष्म-जगत के आधार पर जो

सम्बन्ध होंगे, वे बहुत हद तक स्थिर होंगे, देर तक चलेंगे। तीसरे हैं, आध्यात्मिक सम्बन्ध, जो ईश्वर के जरिए होते हैं। ईश्वर व सद्गुरु की प्रेरणा व सद् उपदेश से जो होंगे वे सम्बन्ध सदा के लिए होंगे। अब परिवार धर्म क्या है? एक ही छत के नीचे रहना और सामंजस्य न हो पाना, इसमें कोई आनन्द नहीं है। इससे तो अच्छा है कि विवाह ही न कराया जाए, विवाह होना बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है, कुल आगे चलाना भी बहुत ज़रूरी नहीं है। हमें स्वयं अपनी कितनी पीढ़ियों का नाम मालूम है! यदि मालूम हो भी तो उससे हमारे पूर्वजों को क्या अन्तर पड़ जाएगा। विवाह-शादी हम क्यों कर रहे हैं, आपका लक्ष्य क्या है? आपकी सन्तान उत्कृष्ट व विलक्षण हो, समाज, परिवार व देश के उत्थान में सहायक हो। **पति-पत्नी का सामंजस्य परिवार धर्म की नींव है। आप अपने बच्चों के विवाह कुलीन घर में करिए, जहाँ परिवार के सभी सदस्य सूर्योदय से पहले बिस्तर छोड़ देते हों। सौभाग्यशाली होने के लिए यह परमावश्यक है। घर में अतिथि-सत्कार होता हो, बुजुर्गों का सम्मान हो, स्त्री व गृहलक्ष्मी का सम्मान हो, घर में नित्य अन्न-दान, धन-दान, यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ, स्वाध्याय होता हो, घर दुर्व्यसनों से रहित हो, घर में संतों का आवागमन हो।**

हम धर्म निरपेक्षता की बात करते हैं, जबकि राज-तन्त्र व परिवार-तन्त्र धर्म-सापेक्ष होना चाहिए। हमें धर्म का वास्तविक अर्थ मालूम होना चाहिए। हमने भूल से पद्धतियों को धर्म मान लिया। परिवार के रीति-रिवाज़ों को धर्म मान लिया और रीति-रिवाजों पर ही परिवार में पारस्परिक वैमनस्य और झगड़े होते हैं। **इसलिए घर का कोई गुरु हो जिसके सद्निर्देशन व आज्ञा में परिवार के लोग चलते हों। ऐसा घर ही परिवार-धर्म का आदर्श उदाहरण है। परिवार-धर्म का यह आध्यात्मिक प्रारूप है।** पति-पत्नी एक दूसरे के उपासक हों, यह हमारी भारतीय संस्कृति है, जो इस तथाकथित स्वतन्त्रता ने आच्छादित सी कर दी है। परिवार में जब हर व्यक्ति खुशहाल होगा तो देश स्वतः ही समृद्ध व खुशहाल हो जाएगा।

भूल जाइए सरकारें कुछ करेंगी। राजनीति तो लोग बहुत जानते व चाहते हैं, लेकिन राज-धर्म कोई नहीं जानता। राज-धर्म के भी वही तीन अंग हैं—नीति, पद्धति और अध्यात्म। देश में खुशहाली हो, सबको रोटी, कपड़ा व मकान मिले, बच्चों को सरकार की ओर से उचित शिक्षा मिले, सबका स्वास्थ्य अच्छा हो, वृद्धों व अबलाओं की सुरक्षा हो, घर-परिवार सुरक्षित हो, असामाजिक तत्त्वों को कड़ा दण्ड मिले, देश की सीमाएं सुरक्षित हों, लोगों का मनोबल ऊंचा हो व आध्यात्मिक सत्यों का पालन हो—यह राज-धर्म की मूल नीति थी जो सब भूल गए, केवल पार्टियाँ याद रह गईं। पार्टी मात्र एक पद्धति है। हमारे देश के राजनीतिज्ञों को देखना हो तो इतिहास पढ़िए। भगवान श्रीकृष्ण, महात्मा विदुर और चाणक्य—तीन ही राजनीतिज्ञ मिलेंगे जो स्वयं में तपस्वी व योगी थे। आज के युग में राजनीतिज्ञों का ऐसा चरित्र दुर्लभ है। अरे! हर तीन, चार या पाँच साल बाद सरकारें बदलती हैं। ये सरकारें क्या करेंगी, हम ही एक सरकार को कभी हराते हैं, कभी जिताते हैं। यह दिमागी पागलपन या बुद्धि का दिवालियापन नहीं तो क्या है? **आज जिस सरकार को आपने हराया, पाँच साल बाद उसी को क्यों जिताते हैं?** क्योंकि आप भ्रमित हैं, इसलिए आपके द्वारा चुनी हुई सरकार भी भ्रमित ही रहती है। जो चुन रहा है यदि वह मूर्ख होगा, भ्रमित होगा तो उनके द्वारा चुना हुआ नेता भी ऐसा ही होगा। अरे! वह आदमी जिसे आपने पाँच साल पूर्व हराया था, क्या पाँच साल में सुधर गया है, जो अब आपने उसे जितवा दिया है? सरकारें आती-जाती रहेंगी, वे कुछ नहीं करेंगी। अतः हमें क्या करना है? आज प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र नहीं सद्-तन्त्र होना पड़ेगा। यदि आप सद्-तन्त्र हो जाएँगे, आपको अपने परिवार-धर्म व मानव-धर्म का ज्ञान हो जाएगा तथा आप तहे-दिल से उसका अनुसरण करने लगेंगे, जब आपका इष्ट व सद्‌गुरु तथा आध्यात्मिक ग्रन्थ व रचनाएँ आपके जीवन का निर्देशन करेंगी, तो आप वास्तविक लक्ष्य की ओर अग्रसर हो जाएँगे।

अरे! स्वतन्त्रता मनाते तो सत्तावन वर्ष हो गए, आज से आप प्रतिदिन सद्तन्त्रता-दिवस मनाएँ। आज से आप स्वाधीन नहीं सत्याधीन होने का संकल्प लीजिए। तभी आप जीवन के एक-एक क्षण का भरपूर आनन्द ले पाएँगे। आपको प्रभु ने मानव-देह जीवन के परम सत्य से आत्मसात् होने के लिए ही दी है। आपकी सोच, हर विचार, हर भाव, हर योजना, हर कृत्य सद् से जुड़ा हुआ हो, आपके कदम सद् की ओर बढ़ें, तभी आपका जीवन आनन्द में प्रारम्भ होकर आनन्द में ही चलेगा और आनन्द में ही समाप्त होगा।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(15 अगस्त, 2004)

अवतरण

आज हम परम सौभाग्यशाली हैं कि श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव-समारोह के उपलक्ष्य में एकत्रित होकर उस अजन्मे का जन्म मना रहे हैं, कितना विचित्र संयोग है! हमारे शास्त्रकारों ने ईश्वर को सच्चिदानंद कह कर पारिभाषित किया है। जो अनादि है, अनन्त है, भगवंत है, अजर-अमर, अजन्मा, देशातीत, कालातीत, सम्बन्धातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, लिंगातीत, कर्त्तव्यातीत एवं मायातीत है, वह ईश्वर हमारा **'कारण'** है। हमारी स्थूल, सूक्ष्म व कारण तीन देह हैं। उस परम पिता परमेश्वर की यदि कोई परमोत्कृष्ट, विलक्षण व चमत्कारिक रचना है, तो वह मानव-देह ही है। दुर्भाग्यवश हम तथाकथित होश सम्भालते ही बेहोश हो जाते हैं और स्वयं को अपने नाम-रूप की चेतना में ही मानकर अवचेतना में अपना व जगत का स्वयं निर्माण करना आरम्भ कर देते हैं। हम स्वयं को ईश्वर से अलग मान बैठते हैं और अपनी देह, परिवार, समाज, देश, विश्व और न जाने किस-किस के ठेकेदार बन जाते हैं। इसी गफलत में हम सम्पूर्ण जीवन बिता देते हैं।

हम मानव यदि ईश्वर-प्रदत्त उत्कृष्टतम बुद्धि से विचार करें तो हम पाएँगे कि मानव-देह हमें इसलिए मिली है, कि हम यह जान जाएँ कि यह देह किसलिए मिली है। दुर्भाग्यवश हम देह को साधन नहीं बल्कि साध्य मान लेते हैं और हमारी समस्त दैहिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियाँ मात्र देह को ही पालने-पोसने में लग जाती हैं। देह, जो कि ईश्वर-प्राप्ति का साधन थी, हमने उस देह को ही ईश्वर मान लिया, परिणाम-स्वरूप हमारी देह हमसे घृणा करने व हमें नचाने लगी। यदि हम किसी संत के

चरणों में बैठें, किसी महापुरुष का सत्संग करें तो हमें ज्ञान होगा कि मानव-देह हमें इसलिए मिली है कि देह के रहते हम जान जाएँ कि यह किसलिए मिली है। दूसरे, यदि हम अपनी बुद्धि से अत्यधिक विचार करें तो हम यह भी जान जाते हैं, कि हमारे हाथ में कुछ नहीं है। बहुत ही विरोधाभासपरक शब्दावली है।

हम मानव, संसार में स्वयं नहीं आए हैं, बल्कि लाए गए हैं और जो हमारी देह को लेकर आया है, वह जब चाहेगा, हमें इस संसार से निकाल देगा। यहाँ रहना, यहाँ सांस लेना, यहाँ जीना, हमारे हाथ में नहीं है। इसका पूरा रिमोट **उसके** हाथ में है। **बुद्धि की दूसरी कार्यप्रणाली यह है कि हम जान जाएं कि हम कुछ नहीं जानते।** जो दावा करते हैं कि वे बहुत कुछ जानते हैं, वे मूर्ख हैं। मैं कविता नहीं कर रहा हूँ, बल्कि बुद्धि के सूक्ष्म कार्य बता रहा हूँ। हम सब, कुछ न कुछ करने में बहुत व्यस्त हैं, लेकिन होता वह है, जो मंजूरे-खुदा होता है। **हम जानते हैं कि हम नहीं जानते कि क्या होगा और हम जानते हैं कि कोई जानता है, कि क्या होगा।** फिर भी हम उससे परामर्श लिए बिना, उसके शरणागत हुए बिना, कुछ न कुछ करते रहते हैं और दुर्भाग्यवश स्वयं को बहुत कर्मठ मानते हैं। इस प्रकरण में हम आधि, व्याधि और उपाधि तीनों रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। इसका विस्तृत वर्णन मैं **'सिद्धि'** विषयक प्रवचनों में कर चुका हूँ। इन सबसे भयभीत, त्रसित, विक्षिप्त व विदीर्ण होकर जब हमें इन समस्त सांसारिक उपलब्धियों की सारहीनता का आभास होता है तो हम कोई शरण ढूंढते हैं।

आपमें से कइयों ने साँप व नेवले का युद्ध देखा होगा। नेवला कभी खुले मैदान में साँप से नहीं लड़ता। वह वहाँ लड़ता है, जहाँ आसपास बहुत जड़ी-बूटियाँ तथा घास होती है। साँप अवसर देख कर नेवले को डंक मारता है, डसता है और अपना काफी जहर नेवले में पहुँचा देता है। नेवला डंक खाने के बाद वहाँ से भागता है और वह घास में जाकर कुछ पत्तियाँ खाता है, कुछ जड़ियाँ सूँघता है। इससे उसका ज़हर तुरन्त उतर जाता है। नेवला फिर मैदान में साँप से लड़ने आ जाता है तथा साँप फिर डंक मारता

है। अब दूसरी बार उसका ज़हर काफी कम हो चुका होता है। क्योंकि साँप की विष की ग्रन्थियाँ कम से कम 48 घण्टे में पुनः भरती हैं। नेवला फिर झाड़ियों में जाकर वनस्पतियाँ व जड़ी-बूटियाँ खाता व सूँघता है तथा पुनः साँप से लड़ने आ जाता है। इस बार साँप का ज़हर समाप्त हो चुका होता है, इसलिए नेवला उसे दबोच लेता है। इसी प्रकार **देह व आकर्षक संसार पर जब हम अधिपत्य जमा लेते हैं, हमें यह अध्यास हो जाता है कि मैं देह ही हूँ, तो उसी समय यह देह व देह पर आधारित समस्त जगत साँप की तरह से हमें डसने लगता है।** हम एक देह के बन्धन को पुष्ट करने के लिए देह पर आधारित अनेक बंधनों रूपी विषैले तत्त्वों से ग्रसित होते हैं। तब यदि हम नेवले की तरह बुद्धिमत्ता करके संसार व देह के बन्धनों को छोड़, किसी सन्त के पास चले जाएँ, वहाँ से कुछ सुनें और मनन करें (जैसे कि नेवला कुछ जड़ियाँ सूंघता है, कुछ पत्तियाँ खाता है) तो वह संत व सत्संग इस ज़हर को उतारने में अत्यधिक सक्षम होते हैं।

कोई भी संसार छोड़ नहीं सकता। हम संसार में रहें, परन्तु संसार हममें न रहे। लेकिन होता यह है कि हमारी अपनी देह और इस देह पर आधारित समस्त जगत हम पर इतना हावी हो जाता है कि हम अधिकतर अतीत के शोक और भविष्य की चिन्ताओं से परिवेष्टित रहते हैं और वर्तमान जीवन का आनन्द नहीं ले पाते। अतः यहाँ सद् के संग अर्थात् सत्संग का बहुत महात्म्य है। **इन विषैले सांसारिक डंकों से त्रसित, विदीर्ण, भयभीत व चिन्तित होकर क्षण दो क्षण जब हम संत की शरण व सत्संग में जाते हैं, तो संसार का विष कुछ देर के लिए उतर जाता है और हम तरोताज़ा होकर पुनः संसार में आ जाते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे सत्संग करते-करते सांसारिक ज़हर का प्रभाव ही समाप्त हो जाता है और हमें जीवन का आनन्द आने लगता है। हम जीवन जीने लगते हैं, जीवन काटते नहीं हैं।**

आज इस व्यास-गद्दी से एक महत्त्वपूर्ण घोषणा कर रहा हूँ, कि **एक संत, एक पंथ और एक ग्रन्थ** का अनुसरण करिए। मैं आपको संकीर्ण व

संकुचित नहीं कर रहा, बल्कि अध्यात्म का एक सूत्र दे रहा हूँ। आपने किसी को सद्गुरु धारण कर लिया तो जब तक सद्गुरु भी आपको धारण करे, इसके मध्य बहुत बड़ा अन्तराल होता है, आपको सद्गुरु का गुरुत्व सिद्ध करना होता है। लेकिन लोगों में धैर्य, संयम तथा तप नहीं होता। उनका संत के प्रति विश्वास तथा आस्था किसी आशा से युक्त होता है, यदि वह आशा पूर्ण नहीं होती तो वे गुरु बदल लेते हैं। जब हम देह को अपना स्वरूप मानते हैं तो आपकी देह पर आपका विश्वास मिथ्या होगा और उस आधार पर किसी पर भी किया गया विश्वास भी मिथ्या ही होगा। देह तो आपकी है नहीं, तो जब आप देह को अपनी मानते हुए किसी पर विश्वास करते हैं, तब वह विश्वास आपके साथ विश्वासघात अवश्य करेगा। लेकिन **सद्गुरु-कृपा से हम यह समझ जाते हैं कि यह देह मेरी नहीं है, मेरे लिए है। यह देह मुझे इसलिए मिली है कि देह के रहते मैं जान जाऊँ कि यह देह किसलिए मिली है।** जब हम तहे-रूह व मन से समस्त पुरुषार्थ-कर्मों द्वारा यह समझ जाते हैं कि **मैं विशुद्ध जीवात्मा हूँ, तो उस आधार पर जब हम किसी पर विश्वास करते हैं, तो विश्वासघात हो ही नहीं सकता।** आपको पूर्णतः ज्ञान होना चाहिए कि आपका विश्वास ईश्वरीय मान्यता पर आधारित है अथवा देह की मिथ्या मान्यता पर आधारित है। यदि आपका विश्वास देह की मिथ्या मान्यता पर आधारित है, कि वह तो मेरा काम करेगा ही क्योंकि उसे भी मेरी ज़रूरत पड़ सकती है, तो आपका विश्वास ही आपके साथ विश्वासघात करेगा। इसी प्रकार आप किसी डाक्टर पर विश्वास करते हैं तो कितने बड़े से बड़े डाक्टर की दवाई भी आपको मरण के कगार पर ले जा सकती है। यदि आपको ईश्वर में विश्वास होगा तो किसी मामूली चिकित्सक द्वारा दी गई राख की पुड़िया भी आपको पूर्णतः स्वस्थ कर देगी। इसलिए हमारे साथ हुए विश्वासघात का कारण हम बाखुद हैं। अतः **एक संत का अनुसरण करिए, उस संत में ईश्वरत्व को प्रतिपादित करके आप उस संत को मानिए। लेकिन यहाँ महत्त्वपूर्ण उस संत का आपको भी मानना है, जिसे कहा है—सद्गुरु-सिद्धि।** बच्चा हमारे घर पैदा होता है,

तो हम तुरन्त उसे मान्यता दे देते हैं, कि हमारा बच्चा है। उस बच्चे ने तो हमें अभी मान्यता दी ही नहीं। हमारी सबसे अधिक सम्भाल तब हुई थी जब हम नवजात शिशु थे, हमें अपने माँ-बाप की मान्यता भी नहीं थी। हम जीवन-काल में अनेकों सम्बन्ध बनाते हैं, कभी वे हमारे काम आएँगे। लेकिन जब हम अबोध शिशु थे, **तब हमें न केवल अपने माँ-बाप की मान्यता नहीं थी, बल्कि स्वयं अपनी और ईश्वर की भी मान्यता नहीं थी।** घर वालों ने तुरन्त मान्यता दे दी थी और हमारी उस वक्त सबसे अधिक सम्भाल हुई थी। **अरे! जब आप ईश्वर को मान्यता दे देंगे, तब क्या होगा आप अनुमान भी नहीं लगा सकते!** आप अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं पर ईश्वर-समर्पित भाव से विचार करिए।

जब वह संत आपको मान लेगा, जिसके लिए आपको आशा-रहित विश्वास व दास-भाव सहित उसका गुरुत्व सिद्ध करना होगा। जब सद्‌गुरु का गुरुत्व सिद्ध हो जाएगा तो वह आपको आठ रूपों में अंग-संग रहकर दिशा-निर्देश देता रहेगा। **प्रकटीकरण, पुकार, पदार्पण, परिस्थिति, प्रकृति, परिणति, प्राणी, पदार्थ किसी भी स्वरूप में सद्‌गुरु हमेशा आपको अपनी गोद में रखेगा।** इसका विस्तृत वर्णन मैं **'सिद्धि'** विषयक प्रवचनों में कर चुका हूँ। एक नाम एक रूप, एक नाम अनेक रूप, एक रूप अनेक नाम और अनेक नाम अनेक रूपों में, स्वप्न में, जागृति में, सुषुप्ति में, मृत्यु में, भस्मी में भी सद्‌गुरु आपको घेरे रहेगा। कभी सद्‌गुरु के दरबार में देह की मान्यता लेकर नहीं जाना, नहीं तो आप वहाँ से कुछ पाने की बजाय कुछ खो देंगे। स्वयं को मात्र भस्मी बनाकर ले जाना है। अपनी बातों और वस्तुओं से उसे आकर्षित करने की कोशिश नहीं करना। दूसरा, **एक पंथ**—महापुरुष ईश्वर की ओर प्रवृत्ति का कोई न कोई मार्ग बता देते हैं, लेकिन कोई भी मार्ग ईश्वर तक नहीं जाता। **ईश्वर का बताया हुआ भी यदि कोई मार्ग होगा तो वह भी ईश्वर तक नहीं जाता वरन् ईश्वर की ओर सभी मार्ग जाते हैं। ईश्वर इतना सस्ता नहीं है कि वह किसी मार्ग पर चलकर मिल जाए, यह गलतफहमी दूर कर लीजिए।** कोई पन्थ वहाँ

तक नहीं जाता, बेशक उसकी ओर जाते हैं। **आप उस मार्ग पर चलते चलते जब पूर्णतः असमर्थ, अशक्त, निरुपाय होकर ढह जाते हैं कि त्राहि माम... मैं तुम्हें नहीं पा सकता, मंज़िल वहीं आ जाती है; इसलिए एक पंथ होना चाहिए।** यदि रास्ते बदलते रहेंगे तो करोड़ों जन्मों तक चलते ही रहेंगे। यदि कुएं से पानी लेना है तो एक ही स्थान पर खोदना पड़ेगा। यदि अनेक जगह खोदेंगे तो पानी कभी नहीं निकलेगा। **इसलिए एक सन्त, एक पन्थ और तीसरा, मैंने कहा था—एक ग्रन्थ।** ग्रन्थ अर्थात् शब्दों का समूह—महापुरुषों के श्रीमुख से निकले शब्द ही ग्रन्थ हैं—वह ग्रन्थ पढ़कर, सुनकर जब वे शब्द आपकी अनुभूति में परिणत हो जाएँगे, अर्थात् जब वे शब्द, शब्द नहीं रहेंगे तब समझना चाहिए कि वे शब्द आपके पल्ले पड़ गए हैं। **यह समस्त विषय अनुभूति से अनुभूति तक का है।** जब शब्द, शब्दार्थ रूप में समझ में आते हैं तो वे मात्र कोरा व अधूरा ज्ञान बनकर रह जाते हैं। जबकि यह विषय बुद्धि से समझने का है ही नहीं:—

'तुम वो बात क्यों पूछते हो,
जो बताने के काबिल नहीं है,
उनके पाँव में मेंहदी लगी है,
आने-जाने के काबिल नहीं हैं।'

मैं इस व्यास गद्दी से स्पष्ट कर देना चाहता हूँ ताकि किसी को कोई गलतफहमी न रहे, कि वह महासत्ता चाहे, वह साकार है या निराकार, उसके बारे में किसी की बुद्धि काम नहीं करती। लोगों को महापुरुषों व अवतारों के विषय में टीका-टिप्पणी करने और अपनी विद्वता प्रदर्शित करने का बहुत शौक है। **ईश्वर का प्रत्येक नियम, उसकी प्रत्येक लीला, उसका प्रत्येक व्यक्तित्त्व अनिर्वचनीय है।** वह मन, वाणी व आपकी सोच से परे का विषय है। वह लिखने, बोलने, सोचने से परे है; लेकिन युगों-युगान्तरों से महापुरुष उसके विषय में बात करते आए हैं और हम सुनते व पढ़ते आए हैं। शास्त्रों ने, वेदों ने, ग्रन्थों ने, पुराणों ने, उपनिषदों ने, स्मृतियों ने, श्रुतियों ने, सबने **उसके बारे में** लिखा है। **उसको** कोई नहीं लिख सका, यह गलतफहमी

किसी को न रहे कि वह ईश्वर को जान गया है:–

''सो जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।''

किताबें पढ़कर और प्रवचन सुनकर कोई ईश्वर को जान जाए तो सब ईश्वर-विशेषज्ञ हो जाएँ। इसलिए यह स्पष्ट करना बहुत आवश्यक है कि वह ईश्वर मन, वाणी व बुद्धि से परे है। लेकिन उसके बारे में बात

होती है। हम उसके बारे में बोलते, सुनते व लिखते हैं। क्या है यह सब कुछ? मैं आत्मानुभूति के आधार पर एक तथ्य स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि **यह अनुभूति से अनुभूति तक का विषय है**।

अतः साधक को अनुभूति होती है, जो क्रिया एवं कर्मसाध्य न होकर कृपासाध्य है। अनुभूति देह में नाभिप्रदेश से होती है, नाभिप्रदेश में विशेष प्राणशक्ति है, जिसको योगियों ने अनुभूति का कोष कहा है। अनुभूति में शब्द नहीं होते, ईश्वरीय अनुभूति को जब शब्दों में ढाला जाता है तो योगी के मुख से शब्दों के रूप में आते-आते ही वह अनुभूति आधी जूठी हो जाती है। अब उसके बाद सद्‌गुरु के मुख से वह सद्‌शिष्य के कानों तक जाती है। सद्‌शिष्य उस अनुभूति का श्रवण करता है, श्रवण के बाद बुद्धि से चिन्तन होता है, फिर मन द्वारा मनन और फिर नित्याध्यासन होता है। बार-बार पुनरावृत्ति होती है और उसके बाद उन शब्दों की सद्‌गुरु कृपा में Processing होती है। जिसके बाद शब्द अपना रूप खो देते हैं। **इस प्रकार जो सद्‌गुरु की अनुभूति थी वह आपके मानस में अनुभूति बनकर ही उतर जाती है।** यदि वह वास्तव में आपकी अनुभूति हो गई है तो बीच का रास्ता गायब हो जाता है और फिर जब आप बोलेंगे तो वैसे ही वह निकलेगी। अधूरा ज्ञान आपके अज्ञान को छुपा नहीं सकता, जब तक शब्द आपकी अपनी अनुभूति न बन जाएं तब तक उस विषय में बोलना आपके महा अज्ञान का द्योतक होगा।

यद्यपि ईश्वर बोलने, सुनने, लिखने व पढ़ने का विषय नहीं है लेकिन फिर भी हम उसके बारे में बोलते हैं। उससे होता यह है कि जैसे एक नमक का पुतला समुद्र की गहराई में उतरे तो तली में पहुँचते-पहुँचते वह स्वयं ही

खुर जाता है। **ईश्वर के बारे में जानने के लिए जब हम प्रवचन सुनते-सुनाते हैं, सत्संग करते हैं, मनन करते हैं, ध्यान करते हैं, यद्यपि हम ईश्वर को नहीं जान सकते, लेकिन इस प्रक्रिया में हमारा देहाध्यास घुलना शुरू हो जाता है।** पहले हम जो बहुत भाग-दौड़ करते थे, अब हाथ-पाँव खुरने लगते हैं। **अतः इस सत्संग, ध्यान, चिंतन, मनन, यज्ञ, हवन, साधना, जप, तप, प्राणायाम आदि का लाभ यह होता है कि आपका अहं समाप्त होना शुरू हो जाता है और उस ईश्वर को जानने व पाने के लिए अहं समाप्त होना परमावश्यक है। जब तक आप में अपनी बल, बुद्धि, विद्या का अभिमान होगा तब तक आप उस परम सत्य को पा तो क्या, स्पर्श भी नहीं कर सकते।**

सत्संग व सद् क्या है? जब कोई मरता है तो उसकी अर्थी के साथ लोग नारे लगाते हैं कि **'राम नाम सत्य है'**। राम नाम ही सत्य है। सत नाम वाहे गुरु, सत नाम वाहे गुरु। जो सत्य है, वह चेतन है और जो चेतन है, वह आनन्द है तथा सच्चिदानंद ईश्वर स्वयं में निराकार है, ठोस-घन-शिला की नाईं टस से मस नहीं होता।

'राम की दुहाई रे बाबा राम की दुहाई, न कित आएबो न कित जाएबो' करोड़ों ब्राह्मण्डों का निर्माण, पालन व संहार जिसका भृकुटि विलास मात्र है– **'निराकार रूपं शिवोऽहं शिवोऽहं।'** वह निराकार सत्ता साकार रूप क्यों लेती है, कैसे लेती है, उसका उद्देश्य क्या होता है, उसका अवतार क्यों होता है, उसके पीछे क्या दर्शन है? हम इन अवतारों व अवतारी पुरुषों को युगों-युगान्तरों व जन्म-जन्मान्तरों में पूजते आए हैं। ईश्वर-अवतरण एक बहुत बड़ी दैवीय घटना है, जो पुनः-पुनः केवल भारत में ही घटती है। न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, इंग्लैण्ड व अमरीका में कोई अवतार आपने कभी नहीं सुना होगा। **जब ईश्वर साकार देह धारण करता है तो मात्र भारत में ही करता है; यह भी महत्त्वपूर्ण तथ्य है।** सीमाओं से परे वह असीम सत्ता जो अनादि है, अनंत है, भगवंत है क्या वह सचमुच देह धारण करके आता है? हाँ! वह आता है, इसका वैज्ञानिक प्रमाण भी है।

आपने विज्ञान में पढ़ा होगा कि पदार्थ की तीन अवस्थाएं हैं–**ठोस, तरल और गैस**। उदाहरण के लिए पानी को ले लीजिए H_2O= Water जल। पानी तरल है, द्रव रूप है, मैं अवतरण का वैज्ञानिक प्रमाण दे रहा हूँ। जब पानी को हम 100^0cc पर उबालते हैं तो पानी वाष्प (भाप) में बदलना शुरू हो जाता है। पानी का तापमान 100 डिग्री सैन्टीग्रेड से नहीं बढ़ता, उसके बाद उसे जितना चाहे और अधिक गर्म करो तो वह भाप में बदलने लगता है। अपना रूप बदलने के लिए, भाप अथवा स्टीम में परिवर्तित होने के लिए एक ग्राम पानी, पाँच सौ छत्तीस कैलोरी हीट लेता है और तब 1cc स्टीम बनती है, इसलिए भाप में इतनी ऊर्जा होती है कि बड़े-बड़े इंजन उससे चल सकते हैं। उस भाप को ठण्डा करते हैं तो फिर पानी बनता है और पानी को हम और ठण्डा कर ज़ीरो डिग्री सैन्टीग्रेड पर ले आते हैं तथा और ठण्डा करते हैं तो जैसे गर्म करने पर पानी का तापमान 100^0cc से अधिक नहीं जाता उसी प्रकार ठण्डा होने पर 0^0cc से नीचे नहीं आता और उसकी बर्फ बनने लगती है, जोकि ठोस है। पानी, पानी है, वाष्प भी पानी है और बर्फ भी पानी ही है। तीनों के अणु-परमाणु वही हैं H_2O, रूप व गुण पृथक-पृथक हैं लेकिन मूल ढांचा पानी ही है। गर्म करने व ठण्डा करने की प्रक्रिया से हम पानी के तीनों रूप देख सकते हैं।

इसी प्रकार वह ईश्वरीय-सत्ता, जो पूरे ब्रह्माण्ड के कण-कण में व्याप्त है, वह अति सुलभ है, लेकिन उसको पाना उतना ही दुर्लभ है। इसकी सुलभता ने ही हमारी बुद्धि को भ्रमित कर दिया, क्योंकि विश्वास नहीं होता। कोई वस्तु यदि बहुत सुलभ हो तो उसमें विश्वास करना कठिन होता है। प्रभु अति सुलभ हैं। **वह प्रभु, वह निराकार सत्ता जब साकार में आती है तो उसकी कोई वैज्ञानिक तकनीक नहीं है, कि उसे ठण्डा करो तो बर्फ या आदमी बन जाएगा और गर्म करो तो भाप की तरह निराकार हो जाएगा, ऐसा कुछ भी नहीं है। ईश्वर करनी का विषय नहीं है, ईश्वर करुणा व कृपा का विषय है।** जब उसकी कृपा होती है तो वह निराकार सत्ता हम

मानवों की तरह साकार देह धारण करके पृथ्वी पर उतर आती है, **इसे कहा है—'अवतरण'।**

अवतरण का अर्थ है, नीचे उतरना। उतरता है वह और कई बार उतरा है तथा इस भारत-भूमि में वह पुनः-पुनः उतरेगा। यहाँ एक पत्ता भी उसकी इच्छा के बिना नहीं हिलता और इस सृष्टि में जो कुछ भी होता है, वह ईश्वर की दृष्टि में सार्थक होता है। यहाँ कुछ भी निरर्थक नहीं होता। परमात्मा देह धारण क्यों करता है? इसके भी कई कारण हैं। जब उसके परम भक्त व उपासक उसका दर्शन करने के लिए अति लालायित हो जाते हैं, अपने जन्म दर जन्म मात्र एक ही इच्छा में व्यतीत करने लगते हैं कि प्रभु के दर्शन हो जाएं, किसी भी प्रकार से, तो परमात्मा का अवतार होता है। **भक्त बिना किसी आस के, मात्र दास-भाव से विश्वास करके प्रभु की शरण में ढह जाता है, तो उसकी आर्तनाद से आविर्भूत होकर वह निराकार सत्ता, सच्चिदानंद ईश्वर साकार रूप में पृथ्वी पर उतरता है।**

भक्त का ऐसा विश्वास जिसमें आस न हो कि प्रभु मुझे यह दे दो और उसमें दास-भाव हो कि प्रभु! मैं तेरी शरण में हूँ, अब आगे तेरी मर्ज़ी, बस एक बार एक झलक दिखा जाओ यदि ऐसा विश्वास हो जाए तो वह भक्त चार मोक्षों का अधिकारी हो जाता है—**सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य व सारूप्य**—प्रभु मुझे अपने से जोड़ लीजिए गले का हार, माथे का मुकुट, पांव की खड़ाऊँ बनाकर, आपका परिधान बनकर मैं आपके साथ जुड़ जाऊँ, जब भक्त का हृदय इस योग के लिए आर्तनाद करता है तो उसे कहा है—**'सायुज्य मोक्ष'**। प्रभु मैं तुम्हारे समीप रहूँ तुम्हारी पत्नी बनकर, पुत्र बनकर, सेवक बनकर, इसे कहा है—**'सामीप्य मोक्ष'।** मैं जहाँ भी रहूं तुम्हारे लोक में रहूँ, इसे कहा है—**'सालोक्य मोक्ष'**। उन्हें जीते जी ऐसा अनुभव होने लगता है कि उनके ऊपर सरकार उनके इष्ट की ही है, वे विश्व में जहाँ भी जाते हैं, उनके ऊपर हुकुम उनके इष्ट का ही चलता है। प्रभु मुझे आप अपना रूप दे दो, इसे कहा है—**'सारूप्य मोक्ष'।** जब भक्तों की इतनी उच्च भावना व वृत्ति हो जाती है कि वे मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं तो उस

परमात्मा को दैवीय अधिनियमों के तहत अविलम्ब अथवा विलम्ब से, अपने भक्तों की रुचि के अनुसार, देह धारण करके पृथ्वी पर उतरना पड़ता है। भक्तों की मनोवांछित इच्छा पूरी करने के लिए तथा उनको प्रसन्न करने के लिए वह निराकार सत्ता साकार देह धारण करके पृथ्वी पर उतरती है।

दूसरे, हम मानव जब अपनी अहं बुद्धि के वशीभूत हुए उच्छृंखल हो जाते हैं, ईश्वर को भूलकर स्वयं को ही ईश्वर मानते हुए भयानक कष्टों से ग्रसित हो जाते हैं, तो परमात्मा हमारे दिमाग दुरुस्त करने के लिए पृथ्वी पर उतरता है। वह अपना **अधिपत्य** नहीं छोड़ सकता। वह दिखा देता है कि सम्पूर्ण सृष्टि का एक-एक पल, एक-एक क्षण, एक-एक पत्ता मात्र मेरी आज्ञा से ही हिलता है। अपनी लीलाओं के द्वारा अपने प्रभुत्व व भगवत्ता को प्रदर्शित करने के लिए वह अवतरित होता है, ताकि मानव की बुद्धि दुरुस्त हो जाए अतः तीसरे, जो ईश्वरीय लीलाएँ होती हैं, वे बहुत ही सार्थक होती हैं। प्रभु स्वयं को कभी भी प्रभु घोषित नहीं करते, यदि वे स्वयं को प्रभु घोषित कर दें तो लीलाएँ हो ही नहीं सकतीं। यदि कोई अभिनेता हीरो की भूमिका करे, कोई नौकर अथवा विलेन की भूमिका में उतरे और साथ-साथ अपना मूल परिचय भी दे कि मैं अमुक अभिनेता हूँ, तो फिल्म देखने वालों को आनन्द नहीं आएगा। उसे अपना मूल परिचय किसी भी तरह से गोपनीय रखना होता है, यह भी लीला का एक आवश्यक अंग है। प्रभु का मानव बनकर लीलाएँ करना कोई मदारी का खेल अथवा मनोरंजन का साधन नहीं होता। **ईश्वर की प्रत्येक लीला में मानवों के लिए कोई न कोई दिव्य अधिनियम छिपा होता है।** सृष्टि का निर्माता, पालनकर्त्ता व संहारकर्त्ता हम मानवों को दिव्य अधिनियम बता देता है कि मेरी सृष्टि के ये नियम हैं, जो अकाट्य हैं। उन नियमों से हमें अवगत कराने के लिए भी परमात्मा को साकार देह धारण करके पृथ्वी पर उतरना पड़ता है। इसलिए यदा-कदा यह अवतार पृथ्वी पर आते हैं, लीला करते हैं और चले जाते हैं तथा युगों-युगान्तरों तक मानवों के दिलो-दिमाग में बसकर सोच का विषय बन जाते हैं, कि सत्य क्या है?

कण-कण में है भगवान, जैसे कि दूध में मक्खन होता है लेकिन दूध से मक्खन निकालने के लिए दूध को बिलोना पड़ता है। इसकी कई तकनीक हैं, लेकिन एक बार जब दूध से मक्खन निकल आता है, तो पुनः वह मक्खन दूध में नहीं मिलाया जा सकता। अरे! भगवत्ता आपके ही भीतर छिपी हुई है। जैसाकि मैंने एक बार वर्णन किया था कि जो सर्वोत्कृष्ट व विकसित मानव होते हैं, उनमें अधिक से अधिक सात व्यक्तित्व होते हैं तथा प्रत्येक मानव में ईश्वर ने अपना एक व्यक्तित्व भी रखा हुआ है, जिसका नाम है **'दिव्य व्यक्तित्व'।** जब कभी प्रभु-कृपा से, जप, तप, ध्यान, यज्ञ, हवन, दान, पुण्य, प्राणायाम, स्वाध्याय या किसी भी पुरुषार्थ से कृपावश आपका वह दिव्य व्यक्तित्व प्रकट हो जाए तो आपके अन्य समस्त व्यक्तित्व भी तुरन्त दिव्य हो जाते हैं। किसी भी महामानव में अधिक से अधिक सात व्यक्तित्व पाए जाते हैं। यदि किसी में सात से दस व्यक्तित्व होते हैं तो मानव-देह में होते हुए भी वह या तो कोई राक्षस होता है या देवता होता है, जैसेकि रावण में दस व्यक्तित्व थे। यदि किसी मानव में दस से अधिक व्यक्तित्व हों तो वह ईश्वर का अंशावतार या पूर्णावतार होता है। जैसेकि भगवान राम में चौदह और भगवान कृष्ण में सोलह व्यक्तित्व थे।

जब वह निराकार सत्ता साकार देह धारण करती है, तो उसे कहा है— **भगवान।** हमारे शास्त्रकारों ने छः भग बताए हैं—**सौन्दर्य, शक्ति, ज्ञान, ऐश्वर्य, ख्याति व त्याग।** उस अवतार में इन छः भगों का होना परमावश्यक है, तभी उसे भगवान कहा जाता है। लीलाएँ होती हैं और लीलाओं का कुछ न कुछ निहितार्थ अथवा प्रतिपाद्य (थीम) होता है। उस **भगवत् सत्ता ने हम समस्त मानवों का निर्माण इस प्रकार किया है कि यह छः भग या गुण प्रत्येक मानव में भी हैं, लेकिन वे छिपे हुए इसी प्रकार हैं, जैसे कि दूध में घी छिपा रहता है।** जप से, तप से, कृपा से जब वह घी प्रकट हो जाता है, तो पुनः उसे दूध में मिलाया नहीं जा सकता। जब आप में भगवत्ता प्रकट हो जाएगी तो आप बिलकुल पृथक महामानव हो जाएँगे परन्तु **वह ईश्वर सर्वगुण सम्पन्न** बना बनाया ही अवतरित होता है—**'प्रभु अनन्त प्रभु लीला अनंता।'**

भगवान श्रीकृष्ण की लीलाएँ अनंत और अपरिमित हैं। भगवान ने अपनी लीलाओं द्वारा यह जनवाया कि प्रभु प्रेम व भाव के भूखे हैं इसीलिए अहंकारी दुर्योधन के षड्रस व्यंजन त्याग कर प्रभु ने विदुर जी के घर दहलीज पर बैठकर विदुरानी के हाथों से प्रेमपूर्वक केले के छिलके खाए। अर्जुन का कृष्ण के प्रति समर्पण भी दृष्टव्य है। आप अर्जुन के सखा-भाव की उत्कृष्टता देखिए, कि अर्जुन को यह भी ज्ञान नहीं था कि श्रीकृष्ण भगवान हैं, वह तो उन्हें अपना परम हितैषी सखा ही समझता था। लेकिन वह श्रीकृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पित हुआ और इस समर्पण भाव के कारण ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्धभूमि में दिव्य-दृष्टि देकर बड़े-बड़े तपस्वियों व योगियों के लिए दुर्लभ अपना विराट-स्वरूप दिखाया तथा अपनी ही चतुरंगिनी सेना (जोकि कौरवों के पक्ष में थी) को हरा दिया। इस समस्त लीला का अभिप्राय यह है कि **जब हम ईश्वर के चरणों में पूर्णतः समर्पित हो जाते हैं तो ईश्वर की समस्त माया तथा उसकी समस्त शक्तियाँ हमारे अनुकूल हो जाती हैं।** एकमात्र यही रास्ता है, नहीं तो कोई भी माया पर अधिपत्य कर ही नहीं सकता। यदि आप चाहते हैं कि ईश्वरीय माया आपके अनुकूल हो, महतारी बनकर आपकी सेवा करे और ईश्वर से आत्मसात् होने में सहायक हो, तो आपका ईश्वर के चरणों में पूर्णतः समर्पित होना परमावश्यक है।

सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का महाकारण ईश्वर है, क्योंकि इस सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में एक पत्ता भी उसकी इच्छा के बिना नहीं हिलता। क्या हम अपनी देह के कारण स्वयं हैं, क्या हम जन्म का कारण जानते हैं, क्यों हम किसी विशेष देश, काल, परिस्थिति में, विशेष माता-पिता से पैदा हुए, यह हम नहीं जानते। इसी प्रकार हम अपनी मृत्यु का कारण भी नहीं जानते। **जीवन के दो छोर, जन्म और मृत्यु जो कि निश्चित हैं, पर वे हमारे लिए अनिश्चित हैं, उनका कारण हम नहीं जानते।** जीवन की घटनाएं आपसे परामर्श लेकर नहीं घटतीं, वे होती हैं। फिर भी हम यदि किसी कृत्य का कारण स्वयं बनते हैं, तो उस कृत्य से हुई प्राप्ति का भोग हम दैवीय

अधिनियमानुसार कर ही नहीं सकते। लेकिन जब हम कारण ईश्वर को मान लेते हैं, जोकि परम सत्य है, तभी हम आनन्दपूर्वक जीवन जी पाते हैं, क्योंकि आपके जीवन के कारण आप नहीं हैं।

अतः आपको मात्र ईश्वर के कृत्यों की सराहना करनी है। **आपको बुद्धि मात्र इसलिए दी है कि आप उसके खेल की वाह-वाह करें।** सतनाम वाहे गुरु, सतनाम वाहे गुरु.... और जो आप कर रहे हैं, उसे ईश्वर निमित्त करते रहिए कि प्रभु आप ही कर रहे हैं, आप ही करवा रहे हैं। प्रभु इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक, इच्छाफल आप ही हैं। हमसे भूल यह होती है कि हम अपनी इच्छा मान लेते हैं कि प्रभु इसे पूर्ण करो। तो आप स्वयं इच्छुक बने और इच्छा अपनी मान ली, इच्छापूरक भगवान को मान लिया। अब भगवान को क्या अन्तर पड़ता है, उसने आपकी इच्छा पूरी कर दी, फिर इच्छा पूरी होने में आपका हित भी है या नहीं, आप नहीं जानते। इसलिए इच्छा के चारों अंग आप ईश्वर-समर्पित करिए, कि प्रभु यदि यह इच्छा सार्थक है, इसके पूरी होने में यदि मेरा हित होता है तो इसे आप पूरा करिए, अन्यथा न करिए। जब आप इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक व इच्छाफल ईश्वर को ही मान लेंगे तब वह इच्छा यदि पूर्ण नहीं भी होती तो उसमें आपका हित ही होता है। गीता के विषय में लोगों में एक बहुत बड़ा भ्रम है कि गीता कर्मवाद पर है, **जबकि गीता कर्मवाद पर नहीं कारणवाद पर है।**

आज भगवान श्रीकृष्ण के निर्वाण की बेहद सटीक घटना सुना रहा हूँ, जो बहुत सार्थक है। कृष्ण-लीला की सार्थकता हृदयंगम करने के लिए यह घटना विशेष रूप से वर्णन करने योग्य है, इसका रसास्वादन करके श्रीकृष्ण की कृपा से ही हमें समझना है कि श्रीकृष्ण क्या थे?

जब यदुवंशी बहुत उद्दण्ड व उच्छृंखल हो गए तो भगवान को बहुत खिन्नता हुई। वे योगेश्वर हैं और लीलाधारी हैं, उन्होंने सोचा कि अब लीला के संवरण का समय आ गया है। यदुवंशी बहुत ही शराबी व नशेड़ी हो गए थे। अतः भगवान ने द्वारका में शराब-बन्दी लगा दी। अब यादव तथा भगवान के अपने सम्बन्धी बहुत दुःखी रहने लगे। भगवान ने कहा कि द्वारका से

बाहर जाकर आप लोग जो चाहे कर सकते हैं। भगवान उनके साथ द्वारका से बाहर की ओर चल पड़े। भगवान को ज्ञात था कि अब लीला का अन्त होने वाला है। अन्होंने अपने विश्वसनीय सारथी दारुक से कहा कि तुम हस्तिनापुर से अर्जुन को लेकर अमुक समय, अमुक स्थान पर आ जाना। हम वहीं देह छोड़ेंगे, तब हमारा अन्तिम संस्कार अर्जुन के हाथों हो। दारुक भयभीत व कम्पित हो गया लेकिन भगवान ने उसे अपनी आज्ञा पूरी करने के लिए कहा कि एक तो अर्जुन हमारा अग्नि-संस्कार करे, दूसरे, राधा को हमारे निर्वाण का समाचार भी पहुँचाए।

दारुक ने शोक-पूरित हृदय से वहाँ से प्रस्थान किया। उधर यादव शराब पी-पी कर परस्पर एक-दूसरे से लड़ते हुए मरने लगे। बलराम, प्रद्युम्न आदि सभी ने जल-समाधि ले ली। भगवान यह सारा कृत्य देखकर एक पीपल के वृक्ष के नीचे लेट गए और अपना एक पाँव दूसरे पाँव के घुटने पर रख लिया। जराशबर भील ने दूर से उस पाँव को देखा तो उसे हिरन के मुख का भ्रम हो गया तथा उसने ज़हर-बुझा तीर मार दिया। तीर लगते ही खून बह निकला और पास जाकर उसने देखा कि यह तो भगवान श्रीकृष्ण का चरण था। वह रोने लगा कि प्रभु! मेरे से यह क्या हो गया! भगवान ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि यह हमारी इच्छा से हुआ है, अतः तुम दुःख मत करो। अर्जुन कल यहाँ आएगा, तुम इसी पीपल के वृक्ष के नीचे हमारा संस्कार करवा देना, साथ ही अर्जुन से कहना कि राधा को हमारे निर्वाण का समाचार भिजवा दे। अगले दिन दारुक अर्जुन को लेकर वहाँ पहुँचा, वह जराशबर भील श्रीकृष्ण के दिव्य शरीर के पास व्याकुल अवस्था में बैठा था। अर्जुन क्रोधित होकर जराशबर को मारने के लिए उद्यत हो गया तो दारुक ने अर्जुन को बताया कि यह सब प्रभु की ही लीला थी, वे ऐसा ही चाहते थे, तभी तो मैं तुम्हें बुलाकर लाया हूँ। अर्जुन ने जराशबर को छोड़ दिया और भगवान का संस्कार कर जब लौट कर द्वारका में आए तब तक समुद्र की लहरों के वेग से द्वारका डूबनी शुरू हो गई थी। वहाँ कई कार्य करने थे, अर्जुन ने भगवान की सभी स्त्रियों को बाहर निकाला और उसी रथ पर वे

हस्तिनापुर की ओर चल पड़े। रास्ते में एक जंगल आता था। उस जंगल में एक कुरकुट नामक भील ने अर्जुन का रथ रोक लिया, अर्जुन ने गाण्डीव उठाया तो उस भील ने अर्जुन पर थप्पड़ का प्रहार किया और गाण्डीव की प्रत्यंचा में ही अर्जुन को बाँध दिया और अर्जुन असहाय सा अपने ही धनुष में बँध गया। **दारुक ने कहा कि अर्जुन तुम्हारे गाण्डीव में जिसकी शक्ति थी, वह तो चला गया, अब तुम्हारी शक्ति कुछ भी नहीं रही। अर्जुन का सारा अभिमान गलित हो गया** और उसने पीछे मुड़कर देखा कि भगवान की सभी स्त्रियाँ अर्जुन की ओर बिना देखे, उस कुरकुट भील के पीछे चल पड़ीं। अर्जुन ने सोचा, मैं तो इन्हें शरण देने के लिए लाया था, ये तो मेरी ओर देख भी नहीं रही। कुरकुट भील में उस समय भगवान श्रीकृष्ण का वास था। अर्जुन को बोध हुआ कि **ईश्वर की माया ईश्वर की ही अनुगामिनी है।**

अर्जुन को वहाँ किसी प्रकार, किसी ने मुक्त किया तो उसने उत्तराखण्ड में जाकर गंगा के किनारे भगवान का तर्पण किया और वहीं अर्जुन को ज्ञानी उद्धव मिले। अर्जुन ने उद्धव को भगवान के शरीर त्यागने का समाचार दिया। उद्धव हतप्रभ रह गए व उन्होंने अर्जुन से पूछा कि प्रभु ने कोई और संदेश दिया हो तो बताइए। अर्जुन ने उद्धव से कहा कि भगवान ने अपने निर्वाण का समाचार राधा को देने के लिए कहा है।

राधा श्रीकृष्ण से आयु में पाँच वर्ष बड़ी थीं। राधा को जब छोड़ा था तब कृष्ण 20 वर्ष के थे और राधा 25 वर्ष की थीं। अब 95 वर्ष बाद कृष्ण ने देह त्यागी तो राधा को अपने निर्वाण का समाचार देने की बात कही। उस ज्ञानी उद्धव के मन में भ्रम हो गया कि श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं, राधा से बिछुड़े 95 वर्ष हो गए हैं तब भी अन्तिम समय में उन्हें स्त्री की याद आई। उद्धव की बुद्धि का भ्रम दर्शनीय है। फिर भी उद्धव बरसाने पहुँचे और राधा को खोजा। अब 95 वर्ष में बहुत कुछ बदल गया था। उद्धव ने एक वयोवृद्ध सज्जन से राधा के विषय में पूछा तो उसने बताया कि एक बूढ़ी पगली तो है जो सोलह श्रृंगार करके रहती है, और दिखने में युवा ही लगती है, हो सकता

है वही राधा हो। उद्धव वहाँ पहुँचे और द्वार खटखटाया तो एक अत्यन्त सुन्दर युवती सोलह श्रृंगार किए हुए निकली और बोली, कहो उद्धव तुम कैसे आए हो? उद्धव को अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ क्योंकि वर्षों पूर्व उद्धव पहले भी जिस राधा से मिले थे, उन्हें आज भी राधा वैसी ही युवती दिखाई दी। उन्होंने पूछा कि आप राधा ही हैं? युवती ने कहा, हाँ! मैं ही राधा हूँ। उद्धव ने कहा, तुम तो वैसी ही हो जैसी आज से 95 वर्ष पहले थीं। मैं तुम्हें भगवान श्रीकृष्ण के निर्वाण का समाचार देने आया हूँ। राधा यह सुनकर हँस पड़ी कि उद्धव तुम सठिया गए हो, तुम्हारा कृष्ण चला गया है, पर मेरा कृष्ण तो कहीं गया ही नहीं। यदि देखना है तो चलो मेरे साथ यमुना किनारे। देखो, यह वंशी की ध्वनि सुनाई पड़ रही है, यह देखो कदम्ब की डाल पर कृष्ण बैठा है! वहाँ उद्धव को चारों ओर भगवान के दर्शन हुए। राधा ने कहा कि मेरा कृष्ण कहीं नहीं जा सकता। उद्धव राधा के चरणों में पड़ गए। राधा ने उद्धव से कहा कि उद्धव तुम तो महाज्ञानी हो, योगी हो, तुम तो जान लो कि कृष्ण मुझे जैसे छोड़कर गया था मैंने समय को वैसे ही, वहीं रोक लिया था तथा मैंने अपनी उम्र एक दिन भी बढ़ने नहीं दी। यदि मेरी उम्र आगे बढ़ती तो मेरा कृष्ण मुझसे छूट जाता। यह अत्यन्त गहन दर्शन है। राधा ने काल अर्थात् समय को ऐसा रोक लिया था कि 95 वर्ष के बाद भी वह 30 वर्ष की ही रही। यह नितान्त सत्य है।

आप अपने व्यावहारिक जीवन में देखते हैं कि जब किसी के जीवन का समय आनन्दमय व्यतीत होता है, तो वह कालातीत होता है। आप उस व्यक्ति को दस-पंद्रह वर्ष बाद भी मिलते हैं तो वह वैसा युवा का युवा ही नज़र आता है और जब कठिन समय होता है जीवन में, जब व्यक्ति भय, चिन्ताओं व विक्षेप से ग्रसित होता है तो एक दो वर्ष बाद मिलने पर भी वह व्यक्ति पंद्रह बीस साल बाद मिले बूढ़े की तरह नज़र आता है। मानव-देह भी कालातीत काल के आधार पर ही अपना रूप बदलती है। यदि आप जीवन को आनन्दपूर्वक बिता रहे हैं तो आप कभी भी वृद्ध नहीं होंगे। इन सब सत्यों को जानने के लिए और भगवान की लीलाओं की विधाओं को आत्मसात्

करने के लिए सद्‌गुरु के चरणों में बैठकर विचार करिए। आपका देह धारण करने का लक्ष्य उसी की कृपा से पूरा होगा।

सद्‌गुरु की कृपा में हमारा अहंकार ही अवरोध है और उसके दरबार में कपट महा अपराध है। राधा, कृष्ण की आराधिका है, वह योगमाया है। माया जो ईश्वरीय मानस का प्रगटीकरण है, हमें ईश्वर से परे होने का भ्रम हुआ है, यह भ्रम भी माया में हुआ है और माया ही हमें ईश्वर से मिलाती है। राधा योगमाया है, जो ईश्वर के साथ योग कराती है। भगवान श्रीकृष्ण, श्रीराधे और श्रीलक्ष्मी दोनों के स्वामी हैं। विष्णु मात्र लक्ष्मीपति हैं और योगेश्वर कृष्ण महालक्ष्मी अर्थात् श्री राधे और श्रीलक्ष्मी (रूक्मणी जी) दोनों के स्वामी हैं। योगेश्वर श्रीकृष्ण वस्तुतः शंकर भगवान के अवतार हैं, क्योंकि शंकर ही महालक्ष्मी के स्वामी हैं। कृष्ण-चरित्र तो विचारणीय ही है, किसी भी अवतार का कोई भी मानव अनुसरण कर ही नहीं सकता, लेकिन उसकी लीलाओं पर सद्‌गुरु-कृपा से विचार करने पर आपके जीवन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है, पुनीत हो जाता हैः–

‘खुद को खुदा कहूँ या खुदा को खुदा कहूँ
दोनों की जात एक है, किसको खुदा कहूँ?
खुद को खुदा कहो, खुदा को भी खुदा कहो
आलम की जात एक है, सबको खुदा कहो।’

‘सियाराममय सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी।’

‘बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय’

(5 सितम्बर, 2004)

परिस्थिति

हम जब सत्संग में एकत्रित होते हैं तो वहाँ वक्ता और श्रोता में कोई अन्तर नहीं होता। इसीलिए श्रीगुरुनानक देव जी महाराज ने **'साध-संगत'** को बहुत महात्म्य दिया। सुनने वाला, बोलने वाला और प्रबन्ध करने वाला एक ही होता है, वस्तुतः यह **एक से अनेक** का खेल है और **ईश्वर ही इस सृष्टि में एक से अनेक होकर खेलता है**। सत्संग एक **महारास** है—रास में कभी हर सखी के साथ एक-एक कृष्ण, कभी असंख्य सखियों के साथ एक कृष्ण तथा कभी एक कृष्ण दो-दो सखियों के साथ रहता है। उसी प्रकार मैं वक्ता के रूप में जो बोलूँगा उसका आप सब विभिन्न अर्थ लगाएँगे, यह है हर सखी के साथ एक-एक कृष्ण, और कुछ बातों का आप सब एक ही अर्थ लगाएँगे, यह है असंख्य सखियों के साथ एक कृष्ण।

हमारी सबकी परिस्थितियाँ अलग-अलग होती हैं, एक दिन सुबह से लेकर रात तक, विभिन्न रूप व आयाम लेता है। हर रात को हमें अलग-अलग स्वप्न आते हैं। आज का दिन एक होते हुए भी सबके लिए अनेकरूपता लिए रहता है, क्योंकि सबके साथ एक दिन में कुछ न कुछ अलग-अलग होता है। अतः आज की परिस्थितियाँ भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग हैं। किसी को आज कोई मिला, किसी से बिछुड़ा, किसी ने आज कुछ पाया, किसी ने खोया, किसी ने आज कुछ खो के पाया, किसी ने आज कुछ पा के खोया, कोई आज हँसा, कोई रोया, कोई बहुत बुद्धिमान बना तो कोई पागल बना, कोई प्रशंसनीय बना तो कोई बुरा बना; लेकिन आज का दिन हम सबके लिए हमारे **जीवन-काल में** सब तरह से अन्तिम दिन है, क्योंकि 19 सितम्बर, 2004 का दिन हमारे किसी के **जीवन-काल में** दुबारा नहीं आएगा। यह निश्चित है और ब्रह्म-वाक्य है। आज का दिन

किसी के **जीवन-काल का** अन्तिम दिन भी हो सकता है। हो सकता है किसी के लिए कल का सूरज न ही निकले, वैसे हम सबके चिरंजीवी होने की कामना करते हैं। अतः आज की परिस्थितियाँ हमारी सबकी अलग-अलग हैं।

यह 'परिस्थिति' क्या है? वेदान्तिक दर्शन के अनुसार इस समय हम बाह्य जगत में जो कुछ भी देख रहे हैं, वह हम स्वयं को ही देख रहे हैं। **'जो ब्रह्माण्डे सो पिण्डे'** Our innerself is being absolutely and correctly projected out. अर्थात् बाहरी जगत हमारे भीतरी जगत का बाह्य प्रकटीकरण है और यही है **'परिस्थिति'**। जो नक्शा हमारे भीतरी जगत में अथवा मानस में बनकर पास हो चुका है, वह आज की परिस्थिति बनकर हमारे सामने खड़ा हो जाता है। कुछ परिस्थितियाँ आकाश से उतरती सी लगती हैं, जैसे भीषण वर्षा होना, तीव्र गर्मी पड़ना, भूचाल आना, आँधी-तूफान आना, ठण्ड पड़ना आदि। इसी प्रकार हमारे जगत में कभी शोर मचता है, कभी शान्ति होती है, कभी दंगे हो जाते हैं, कभी सत्संग होता है; लेकिन इन सबका पहले नक्शा पास होता है।

कुछ भी कर्म करके जो भी हम प्राप्त करते हैं, वहाँ एक बहुत बड़ी भूल कर बैठते हैं कि उस प्राप्ति को हम बाहर से प्राप्त हुआ मान बैठते हैं। जबकि जो हमको प्राप्त होना है या जो भी हमें खोना है अथवा जो भी दैनन्दिन जीवन में हमारे सम्मुख प्रकट होता है, वह बाहर से प्रकट नहीं होता। उसका पहले भीतर में डिज़ाइन बनता है, नक्शा बनता है यह उसकी सहज प्रक्रिया है। जो भी परिस्थिति हमारे सम्मुख प्रकट होती है न तो संयोगवश होती है, न अकस्मात् होती है और न स्वतः होती है। एक मानस में पहले उसका नक्शा बनता है और तत्सम्बन्धी दैवीय संस्थानों द्वारा अनुमोदित और हस्ताक्षरित होता है और फिर उचिततम समय पर बाहर प्रकट होता है। इतने बड़े शहर में से आप कुछ लोग ही सिमटकर इस सत्संग भवन में क्यों बैठें हैं? क्योंकि आपका नक्शा पास हो चुका है। आपके मानस रूपी कोरे कागज़ पर पहले यह परिस्थिति बनी होगी, कभी आपमें यह कल्पना उठी

होगी, इसीलिए आपके जगत में प्रकट हुई। कुछ लोगों के समूह के साथ उचिततम समय पर आप इस भवन में सत्संग के लिए प्रविष्ट हुए और उचिततम समय पर आप ही एक स्वरूप में वक्ता बनकर अपने सामने प्रकट हुए और श्रोता बनकर बैठे। **यदि वक्ता श्रोता एक न हों तो हम सब एक ही आनन्द में कैसे डूबे होते? ब्रह्म और जीव एक ही है, इसका इससे बड़ा प्रमाण कोई नहीं हो सकता कि जो सुन रहा है, वही बोल रहा है। इसलिए जिसे बोलने में आनन्द आ रहा है, उसे सुनने में भी आनन्द आ रहा है।**

हमारे मानस में उठा हर भाव और हर कल्पना बाहर प्रकट नहीं होती, हमारा हर ख्याल बाहर Project नहीं होता। उसको उचित प्राधिकरण के हस्ताक्षर भी चाहिए, उस पर सद् की मोहर लगनी आवश्यक है। दैवीय संस्थान निराकार मानस में बने डिज़ाइन का अनुमोदन कर हस्ताक्षर करते हैं और उसके बाद वह परिस्थिति बनकर आपके बाह्य जगत में प्रकट हो जाती है। व्यावहारिक जगत में किसी बिल्डिंग के बनाने से पहले भूमि लेकर आर्किटैक्ट द्वारा कोरे कागज़ पर नक्शा बनवाया जाता है। उचित अधिकारियों द्वारा पास करवाया जाता है फिर अर्थ का प्रबन्धन, ठेकेदार, मज़दूरों का प्रबन्ध आदि-आदि लम्बी योजनाएं बनानी पड़ती हैं और फिर उन सबकी सहायता से कुछ समय में बिल्डिंग तैयार हो जाती है। इस प्रकार एक बिल्डिंग के तैयार होने और एक परिस्थिति के बाह्य जगत में प्रकट होने में बहुत अन्तर है। परिस्थिति आपके मानस में बनती है और दैवीय संस्थानों के अनुमोदन के बाद तुरन्त आपके जगत में प्रकट हो जाती है। उसके लिए इतनी लम्बी प्रक्रिया नहीं है। अतः ईश्वरीय कृत्यों और मानवीय कृत्यों में बहुत अन्तर है। जो कृत्य हम करते हैं या जो होते हैं, उन सबका पहले हमारे विशुद्ध मानस में नक्शा बनता है, फिर वह पास होता है। **उसे या तो मानवीय मन पास करता है या ईश्वरीय मन पास करता है। वह या तो ईश्वर-विमुखता में हमारे अस्थिर, अशक्त और अशान्त मानवीय मन द्वारा अनुमोदित होता है या वह स्थिर, शान्त व सशक्त ईश्वरीय मन द्वारा पारित होता है।**

मानवीय-मन द्वारा **मंद संकल्प** और **दृढ़ संकल्प** दोनों में से किसी के द्वारा भी जब कृत्य होते हैं, तो दोनों के उत्पाद का भोग हम कर ही नहीं सकते। **मंद संकल्प** द्वारा पास हुए नक्शे का काम भी आधा-अधूरा, अव्यवस्थित, तनावित और विश्रंखलित सा ही होता है, काम हो न हो, कितना समय लग जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। सब तरह से अड़चने आती हैं और कई लोग बाधा बनकर खड़े हो जाते हैं। दोष हम बाह्य परिस्थिति और लोगों को देते हैं, जबकि इन सबका मूल कारण मानवीय मन का मंद संकल्प होता है। दूसरा है, **दृढ़ संकल्प**—कुछ लोगों की इच्छा-शक्ति बहुत दृढ़ होती है, मन उनका भी मानवीय ही होता है क्योंकि वह ईश्वर-विमुख ही होते हैं, लेकिन उनका संकल्प बहुत दृढ़ होता है कि मैं ऐसा करके छोड़ूँगा। वे किसी विघ्न-बाधा की परवाह नहीं करते और उनका काम हो जाता है लेकिन उस कृत्य से हुई प्राप्ति का भोग, दैवीय अधिनियमानुसार वह कर ही नहीं सकते।

मानवीय-मन क्योंकि अस्थिर, अशान्त और अशक्त है तो उसमें नक्शा भी मानस के अनुरूप ऊतपटांग सा ही बनता है, मानवीय-मन की अस्थिरता उस नक्शे पर भी झलकती है कि मैंने क्या सोचा था और यह क्या सामने आ गया! जो सोचा था वह इसलिए सामने नहीं आया क्योंकि नक्शा हिलते हुए मन में बना है। दैवीय संस्थानों द्वारा सद् की मोहर लगनी कहीं और थी, लग कहीं और गई। आपके आगे जो परिस्थिति आती है, उसके बारे में आपको पूर्ण ज्ञान होना चाहिए कि परिस्थिति आपकी इच्छा के विरुद्ध क्यों हुई? **क्योंकि आपकी परिस्थिति अस्थिर, अशान्त व अशक्त मन में बनी, लेकिन उस पर हस्ताक्षर शान्त, स्थिर और सशक्त ईश्वर के हुए।** ईश्वर ने तो कुछ न कुछ जो भी आप खेल खेलना चाहें, आपको खिलाना ही है। वही नोट पाँच रुपये का, वही पाँच सौ का और वही हज़ार का, कागज़ तो सबका एक ही होता है और एक चूर्ण वाले नोट होते हैं, जो केवल खिलौने होते हैं। अतः आपका जो संकल्प हुआ है वह क्या चूर्ण वाला नोट है, **मंद संकल्प है, दृढ़ संकल्प है या सद् संकल्प है,** जिस पर दैवीय संस्थानों

के हस्ताक्षर हैं। मैं आपको परिस्थिति के **मूल, मध्य और अन्त** तीनों से परिचित करा रहा हूँ।

आपकी जो भी परिस्थिति है, पहले वह आपके निराकार मन में बन चुकी है और बनकर ही वह आपके सम्मुख प्रकट हुई है, चाहे वह मंद संकल्प से हो, दृढ़ संकल्प से हो और चाहे वह सद्संकल्प से हो। जो ईश्वरीय कृत्य हैं, उनके लिए संकल्प उठता है और सम्मुख प्रकट हो जाता है। किसी संत ने श्राप दिया या आशीर्वाद दिया—कि जा यह हो जाए! तो वह हो जाएगा। उसमें कृत्यों की आवश्यकता नहीं है। **यदि आप चाहते हैं कि आपके मन में उठे शुभ भाव आपके सम्मुख प्रकट हो जाएँ, उसके लिए आपको सद्संकल्पित होना पड़ेगा। कोरे कागज़ रूपी मानस पर बने नक्शे पर दैवीय संस्थानों की मोहर लगवानी पड़ेगी और आपका वह मन स्थिर, शान्त और सशक्त होना चाहिए।** लोग कहते हैं कि ध्यान में क्यों बैठना है, जप, तप, यज्ञ व हवन से क्या होगा? **अरे! इन पुरुषार्थ कर्मों से आपका अस्थिर, अशान्त व अशक्त मन स्थिर, शान्त व सशक्त ईश्वरीय मन बन जाएगा।** आप जो छोटे-छोटे कृत्यों के लिए धक्के खा रहे हैं, कभी कोई अधिकारी नहीं मिला, कभी कुछ हो गया, कभी कुछ हो गया, जो काम पाँच दिन का है उसके होने में पाँच वर्ष लग जाते हैं, क्यों? क्योंकि वह परिस्थिति अशान्त, अस्थिर व अशक्त मन रूपी कोरे मानस पर बनी है।

यज्ञ, हवन आदि करते हुए अग्नि के सम्मुख आप जो भी संकल्प करते हैं, वे तुरन्त बाह्य जगत में प्रगट हो जाते हैं। ईश्वर और ब्रह्म-ज्ञान की बातें छोड़िए, पहले अपने दैनन्दिन जीवन को गुणात्मक बनाइए। आपको ईश्वर ने आनन्द लेने के लिए पृथ्वी पर उतारा है। उसने आपको जीवन रोने-धोने व धक्के खाने के लिए नहीं दिया है। ऐसा हो ही नहीं सकता, क्योंकि **ईश्वर सच्चिदानंद है, सद् है, श्री है, अकाल है, ठोस-घन-शिला *'न कित आएबो, न कित जाएबो'* परम सौन्दर्यवान, परम सशक्त, परम ऐश्वर्यवान, परम ज्ञान-स्वरूप, परम ख्यातिवान और परम त्यागवान, ईश्वरीय मानस कालातीत है, लिंगातीत है, सम्बन्धातीत है, धर्मातीत है, कर्मातीत व**

मायातीत है। इसलिए जब हम अपने अस्थिर, अशान्त व अशक्त मन को ईश्वरीय-मानस में समाहित कर देते हैं, तो उस क्षण में किसी संकल्पना अथवा विचार पर यदि सद् की मोहर लगेगी, वह परिस्थिति बनकर हमारे सम्मुख प्रकट हो जाएगी। **वह एक सूक्ष्म सा पल होता है। उस समय आए भाव, विचार या कल्पना के लिए आपको कोई योजनाएँ बनाने या कृत्य करने की आवश्यकता नहीं होती।** बिल्डिंग बनाई किसी और ने होगी, आपको रहने के लिए मुफ्त में मिल जाएगी, उसका भोग आप करेंगे। धन कमाया किसी और ने होगा, आपको भोग मिल जाएगा, क्योंकि आपके निराकार मानस में सद्-संकल्प की मोहर लग चुकी है।

आपको स्पष्ट होना चाहिए कि परिस्थिति क्या है? प्रत्येक परिस्थिति का नक्शा पहले आपके मन रूपी कोरे कागज़ पर बन चुका होता है, लेकिन यह भी जान लीजिए कि प्रत्येक बना हुआ नक्शा परिस्थिति बनकर प्रकट नहीं होता। मन में अनेक भाव, विचार व संकल्प विकल्प चलते रहते हैं, जिन पर सद् की मोहर लग गई, वे ही परिस्थिति बनकर बाह्य जगत में प्रकट होते हैं, चाहे वे मन्द संकल्प हों, चाहे दृढ़ संकल्प हों और चाहे सद्-संकल्प हों, क्योंकि ***'जो ब्रह्माण्डे, सो पिण्डे'*** जो आप देख रहे हैं, वह आप स्वयं को ही देख रहे हैं। स्वयं को ही क्यों देख रहे हैं, क्योंकि आपके मानस में पहले वह नक्शा पास हुआ। यदि मन्द संकल्प था तो आर्थिक योजनाओं में तथा अन्य प्रबन्ध करने में उस मन्द संकल्प के अनुसार समय लगा। यदि वह सद्संकल्प से हुआ है तो वह दिव्य ही होगा और उसकी पूर्ति में किसी भी कृत्य की आवश्यकता नहीं होगी। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण और सटीक उदाहरण हमारी मानव-देह है। यदि आपने अपनी देह बनाई होती तो नाक, आँख, मुहँ आदि बनाने में कई वर्ष लग जाते, लेकिन प्रभु ने नौ महीने सात दिन में मानव-काया का निर्माण किया और आपके लिए वह प्रकट हुई, पूर्ण स्वचलित और वातानुकूलित।

कई उच्च्च अधिकारियों ने अनुभव किया होगा कि उनके पूर्ववर्ती अधिकारियों ने दफ्तर की साज़-सज्जा के लिए काम किया होता है लेकिन

जैसे ही वह बनकर तैयार हुआ, उनका तो तबादला हो गया और दूसरे अधिकारी को बना-बनाया मिल गया। आप अपने दैनन्दिन जीवन के विभिन्न पहलुओं पर गौर करेंगे तो पाएँगे कि कुछ लोग मेहनत करते और काम करते रहते हैं, पर उनको उसका भोग नहीं होता। जो भोग करता है, उसने कुछ भी नहीं किया होता। एक का मन्द संकल्प था और एक का सद् संकल्प था। इसलिए कृपा करके अपनी परिस्थितियों पर रोने से पहले यह देखिए कि परिस्थितियों का मूल स्त्रोत क्या है? यदि मन्द संकल्प से मानस में नक्शा बना है तो वह कार्य कभी नहीं होगा। यदि होगा भी तो उससे हुई प्राप्ति का भोग आप नहीं कर सकते, कोई और करेगा।

जप, तप, यज्ञ, हवन संतों का आशीर्वाद इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यदि उनके सद् संकल्प की मोहर लग गई तो वह कार्य अवश्य होगा। **ईश्वर अपने कानूनों में अदला-बदली कर सकता है, लेकिन संत के मुख से जो निकले, उसको उसे प्रकट करना ही होता है।** हवन-अग्नि, निराकार ईश्वर की प्रतीक है, उसके सम्मुख हमारे विशुद्ध मानस में सद् की मोहर लग जाती है। मानस में चाहे किसी भी कृत्य का भाव उठा हो, वह होकर ही रहता है तथा वह हमारे लिए हितकारी व आनन्दमय होता है। लाभकारी हो न हो, हितकारी और आनन्दमय अवश्य ही होगा। उसके होने में आपको कुछ नहीं करना पड़ेगा, वस्तु आपके सम्मुख स्वयं प्रकट हो जाएगी; **क्योंकि उस पर ईश्वर की मोहर लग जाती है।** बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी विजय-अभियान से पूर्व यज्ञ, हवन आदि करते थे। अतः कृत्यों और किसी भी परिस्थिति के बाह्य जगत में प्रकटीकरण से पूर्व मानस में मन्द-संकल्प से, दृढ़-संकल्प से या सद्-संकल्प से नक्शा पास और अनुमोदित होता है। जब सद्-संकल्प से मानस में रूपरेखा बनती है तो प्रभु उसके सर्वस्व कर्त्ता-धर्त्ता होते हैं। इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक और इच्छाफल स्वयं ईश्वर ही बनते हैं। वह काम होकर रहता है, ऐसा नहीं है कि वह कार्य तुरन्त ही हो जाए, पर वह उचिततम समय पर हो जाता है।

हम सारा जीवन मन्द-संकल्पों में व्यर्थ कर देते हैं। कुछ कार्य करने से

पूर्व अनेक संकल्प-विकल्प उठते रहते हैं, हम घबराते और भयभीत होते हुए आधे-अधूरे हृदय से कार्य आरम्भ कर देते हैं और ज़रा सी अड़चन आने पर बीच में ही छोड़ देते हैं। फिर दूसरी दिशा में दूसरा काम करना शुरू कर देते हैं और स्वयं को बहुत ही बुद्धिमान समझने लगते हैं कि हम सबके परामर्श से कार्य करते हैं। यह नहीं पता कि यह महामूर्खता है। ऐसे तो कोई भी काम कभी होता ही नहीं। यदि सद् संकल्प हो चुका है तो वह उचिततम समय पर स्वयं ही, स्वतः ही होगा। आपको कृत्य करने की, योजनाएँ बनाने की आवश्यकता ही नहीं होगी। लेकिन हम अपने बने-बनाए जाल में इतना बंधे हैं कि हमारा जीवन नारकीय बना रहता है। कुछ भी कृत्य हम स्वयं के सद् संकल्प से नहीं करते। लोगों से घबराते हुए, समाज, परिवार व सम्बन्धियों से भयभीत ही रहते हैं। हम बहुत व्यस्त हैं और उस व्यस्तता में जो भी प्राप्ति होती है, उसका उपभोग हम कर ही नहीं पाते। सद्संकल्प करना नहीं पड़ता। **एक विशेष समय पर ईश्वर ही प्रेरित करता है कि अमुक कार्य कर लो और उस कार्य से सम्बन्धित सभी लोगों को भी तदनुसार प्रेरित कर देता है तथा आपके लिए वह काम हुआ-हुआ सा होता है, आपको मात्र हाथ ही लगाना होता है।** स्वयं को हम बिना बात व्यर्थ में ही बहुत महात्म्य दिए रहते हैं, जबकि हमारी हैसियत ही कुछ नहीं है। सद्संकल्प में ईश्वरीय-प्रेरणा होती है, लेकिन हम स्वयं अपने कार्यक्रम बनाकर कार्य करते रहते हैं, इसीलिए चाहे वे मन्द-संकल्प से होते हैं अथवा दृढ़-संकल्प से, दोनों के उत्पाद का भोग हम नहीं कर सकते। वह कार्य आपके लिए लाभकारी हो सकता है, पर हितकारी नहीं होगा। आपको धन मिल जाएगा लेकिन आपका सुख, शान्ति, सन्तोष समाप्त हो जाएगा और आध्यात्मिक जगत में लाभ नहीं, हित देखा जाता है। लाभ भौतिक है, देह से सम्बन्धित है और हित हमारे आनन्दस्वरूप को अनाच्छादित करता है और यही मानव जीवन का वास्तविक लक्ष्य है।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(19 सितम्बर, 2004)

संस्कार और वातावरण

कुछ बच्चे पूर्व जन्म से ही ऐसे संस्कार लेकर पृथ्वी पर अवतरित होते हैं कि उन्हें आस-पास के वातावरण से कोई अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि किसी भी वातावरण से बच्चे अपने विशिष्ट संस्कारों के अनुसार गुण व दोष ले लेते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अपने ही घरों में देखते हैं कि एक ही घर के बच्चे अलग-अलग प्रतिभा, प्रकृति व रुचियों के निकलते हैं। एक ही खाद व मिट्टी में बोए गए दो किस्म के आम अलग-अलग होते हैं, क्योंकि बीज अलग-अलग हैं। इसी प्रकार एक ही घर के प्रत्येक बच्चे के पैदा होने के समय माता-पिता की आयु, परिस्थिति, विचारधाराएँ, धारणाएँ, मान्यताएँ, आर्थिक व सामाजिक स्थिति पृथक-पृथक होती हैं, **इसीलिए हर बच्चे का माता-पिता अलग-अलग होता है,** क्योंकि पैदा होने का समय, तरीका, परिस्थितियाँ, मानसिकता, भाव व विचार सब विभिन्न होते हैं, अर्थात् बीज अलग-अलग होते है; दैवीय शक्तियाँ ही इसे नियन्त्रित करती हैं और हर बीज अपना वातावरण स्वयं ले लेता है। **इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में माता-पिता का अपना कोई योगदान नहीं है। ईश्वर द्वारा ही उन विशिष्ट माता-पिता की देह उस बच्चे के जन्म के लिए उपयोग की जाती है।** वह बच्चा अपने सम्पूर्ण जीवन का कार्यक्रम लेकर आया है और उसी के अनुसार उसका जीवन चलेगा, पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, कैरियर, विवाह-शादी आदि सब कुछ होगा। प्रश्न उठता है कि फिर माता-पिता की हैसियत से हमारी क्या भूमिका है, हम बच्चों के लिए क्या करें?

यदि हम अपने बच्चे का हित चाहते हैं, बच्चों के अभिभावक अथवा

माता-पिता की हैसियत से हमें अपना अनावश्यक हस्तक्षेप बिल्कुल हटाना होगा। मात्र प्रभु से प्रार्थना कर सकते हैं, कि प्रभु अगर मैं इनके लिए कुछ कर सकता हूँ, तो कृपया मुझसे आप इनका हित ही करवाएँ। वस्तुतः आप अपने बच्चों के लिए जो भी कर रहे हैं, वह आपसे करवाया जा रहा है। इसीलिए एक बच्चे के लिए आप किसी विशेष विषय में चिन्तित होते हैं, दूसरे बच्चे के लिए आप किसी दूसरे विषय में अधिक जोर देते हैं। **कहीं आपका अहं व बच्चे पर ममत्व उनके स्वाभाविक, प्राकृतिक व नैसर्गिक दैवीय विकास में बाधक तो नहीं बन रहा, इसका ध्यान आपको अवश्य रखना है।** कहीं आप इस भ्रम में तो नहीं हैं कि आपका एक बच्चा असाधारण और बहुत योग्य है, जो आपकी उस बच्चे के लिए परवाह, ध्यान और विशेष देखभाल व अनुशासन के कारण है और दूसरा नालायक सा और साधारण इसलिए है कि सामाजिक वातावरण ही प्रदूषित है। यदि आप ऐसा समझ रहे हैं तो दैवीय दृष्टि से आप ही अपराधी हैं। आपको नहीं ज्ञात कि शायद वह बच्चा आपको कुछ सिखाने के लिए आया हो। आपने एक का विकास तो कर दिया, दूसरा नालायक कदाचित आपके अहं के कारण, आपकी ही वजह से बना हो! अतः अभिभावक की हैसियत से हम क्या करें?

यदि हम ईश्वर की इच्छा से उन बच्चों के साथ हैं, तो हमारे लिए आवश्यक है कि पहले हम अपनी भूमिका पता कर लें। जो उचित है वही हो रहा है और आगे भी वही होगा, तो मेरी क्या ज़रूरत है? यदि हम अभिभावक होने के नाते उनके साथ हैं, तो वहाँ दो बातों का ध्यान रखें—पहला, कि कहीं मेरा अहं इस बच्चे के स्वाभाविक विकास में बाधक तो नहीं है? दूसरे, कि क्या मैं उसका कुछ हित कर सकता हूँ? बच्चों को जो कुछ प्राप्ति होती है, वह स्वतः होती है। हमें होश सम्भालते जो सबसे बड़ी प्राप्ति हुई, वह थी हमारी अपनी देह और हमारे बच्चों की देह भी 9 महीने में माँ के गर्भ में पूर्णतः वातानुकूलित व स्वचलित सम्पूर्ण कार्यप्रणालियों के साथ स्वतः बनी। जब भी हम जाग्रत अवस्था में होश में होते हैं तो हमारी देह हमारे साथ होती ही है। यह भी बड़ा रहस्य है—हमारी देह उस समय हमारे

पास होती है, जब हम अपने नाम-रूप की होश में होते हैं। आपकी पत्नी, भाई, माँ, बाप, मित्र, शत्रु अन्य कोई साथ हो न हो, पर आपकी देह अवश्य होती है। लेकिन जब आप सुषुप्ति, मूर्च्छा, मृत्यु, विस्मृति, निद्रा व तुरिया-समाधि में होते हैं, तो आपकी देह आपके साथ होते हुए भी नहीं होती। अतः यदि मैं अपने नाम-रूप की चेतना में नहीं हूँ तो उस समय मेरे लिए देह का होना या न होना कोई अर्थ नहीं रखता। माता-पिता होने के नाते आपको यह जानना परम आवश्यक है कि आपको प्रभु ने माता-पिता के रूप में उन बच्चों के साथ क्यों रखा है?

आप अपने नाम-रूप की चेतना में अपने उस बच्चे के माता-पिता होने की चेतना में भी हैं, आपका एक सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक स्तर है, आपकी डिग्रियाँ, पद इत्यादि हैं, उन सबका प्रयोग आपने कैसे करना है? क्या मैं माता-पिता की हैसियत से अपनी सम्पूर्ण पृष्ठभूमि को उस बच्चे के लाभ के लिए प्रयुक्त कर रहा हूँ या उस बच्चे के हित के लिए प्रयोग कर रहा हूँ। क्योंकि लाभ अलग है और हित अलग है। **हित का क्षेत्र देह की सीमाओं से परे है, जो आध्यात्मिक है और लाभ भौतिक है। पाश्चात्य समाज में हित की धारणा ही नहीं है लेकिन हमारे सनातन धर्म का मूल, मध्य व अन्त, यानि कि सम्पूर्ण अवधारणा हित के लिए है।** सौभाग्य से ईश्वर इच्छा में, मैं कुछ बच्चों का पिता हूँ। उनका पालन-पोषण और विकास ईश्वर के द्वारा ही होगा। यदि मैं मोहवश उन्हें दिशा-निर्देश देता रहूँ कि यह करो, यह न करो, जोकि प्रायः हम करते हैं तो सम्भवतः यह **उसके द्वारा** की जाने वाली देखभाल में मेरी दखलअन्दाज़ी ही होगी। उदाहरणतः जो अपने बच्चों को Carrier Oriented बनाते हैं कि बेटा सी. ए. हो जाएगा तो मेरा आफिस सम्भालेगा, डॉक्टर बन जाएगा तो मेरे नर्सिंग-होम की मेरे बाद देखभाल करेगा। यह वृत्ति, स्वाभाविक ईश्वरीय विकास में बहुत बड़ी बाधा है। मैं बच्चों को इस कैरियर में इसलिए डाल रहा हूँ कि मैं ऐसा चाहता हूँ, तो समझिए आप उसका बहुत बड़ा अहित कर रहे हैं।

अगर ईश्वर आपको एक अभिभावक की हैसियत से बच्चों के होते हुए

जिन्दा रखता है तो उनके हित के लिए देखिए कि **क्या आपके बच्चे सूर्योदय से पूर्व उठते हैं, यदि आप यह नहीं कर पाते हैं तो आप उसके लिए उचित अभिभावक नहीं हैं। क्या आपका बच्चा सात्विक भोजन करता है, समय से उचित मात्रा में खाता-पीता है, क्या वह कुछ समय ईश्वर भजन, कीर्तन व पूजन के लिए निकालता है, क्या आप उसे सत्संग में ले जाते हैं या उसे अपने ही घर में ब्रह्म-चिन्तन का वातावरण देते हैं? क्या आप उसे जो खिला, पिला व पहना रहे हैं, वह शुद्ध कमाई से कर रहे हैं या धोखे-धड़ी व लूट-पाट की कमाई से कर रहे हैं।** यदि आप किसी भी प्रकार के धन से केवल जीवन-स्तर ऊँचा करते हुए अपने बच्चों को बड़े-बड़े स्कूलों में पढ़ा-लिखा रहे हैं तो आप उनका हित नहीं कर रहे हैं। आप अभिभावक का कर्त्तव्य नहीं निभा रहे हैं। आपको यह देखना है कि मेरे द्वारा अर्जित धन का स्त्रोत क्या है? मेरा दैनिक जीवन कैसा है, बच्चा मुझ में क्या देख रहा है? घर में यदि आप शराब पी रहे हैं, तो आप अपना अहित तो कर ही रहे हैं, बच्चों का भी कर रहे हैं। यह दूसरी बात है कि बच्चा बिलकुल पीने वाला न हो, पर आप तो उसका अहित करने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे, यदि उसमें कोई सूक्ष्म संस्कार पड़ा हुआ है तो वह विकसित होगा ही। यह मतलब नहीं है कि आप बच्चे को यदि सद् की ओर प्रेरित कर रहे हैं तो उसे साधु-सन्यासी बना रहे हैं, तपस्वी बना रहे हैं, लेकिन हो सकता है कि उसमें योग का कोई सूक्ष्म संस्कार हो, जो आपके जरा से प्रोत्साहन से विकसित हो जाए। आप यदि बच्चे के सम्मुख सिगरेट पी रहे हैं, नशा कर रहे हैं, तो हो सकता है, वह आपका बच्चा जीवन-पर्यन्त इन वस्तुओं को हाथ भी न लगाए, लेकिन आप उसका अहित करने में कोई कोर-कसर शेष नहीं रख रहे हैं।

वैसे तो परम पिता व जगजननी ईश्वर ही हैं, यदि आप माता-पिता के रूप में बच्चों के सम्मुख हैं, तो आपको अपने हर आचरण पर निगाह रखनी होगी। क्या आप सोचते हैं कि अपने बच्चों को बहुत बड़े व उत्तम स्कूलों में शिक्षा आप दिला रहे हैं, भूल जाइए! वह शिक्षा ले रहा है। यदि आप उसे

साधारण स्कूल में भी डालते तो भी वह शिक्षित हो जाता। बड़े-बड़े आई. ए. एस. आफिसर, बड़े-बड़े महारथी, महायोगी, महातपस्वी, महामति, देशप्रेमी, महानृप, सम्राट हुए, वे किसी पब्लिक स्कूल में नहीं पढ़े। आप अपनी धारणा बदल दीजिए कि आप अपने बच्चे को बड़े स्कूल में पढ़ा रहे हैं। अरे! वह अपनी शिक्षा स्वतः ले रहा है, आप निमित्त-मात्र हैं। लेकिन यदि यह निमित्तता का भाव नहीं होगा तो आप यह सोचेंगे कि मैं अपने बच्चे को बड़े स्कूल में पढ़ा रहा हूँ, इसे अपनी इच्छानुसार यह बनाऊँगा तो दो सौ प्रतिशत आपका बच्चा नालायक ही होगा, क्योंकि दिव्यता में आपकी दखलअन्दाज़ी हो गई।

आपको मात्र ईश्वर का ध्यान करते हुए यह धारणा करनी है कि मैं इस संसार में न भी हूँ तो भी इस बच्चे को, हे प्रभु! जो भी बनाना है, आप ही बनाओगे। देवकी जेल में कृष्ण का पालन-पोषण नहीं कर सकती थी, तो कृष्ण को यशोदा मिल गई। कृष्ण को तो माँ मिल गई न! कृष्ण ने गीता में क्या कहा, इसे भूलकर कृष्ण की लीलाओं के रहस्य, कृष्ण की ही कृपा से जानने का प्रयत्न करें। आपने बच्चा पैदा नहीं किया, बल्कि उस बच्चे को संसार में लाने के लिए आपका प्रयोग किया गया। जिसने आपको use किया है, वह बच्चे की देखभाल स्वयं करेगा, उसने उसे खुद बनाया है। जहाँ यह भाव आया कि बच्चे के लिए मैं यह कर रहा हूं, तो आप दिव्यता में बाधा डाल रहे हैं और परिणामतः आप भुगतेंगे तथा आपका बच्चा भी भुगतेगा।

अतः आपने केवल वही करना है जिसमें बच्चे का हित हो और वह आप तब करेंगे जब आपको मालूम होगा कि **हित क्या है? उसके लिए आपको अपने प्रत्येक आचरण पर ध्यान देना होगा—मैं** उसके लिए कैसे धन की व्यवस्था कर रहा हूँ, मेरा अपना रूटीन क्या है, क्या मैं पशुओं की तरह सोया तो नहीं रहता हूँ, मैं खुद क्या खा-पी रहा हूँ? क्या मैं स्वयं ध्यान, ईश्वर चिन्तन, भजन, पूजन में बैठता हूँ? अगर आप अपने द्वारा बच्चों का कुछ हित चाहते हैं तो आपको पहले अपना हित करना पड़ेगा। अक्सर हम

अपने बच्चों का हित नहीं, लाभ देखते हैं। आजकल सारी शिक्षा, कैरियर के आधार पर हो रही है। वास्तव में बच्चों को पास होकर, बड़ा बनकर उच्च अधिकारी बनने के लिए नहीं पढ़ना, बल्कि ज्ञानार्जन के लिए पढ़ना चाहिए। डिग्री लेने के लिए व पद या व्यवसाय के लिए नहीं बल्कि पढ़ने का आनन्द लेने के लिए आनन्द में पढ़ना है। फिर प्रभु की जो भी इच्छा होगी वे बना देंगे। **प्रभु तो सबके हितैषी हैं, पर हम माता-पिता के रूप में बच्चों का हित तब करेंगे जब हम में 'हित' की कोई धारणा होगी, हम तो स्वयं रेस के घोड़े और पशु बने हुए हैं और बच्चों को भी वही बना रहे हैं।** बच्चों का हित करने से पहले, हमें अपना हित-चिंतक होना होगा। हित व हित चिंतन क्या है? इस दृष्टि से हमारी वैदिक प्रार्थनाएँ बहुत सटीक हैः—

''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुखभाग्भवेद्।''
''भद्रं कर्णेभिः शुणुयाम देवाः''
''देहि मे सौभाग्यं, आरोग्यं, देहि मे परमं सुखं।''

इन प्रार्थनाओं में देह का सारा सुख समेट लिया गया। सब सुखी हों, सब आरोग्य हों, सब शुभ देंखे, शुभ सुने, किसी को कोई दुःख न हो। सब सुखी और आरोग्य कैसे होंगे, सौभाग्यशाली कैसे होंगे? यदि आप सूर्योदय होने के बाद देर तक सोते रहते हैं तो आरोग्य और सौभाग्य का तो प्रश्न ही नहीं उठता, दुर्भाग्य ही होगा। आपकी प्राप्तियाँ भी दुर्भाग्य, आपकी सन्तान भी दुर्भाग्य। सुख की सीमा देह तक है, आनन्द का इन प्रार्थनाओं में स्पर्श भी नहीं किया गया। देह व इन्द्रियों की सीमाएँ सुख तक हैं, आनन्द का कोष देहातीत है। जब सब सुखी होंगे तो उन्हें आनन्द की धारणा भी होगी। यदि सुख ही नहीं होगा तो आनन्द का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। जिसने सुख नहीं देखा, वह आनन्द के बारे में सोच भी नहीं सकता। मैं यदि सुखी नहीं हूँ तो ईश्वर का ध्यान कैसे करूँगा। ध्यान में बैठे टांग में दर्द हो गया और रक्तचाप उच्च होने से सिर में दर्द हो गया तो मैं ध्यान कैसे करूँगा, आनन्द की ओर कैसे प्रेरित होऊँगा। **आरोग्य**—मानसिक व शारीरिक कोई रोग न

हो इसके लिए आपकी विचार-धारा सकारात्मक व स्वस्थ होनी चाहिए। आपके सूक्ष्म-जगत में एक भी दुःखी होगा, तो आप सुखी हो ही नहीं सकते। आपके परिवार में एक भी बच्चे को कष्ट है, तो आप सुखी हो ही नहीं सकते, ईश्वर-चिन्तन कैसे करेंगे! यह वैदिक प्रार्थना कि हम शुभ देखें, अशुभ न देखें, यह भी बहुत बड़ा दर्शन है।

चार व्यक्ति एक ही कार में एक ही जगह जा रहे हैं। उनकी यात्रा के बाद उनसे यदि यह पूछा जाए कि उनकी यात्रा कैसी रही तो सबकी धारणा व अनुभूति अलग-अलग होगी। एक ने फूलों वाले सुन्दर प्राकृतिक अच्छे दृश्य ही देखे, एक की दृष्टि बाहर गई तो उसने लड़ाई-झगड़ा और दुःख के दृश्य देखे। सबका रूट एक है, ड्राइवर, कार एक ही, सब एक ही जगह से दूसरी एक ही जगह पर गए तो सबने पृथक-पृथक दृश्य क्यों देखे ? किसी ने फूल नहीं देखे तो किसी ने लड़ाई झगड़ा देखा ही नहीं, यह क्या है? यह मानसिक अन्तःकरण ही था, वही बाहर प्रकट हुआ था। एक ही जगत में आप विभिन्न जगत इसलिए देखते हैं, क्योंकि जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। जिसे खराब दृश्य दिखे उसका मानसिक जगत प्रदूषित होगा, दूसरा भीतर से उल्लसित व हर्षित होगा, इसलिए उसे सुन्दर दृश्य दिखे। वह तो छोड़िए, एक ही सन्त या महापुरुष का एक ही वाक्य विभिन्न श्रोताओं के भावानुसार विभिन्न अर्थ लिए रहता है। एक ही बात किसी को बहुत जंचती है, किसी को ठीक सी ही लगती है, किसी को अपने अनुकूल नहीं लगती।

इस प्रकार एक बच्चा स्वयं में पूरा ब्राह्माण्ड है। वह अपना वातावरण ले लेगा, चाहे कहीं से ले। आप नहीं होंगे, तब भी वह ले लेगा। आपका बच्चे को कुछ भी ज्ञान देना महत्त्वपूर्ण नहीं है, बच्चा स्वयं ही ले लेता है। जिसमें श्रद्धा नहीं है, उस बच्चे को आप क्या ज्ञान दे सकते हैं! माता-पिता तो सब बच्चों को आशीर्वाद ही देते हैं, परन्तु जिस बच्चे में श्रद्धा व पात्रता अधिक होती है, जिसकी नीयत शुद्ध होती है, वह आशीर्वाद ले जाता है। कृपा के लिए भी आपमें समर्पण का भाव होना चाहिए कि प्रभु मैं कुछ नहीं जानता। जहाँ थोड़ा भी अहं आ गया, वहाँ वह कृपा के प्रवाह में बाधक बन जाएगा।

आपके माध्यम से ईश्वरीय-कृपा बच्चों की ओर बहे, इसके लिए आपका समर्पण आवश्यक है। आपने खेत तैयार किया, अच्छा बीज व खाद डाले। अब सींचने के लिए नहर भी पास ही बह रही है। अगर नहर से खेत तक की मिट्टी नहीं हटाई तो नहर व जल होते हुए भी खेत सूख जाएगा। यह मिट्टी हमारे अहं व ego की है कि मैंने बच्चे को ऐसा बनाना है। हमारा अहं बच्चे के नैसर्गिक विकास में बाधा तो नहीं बन रहा, यह जानने के लिए सुबह उठकर देव दरबार में पहले यह धारणा कर लें कि बच्चे के विकास, ज्ञानवर्धन व हित के लिए मेरी कोई आवश्यकता नहीं है। प्रभु! तुम परम हितैषी और सबके पालक हो, और आप ही मेरे माध्यम से इन बच्चों का हित करें। तब आपकी बच्चे के लिए की गई हर क्रिया, ईश्वरीय हो जाएगी।

आपमें पढ़ाने का अहं समाप्त हो जाए, बच्चे में पढ़ने का अहं न रहे, कि **प्रभु! शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी व शिक्षाफल आप ही हैं।** आप बच्चे को कहानी भी सुनाएँगे तो वह बच्चे के लिए शिक्षाप्रद हो जाएगी। यह नहीं कि आपने सबसे अच्छा ट्यूटर रखा है, अरे! वह आध्यात्मिक भी है या नहीं। आप बच्चे को दो घण्टे पढ़ाते हैं, दो मिनट इस प्रार्थना को दे दें कि **प्रभु! आप ही शिक्षा हो, आप ही शिक्षक हो और आप ही शिक्षार्थी हो, आप ही इस शिक्षा के फल हो।** आज हमारी शिक्षा व डिग्रियाँ घातक क्यों हो रही हैं, क्योंकि हमारी वृत्तियाँ लाभ की ओर हैं। **भौतिक उपलब्धि और तुरन्त लाभ की धारणा हित की भावना को समाप्त ही कर देती है।** जहाँ ज़रा सा भौतिक लाभ ज्यादा दिखता है, आप नौकरी बदल लेते हैं। अरे! वहाँ पैसा भले ही थोड़ा अधिक मिल जाएगा, लेकिन इतने महीने के काम में पुरानी जगह आपकी जो प्रतिष्ठा बनी है, उसका क्या होगा? हित की धारणा को वह भौतिक लाभ ढक देता है। यदि आप में हित की धारणा नहीं होगी तो आप बच्चे का हित तो कर ही नहीं सकते, उसे भी आप अपने जैसा ही बनाएँगे। क्योंकि वास्तविक हित इसमें है, कि किसी भी प्रकार से आप देह से देहातीत हो जाएँ। आप देह के सुखों से आनन्द-कोष में प्रवेश पा जाएँ। जब तक आपको स्वयं देह के सुखों से सन्तुष्टि नहीं है, तब तक आप

आनन्द के बारे में सोच ही नहीं सकते और न ही अपने बच्चे को इस ओर प्रेरित कर सकते हैं।

आप स्वयं अपनी देह के स्वामी हों। देह तो आपको सुखों की ओर प्रेरित करेगी, **लेकिन जब आपको स्पष्ट हो जाएगा कि देह मात्र एक साधन है, देहातीत होने के लिए और अपने आनन्द-स्वरूप की अनुभूति के लिए तो देह आपको नहीं चलाएगी, आप देह को चलाएँगे। आपका स्वयं का जीवन तपोमय हो जाएगा और आप अपने बच्चों का भी हित कर सकेंगे।** क्योंकि, कारण-देह सच्चिदानंद है और वह सबकी एक ही है। वही आपकी वास्तविक देह है। चाहे वह अदृश्य है, लेकिन वह आपके साथ हमेशा जुड़ी है। उसकी वजह से आपका और आपके बच्चों व समस्त जगत का अस्तित्व है। कारण देह एक ही है और वही माता-पिता है, वही पुत्र, मित्र, शत्रु, सम्बन्धी सब वही है और वह आनन्द-स्वरूप है, देहातीत है, उससे आपकी देह और आपका समस्त जगत प्रकट हुआ है। अनेकता में एकता देखकर यदि आप उस 'कारण' से सम्पर्क साधे बिना अपनी बुद्धि के अहं में रहेंगे तो आप अपना व अपने बच्चों का हित कर ही नहीं सकते। **अतः माता-पिता होने की हैसियत से आपका मात्र एक ही कर्त्तव्य है कि आप स्वयं अपने सच्चिदानंद स्वरूप, अपनी कारण देह से जुड़े रहें, शेष कार्य ईश्वर स्वयं आपसे करवा लेंगे।**

बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(5 अक्टूबर, 2004)

वर्तमान-रहस्य

हमारा हर वर्तमान अतीत के शोक और भविष्य की चिन्ताओं से बोझिल रहता है। **चिन्ता भविष्य** की है और **शोक अतीत** का है। कहीं मेरी नौकरी न छूट जाए, मेरे बच्चे को कहीं कुछ न हो जाए, कहीं मैं कक्षा में फेल न हो जाऊं, विवाह के बाद मेरी पुत्री को ससुराल वाले तंग न करें आदि-आदि। अभी हुआ कुछ नहीं है लेकिन भविष्य की चिन्ता वर्तमान में है। मेरी नौकरी चली गई, मेरा मित्र मुझे छोड़कर चला गया, मुझे व्यापार में घाटा हो गया, मेरी बेटी की शादी टूट गई आदि-आदि। घटनाएं अतीत में हुईं, परन्तु उनका शोक मुझे **वर्तमान में** अभी भी है। **अतीत का शोक और भविष्य की चिन्ता दोनों वर्तमान में होते हैं, तो जो कार्यवाही करनी है, वह वर्तमान में ही करनी है। भूत और भविष्य का आधार वर्तमान ही है।** यदि पूछो कि आप कब आए, कि मुझे आए हुए एक घण्टा हो गया। यह जो हमने अतीत के एक घण्टे की गणना की वह वर्तमान के आधार पर ही की। इसी प्रकार भविष्य की गणना भी वर्तमान के आधार पर ही करते हैं, कि एक वर्ष बाद मैं बी. ए. कर लूँगा आदि-आदि।

अतीत में घटी किसी घटना का हमें शोक है, वह भी उस समय वर्तमान था और आज इस वर्तमान में जब मैं उस घटना के शोक से ग्रसित हूँ, यह वर्तमान उस समय का **'भविष्य' था।** कोई घटना पाँच वर्ष पहले घटी, तो जिस समय वह घटी उस समय वह **'वर्तमान'** था और आज पाँच वर्ष बाद जब मैं शोक कर रहा हूँ, तो यह **वर्तमान** उस समय का **'भविष्य' था।** इसी प्रकार भविष्य की आशंका मात्र से हम चिन्तित होते हैं, वह घटना

घटे, चाहे न घटे तो वह भी उस समय वर्तमान होगा और आज चिन्ता हो रही है, यह वर्तमान, उस समय का **'अतीत' होगा**। एक और उदाहरण दूँ कि मुझसे किसी ने चार दिन बाद मिलने आना है और अब मुझे चिन्ता है कि कहीं वह मना न कर दे। चार दिन बाद वाला समय, उस समय का वर्तमान होगा और आज जो मैं चिन्तित हूँ, यह वर्तमान उस चार दिन बाद वाले समय का **अतीत होगा**। अतः आज **इस वर्तमान** में जो मैं अतीत के शोक से ग्रसित हूँ, यह उस वर्तमान, (अतीत वर्तमान) का **भविष्य था** और मैं जो आज भविष्य की चिन्ता से ग्रसित हूँ, यह उस वर्तमान, (भविष्य-वर्तमान) का **अतीत होगा। अब भविष्य में वह घटना होगी या नहीं, पर इस वर्तमान में, उस घटना का मैंने एक अतीत निर्मित कर लिया। जो घटना अतीत में घटी, जिसके लिए मैं वर्तमान में शोकपूरित हूँ, उस घटना का मैंने भविष्य निर्मित कर लिया। यह मुझे वर्तमान-वर्तमान में शोक और चिन्ता के पुरस्कार के रूप में मिला।** मैंने एक भविष्य का अतीत निर्मित कर लिया, वर्तमान में बेवजह चिन्तित होकर और एक अतीत का भविष्य निर्मित कर लिया, बेवजह वर्तमान में शोक-ग्रस्त होकर। भविष्य की घटना पता नहीं होनी भी है या नहीं और अतीत की घटना घट चुकी है। अतः वर्तमान में **चिन्ता व शोक दोनों ही अकारण हैं, मिथ्या हैं और मूर्खतावश हैं।**

इस प्रकार वर्तमान के विभिन्न स्वरूप देखिए—**वर्तमान है भी, वर्तमान था भी और वर्तमान होगा भी।** वर्तमान तीनों काल में है। वह अतीत वर्तमान था, जिसका यह वर्तमान-वर्तमान, भविष्य था। वह भविष्य वर्तमान होगा, जिसका यह वर्तमान-वर्तमान, अतीत होगा अर्थात् एक वर्तमान ही अपने स्वरूप बदल रहा है। सब कुछ वर्तमान का ही खेल है। आज मैं जिसके लिए चिन्तित हूँ वह घटना कभी भविष्य में घटे या न घटे, मैंने व्यर्थ ही उसका एक अतीत निर्मित कर लिया। यदि किसी घटना का अतीत चिन्तित था, तो वह घटना चिन्तामय ही होगी, हो सकता है वह घटना हो ही ना। कभी-कभी हम कहते हैं कि मैं इस चीज़ के लिए कब से चिन्तित था, अब मेरी चिन्ता दूर हो गई। लेकिन इस घटना का एक चिन्तामय अतीत तो

निर्मित किया ही था, चाहे वह घटना हो या न हो, लेकिन फिर भी जब वह वर्तमान आएगा तो यद्यपि घटना के न होने से निश्चिन्त तो होंगे, लेकिन वह चिन्ता आपके साथ अवश्य रहेगी। आप सबको सुनाते फिरेंगे कि मैं कितने दिन से बड़ा चिन्तित था, अब मैं निश्चिन्त हूँ। **यह निश्चिन्तता, चिन्ता की सापेक्षता में है। अतः चिन्ता दूर करने की भावना व्यर्थ की चिन्ता की पुष्टि करती है।** इसलिए जिस घटना का अतीत चिन्ता-ग्रस्त था, उसका भविष्य भी चिन्ता-ग्रस्त ही होगा और जो भी आपको प्राप्ति होगी, उसका भोग आप नहीं कर पाएँगे। **आनन्द-मिश्रित कर्म का नाम उत्साह है।** यदि आप कर्म करने के दौरान आनन्दित हैं, तो आपको पाने या खोने की चिन्ता नहीं होती और उसका फल आनन्द ही होता है। अतः उसका भविष्य भी आनन्दमय होगा।

आप अपने वर्तमान में भविष्य की एक अज्ञात घटना की चिन्ता निर्मित करते हैं इससे जब आप दुःखी होते हैं तो उसमें एक चिन्तापूरित भविष्य भी खड़ा कर लेते हैं। भविष्य में चाहे उस समस्या का निवारण हो जाए, फिर भी भविष्य में वह सुख, उस चिन्ता का सापेक्षिक सुख होगा। सहज और स्वतः सुख नहीं होगा। मान लीजिए, आप भविष्य में होने वाली किसी प्राप्ति के बारे में वर्तमान में चिन्तित व सशंकित हैं, तो भविष्य में चाहे आपकी चिन्ता को निर्मूल करते हुए वह वस्तु आपको मिल भी जाए, लेकिन उस उपलब्धि के साथ अतीत में की गई चिन्ता जुड़ी रहेगी। वह वस्तु आपको चिन्तित रखेगी। **भविष्य के बारे में आज वर्तमान में की जाने वाली चिन्ता उस समय के वर्तमान में अतीत का शोक बनकर चिपकी रहेगी। अतीत के विषय में आज के वर्तमान में किया जाने वाला शोक, उस समय के वर्तमान में भविष्य की चिन्ता का रूप हो सकता है।** अतः हमारे वर्तमान का आनन्दित रहना बहुत ही आवश्यक है। इसके लिए आप वर्तमान में ईश्वर से जुड़े रहें, जो सच्चिदानंद है। यदि आप वर्तमान में किसी भी तरह ईश्वर से जुड़े हैं तो वर्तमान में न कोई शोक होगा, न चिन्ता होगी। इस वर्तमान का भविष्य भी आनन्दमय होगा और अतीत भी आनन्दमय ही हो जाएगा। आप

ईश्वर के साथ जुड़े होने के कारण निरर्थक बीती बातों का चिन्तन ही नहीं करेंगे। अतीत की भी आपको वही बातें याद आएँगी जो आनन्दमय होंगी। कई लोगों का स्वभाव ही नकारात्मक और दुःखी रहने का होता है। वे जब भी किसी से मिलते हैं तो बिमारियों, दुःखों और पीड़ाओं की ही बातें करते हैं।

आध्यात्मिक जगत में लोगों की वर्तमान अनुभूतियों से अनुमान लगाया जा सकता है कि कोई व्यक्ति ईश्वर से कितना जुड़ा है। यह नहीं हो सकता कि किसी व्यक्ति के अतीत में दुःख ही दुःख की स्मृतियाँ हों। **अरे! आप बोझा किसका ढो रहे हैं, आनन्दमय सुखद स्मृतियों का या दुःखद यादों का।** यह महत्त्वपूर्ण है कि आप अपने वर्तमान में अतीत की सुखद और आनन्दमय स्मृतियों को ही अपने साथ रखें, ताकि आप हर वर्तमान में स्वयं भी आनन्दित रहें और अपने आस-पास के लोगों को भी आनन्दित रखें। कई लोगों को गन्द और प्रदूषण ढोने की आदत होती है। सरकार ने मैला ढोने पर तो रोक लगा दी, परन्तु आप जो अपने विचारों में इतना प्रदूषण ढो रहे हैं, उसका सरकार क्या करेगी? अब चार दिन पहले यदि मुझे सिर में दर्द हुआ था तो अब मैं उसकी चर्चा क्यों करूँ अब तो मैं ठीक हूँ। अरे! दर्द हुआ, ठीक हो गया, अब उसे अपनी मानसिकता से हटा दीजिए।

क्या ढो रहे हैं आप और क्या बो रहे हैं ? यदि आप भविष्य के बारे में चिन्तित हैं, तो आपका भविष्य चाहे चिन्तामुक्त हो जाए लेकिन आप उसका कष्ट ही बो रहे हैं। आप भविष्य में आनन्दित नहीं रह सकते क्योंकि आपको भविष्य में जो थोड़ा बहुत चिन्ता-मुक्ति का सुख मिलेगा वह सापेक्षित ही होगा। हम शोक ढो रहे हैं और शोक ही बो रहे हैं। **जो आपने बोया है वही तो काटेंगे! यदि वर्तमान में किसी भविष्य की चिन्ता या अतीत का शोक होने भी लगे तो आप किसी भी तरह से उसे जड़ न पकड़ने दें।** बोल-बोल कर ईश्वर का जाप, भजन, सिमरन करके या किसी भी तरह से आप हर वर्तमान में आनन्दित रहें। **कोई चिन्ता हो ईश्वर पर डाल दो, कोई शोक हो ईश्वर पर डाल दो। ईश्वर जो आपकी कारण-देह है, सच्चिदानंद है**

और आपसे एक क्षण के लिए भी विलग नहीं होता तथा आपका अपना स्वरूप है। हर वर्तमान के साथ एक तो वर्तमान-वर्तमान होता है, एक वर्तमान-अतीत होता है और एक वर्तमान-भविष्य होता है। ये तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं।

यह जो हमें सिखाया जाता है कि हर सांस के साथ सिमरन व जाप करो, वह इसलिए करो कि कहीं कोई विषैला बीज न बोया जाए। जब आप वर्तमान में ईश्वर से जुड़े रह कर आनन्दित रहेंगे, तो अवांच्छित बीज यदि बोए भी गए हैं, वे उगेंगे नहीं। यदि उगेंगे भी तो आपको प्रभावित नहीं करेंगे। आप अपने अतीत पर विचार करिए, यदि आपको दुःखद घटनाएँ याद आती हैं और यदि आप भविष्य के बारे में चिन्तित रहते हैं, तो इसका अर्थ यह है कि आप ईश्वर से विमुख हैं। **किसी भी तरह से और सब तरह से वर्तमान में आनन्दित हों, यही पुरुषार्थ है।** वैसे तो नशा करके भी व्यक्ति कुछ देर के लिए आनन्दमय हो जाता है, परन्तु यह भ्रम है, क्योंकि नशा करके आप अपनी देह को उपेक्षित करते हैं और अपने आनन्द (ईश्वर) से विमुख होकर कुछ समय के लिए **सुखी से प्रतीत होते हैं।** इसी प्रकार निद्रा में हम अपने आनन्द से विमुख होते हैं और अपने नाम-रूप की चेतना में न होने के कारण **सुखी से होते हैं,** क्योंकि फिर दुःखी होकर उठ जाते हैं। लेकिन समाधि में हम अपने आनन्द-स्वरूप के सम्मुख होते हैं और नाम-रूप की चेतना से परे होकर अपने स्वरूप का आनन्द लेते हैं। फिर देह हमारा स्वागत करती है। **जहाँ आप ईश्वर से विमुख हुए, वहाँ चिन्ता, शोक, भय, विक्षेप सब कुछ आ जाता है और जब ईश्वर से जुड़े, वहाँ सब कुछ आनन्दमय हो जाता है। ऐसे ही व्यक्ति आध्यात्मिक जगत के लिए उत्तम होते हैं।** अच्छी बुरी घटनाएँ सबके जीवन में हमेशा घटती हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि आप उन में से किन स्थितियों को चुन रहे हैं। आपके चारों ओर परिवर्तन होता रहता है, प्रकृति भी विभिन्न परिधान बदल-बदल कर आपको रिझाती है, हम सब कुछ तटस्थ होकर कैसे देखें और आनन्दित कैसे रहें, इसका तरीका क्या है?

वास्तव में चिन्ता व शोक का मूल स्त्रोत हमारा देहाध्यास है, क्योंकि

आपने देह को अपना स्वरूप मान लिया है कि **'मैं देह हूँ,'** तो वर्तमान में आनन्दित रहने का एक ही उपाय है कि आप जानें कि **'मैं कौन हूँ?'** आपने देह के साथ तद्‌रूपता कर ली। आपको आश्वस्त होना होगा कि देह आप नहीं हैं और देह आपकी नहीं है। **मैं विशुद्ध जीवात्मा हूँ और ईश्वर का हूँ और ईश्वर मेरा है।** आज तक जो भी हुआ वह देह के साथ हुआ, आगे भी जो होगा, वह इस नाम-रूपात्मक देह के साथ ही होगा। **आनन्द अविरल है, उसमें न कुछ हुआ और न कभी कुछ होगा। तब आपको घटनाओं के घटने और न घटने से कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, क्योंकि आप सच्चिदानंद ईश्वर के अंश विशुद्ध जीवात्मा हैं, जो उसी की तरह आनन्द-स्वरूप है, सत्य है और चेतन है।** अतः आज तक जो घटा या नहीं घटा, वह भी आनन्दमय था और आगे भी जो कुछ होगा, आनन्दमय ही होगा।

सब कहते हैं कि दृष्टा बनकर देखो, पर कैसे? यदि आप देह हैं तो दृष्टा बन ही नहीं सकते। आपको अपनी सही पहचान होनी चाहिए। आप अपनी देह और देह पर आधारित जगत को दृष्टा बनकर तभी देख पाएँगे जब आप देह से अलग होंगे। लेकिन आप देह को आधार बना कर ही सब कुछ बो रहे हैं, कि उसके कारण ऐसा हुआ, मुझे इतना नुकसान हो गया, भविष्य में मेरे बेटे को ऐसा न हो जाए, इस सब शोक और चिन्ता का कारण मात्र यही है कि **आपको अपनी देह से मोह है और देह से ही स्वयं की पहचान मानते हैं, जो कि मिथ्या है।** वर्तमान की देह ही अतीत के शोक और भविष्य की चिन्ता का आधार है। मेरी देह को कहीं ऐसा न हो जाए, मैं बूढ़ा हो रहा हूँ। अरे! बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी, कभी तो यह देह जाएगी ही। आप सब अभी अपनी उम्र में सौ-सौ साल जोड़ लो, मान लो, मैं आज एक सौ सत्तावन साल का भी हो गया तो क्या हो जाएगा? बादशाह अकबर अगर 500 साल का होकर मरता तो भी क्या हो जाता? सिकन्दर आज जिन्दा होता तो 2300 साल का होता। तो चाहे हज़ार वर्ष उम्र हो, बीत तो वह भी जायेगी ही। यदि आपकी बहुत लम्बा जीने की इच्छा है तो आज ही मान लो कि मैं 200 साल का हो गया, तो क्या आप मरने के लिए तैयार

हैं? चिन्ता आपको तब भी रहेगी, क्योंकि आप स्वयं को देह समझ रहे हैं। आपको नाती पोते, पोते के बेटे की चिन्ता हो सकती है, कुछ भी हो सकता है और आपको नहीं ज्ञात कि आपकी आयु कितनी है। ब्रह्मा जितनी ही आपकी उम्र है। अरे! ऐसी कितनी देह मिलीं और चली गईं, आप तो वैसे ही हैं। **इसी देह में देख लो, आपने बचपन, जवानी, बुढ़ापा कितने रूप देखे हैं, पर आप तो वैसे ही हैं और आपका हर दिन नया जन्म होता है और रात को आप सो जाते हैं, तो आपका निर्वाण हो जाता है।**

हम अपनी भ्रन्तियों से बाहर आना ही नहीं चाहते, हमने कालातीत ईश्वर तक को काल में बांध लिया है, कि भगवान श्रीकृष्ण का जन्म इतने वर्ष पूर्व हुआ। इस प्रकार हमने अकाल को अपनी बुद्धि के योग से काल में बांध लिया। कोई घटनाओं को याद रखते हैं, स्मृति के लिए और कोई घटनाओं को याद रखते हैं, इस सत्य की अनुभूति के लिए कि मैं उस वक्त भी था, मैं आज भी हूँ। **परिवर्तन प्रकृति में हुआ, मैं पुरुष हूँ—चेतन सत्ता जो अविरल है, अखण्ड है और सच्चिदानंद है।** हम अपने ही बनाए हुए जाल में व्यर्थ फंस गए। आप भौतिक जगत में देख लो, पहले जन्म-दिन कौन मनाता था? अब पाश्चात्यानुकरण में सबने जन्म-दिन मनाना शुरू कर दिया। जन्म को मान्यता दी तो मृत्यु साथ जुड़ गई। पहले यह अच्छा नहीं मानते थे कि बच्चे के लिए घोषित करें कि यह इतने साल का हो गया। चुपचाप बच्चे के नाम से दान, पुण्य कर दिया जाता था और सद्गुरु से आशीर्वाद दिलाया जाता था। पाश्चात्य सभ्यता के पास अपने कोई त्यौहार तो हैं नहीं, इसलिए उन्होंने जन्म-दिन मनाना शुरू कर दिया और हमने उनका अनुकरण कर **अकाल को काल गणना में ले लिया, शाश्वत को नश्वर घोषित कर दिया।** पशु-बुद्धि तेज हो गई और दिव्य-बुद्धियाँ आच्छादित हो गईं। यद्यपि अपना जन्म और मृत्यु किसी ने भी नहीं देखे, लेकिन हमने **एक निराधार अतीत और एक न घटने वाला भविष्य निर्मित कर लिया।**

ॐ सृष्टि का बीज है, सृष्टि का प्राकट्य **'अ, उ, म'** से हुआ है।

इससे ॐ भी बनता है और बम भी बनता है, बम बम भोले। निराकार ब्रह्म तीन रूप लेता है **ब्रह्मा, विष्णु और महेश** और महाशक्ति जो निराकार है वह साकार रूप लेती है, महासरस्वती, महालक्ष्मी, माँ भवानी जगदम्बा—**जीव उसका ख्याल है, जो उसके भीतर ही विचरता है।** लेकिन जब ख्याल में हम विचरते हैं, वह ख्याल जो हमारे भीतर बना है, भीतर ही चलता है कि मैं ऐसे गया था और मैं वहां जाऊंगा फिर ऐसा होगा, यदि वह ख्याल हमारे बारे में ही है, इस देह के बारे में है तो उस ख्याल में हम भी होते हैं, उस ख्याल में जब हम विचरते हैं तो उस ख्याल की Projection उस ख्याल के जगत में ही होती है, देश-काल परिस्थिति ख्याल की होती है, उसका आधार हमारा निराकार मानस है, जहां से वह प्रकट हुआ। ख्याल हमारे भीतर चल रहा है लेकिन जब हम उसमें विचरते हैं, तो उसकी समस्त पृष्ठभूमि और रूपरेखा, देश, काल आदि सब ख्याल के ही होते हैं और दु:खी-सुखी भी हमारी ख्याल की देह होती है। जब ख्याल में हम खुश होते हैं, तो हमारी ख्याल की देह प्रसन्न होती है और उसका प्रभाव हमारी इस देह पर भी होता है। किसी के बैठे-बैठे अचानक चेहरे पर मुस्कुराहट आ जाए तो समझना चाहिए कि वह किसी ख्याल में विचर रहा है और उसकी ख्याल की देह खुश हो रही है। बैठे-बैठे किसी के माथे पर त्योरी पड़ गई तो पास बैठे व्यक्ति ने पूछा कि आप किस चिन्ता में डूबे हैं? तो वास्तव में चिन्तित उसकी ख्याल की ही देह होती है। अब हम यहाँ पर वर्तमान, भूत और भविष्य की बात को इस पृष्ठभूमि में समझने का प्रयत्न करें।

भूत हमारे शोक का कारण है और **भविष्य** हमारी चिन्ता का कारण है, क्योंकि **वर्तमान में हम देह के मोह से ग्रसित हैं।** अब अतीत की घटना के समय जो हमारी देह थी, वह इस वर्तमान में मेरी ख्याल की देह है, क्योंकि दस वर्ष पूर्व जो मेरी देह थी, वह आज की देह तो है नहीं। हम अक्सर कहते हैं कि उस घटना को याद करके मैं दु:खी हो गया हूं कि ऐसा क्यों हुआ? अतीत में जब वह घटना घटी, उस समय वह वर्तमान था और उस समय जो आपकी देह थी, आज इस समय वर्तमान की देह के लिए ख्याल की देह

है और उस समय की देह के साथ जो लोग और पृष्ठभूमि सम्बद्ध थी, वह भी आज नहीं है। मैं जानता हूं कि अब मैं वो नहीं हूँ, लेकिन फिर भी मुझे उस अतीत की घटना का आज शोक इसलिए है, क्योंकि मैं उस अतीत के नाम-रूप को अपने आज की देह के नाम-रूप के साथ तद्‌रूप किए हुए हूँ, कि मैं वही हूँ। (जैसे कि खानदानी दुश्मनियाँ चलती हैं) **अतीत तो हमने देख लिया, वह बीत गया, जिस पर बीता वह आज मैं नहीं हूँ और भविष्य अभी देखा नहीं है, वह हमारी कल्पना है** कि 10 वर्ष बाद मेरे साथ कहीं ऐसा न हो जाए, अर्थात् 10 वर्ष बाद जो देह होगी, उसके साथ भी मैं आज की देह की तद्‌रूपता किए हुए हूँ। **देह को ही अपना स्वरूप मानने के कारण मैं 'अहंकार' और 'ममकार' 'मैं और मेरा' की मिथ्या भावना से ग्रसित हो गया।** यह देहाध्यास न हो, तो न तो अतीत का शोक हो, न भविष्य की चिन्ता, इन दोनों को ही आधार नहीं मिलेगा। वर्तमान में देह के मोह के कारण हम गधों व खच्चरों की तरह व्यर्थ में ही शोक और चिन्ताओं को ढो रहे हैं। लेकिन विचार करिए कि वर्तमान में देह के साथ मोह हो गया है, देहाध्यास हो गया, अरे! इस समय की देह से तो उन ख्याल की देहों का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। यह वर्तमान की देह दुःखी नहीं हो रही, ख्याल की देह दुःखी हो रही है।

आज वर्तमान की देह के लिए अतीत की वह देह तो ख्याल की देह है। इसी प्रकार भविष्य की जो मैं चिन्ता कर रहा हूं वह भी मेरी ख्याल की देह है, जिसके साथ मैंने कल्पना कर ली कि वह घटना घट गई। अतः मेरी ख्याल की देह ही शोक-ग्रसित होती है और मेरी ख्याल की देह ही चिन्तित होती है। **जो बीत गया, वह भी ख्याल की देह के साथ हुआ और जो होगा, वह भी ख्याल की देह के साथ ख्याल में ही हुआ।** इस समय यदि मैं आनन्द में हूं तो मैं देहातीत हूं, क्योंकि **आनन्द देहातीत है।** कभी-कभी आप किसी दृश्य को देखकर कहते हैं कि मैं सब कुछ भूल गया, यानि मैं अपने नाम-रूप को भूल कर देहातीत हो गया। इसलिए जब आप आनन्द में होते हैं, देहातीत होते हैं, तो अतीत की शोक वाली और भविष्य की चिन्ता वाली देह को

आश्रय नहीं मिलता, क्योंकि वर्तमान में टिकने के लिए आधार तो चाहिए। पंछी को आश्रय के लिए जहाज चाहिए, समुद्र में कहां उतरेगा? अतः आश्रय न मिलने के कारण वह ख्याल भटकता-भटकता छिप ही जाएगा, तो **अतीत के शोक की एक ख्याल की देह बनी या भविष्य की किसी चिन्ताकुल घटना के ख्याल की देह बनी और आप वर्तमान में ईश्वर के भजन-कीर्तन ध्यान में बैठ गए और आनन्दित में हो गए, तो उन ख्याल की देहों का आश्रय ही समाप्त हो जाएगा।** ख्याल नाम-रूप में है, इसलिए ख्याल की उस देह को वर्तमान में उतरने के लिए भी नाम-रूप चाहिए, उसे जब आधार नहीं मिलेगा तो इधर से शोक समाप्त हो जाएगा और उधर से चिन्ता लुप्त हो जाएगी, आप उसे आश्रय ही न दीजिए। **वर्तमान में ईश्वर से जुड़े रहकर आनन्दित रहिए, देहातीत हो जाइए।**

एक दूसरी तकनीक और है, जैसाकि मैंने अपने प्रवचनों में बार-बार बताया है, हमें देहाध्यास भी देह की पाँच विभूतियों में हुआ इसलिए वह भी अधूरा था। देह के पाँच भगों—सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य और ख्याति को तो हमने पकड़ लिया और छठे भग त्याग, वैराग्य या भस्मी को जानबूझ कर, अनजाने में, मूर्खतावश अथवा सत्संग के अभाव के कारण उपेक्षित कर दिया। भविष्य का बोझा ढोने की हमें जन्मों-जन्मान्तरों से आदत है कि मैं यह बन जाऊंगा, मेरा बेटा बड़ा होकर डाक्टर बन जाएगा, अरे! आप उस अन्तिम, निश्चित, प्रत्यक्षदर्शित, परिलक्षित भविष्य भस्मी का बोझा यदि अपने वर्तमान पर डाल दें, जो सबका होगा ही, और **'मैं भस्मी हूँ'** इस भावना के आत्मसात होते ही आप देह से देहातीत हो जाएँगे तथा आपके अतीत की शोकाकुल और भविष्य की चिन्ताग्रस्त ख्याल की देहों का आश्रय समाप्त हो जाएगा। भस्मी का बोझा पड़ते ही आपका वर्तमान स्थिर, शान्त, सशक्त व चेतन हो जाएगा। वह महाचेतनता जिसे आपने मात्र अपने नाम-रूप की चेतनता में बाँध दिया था, वह चैतन्य जाग्रत हो जाता है। चेतन भस्मी ही शिव है। भस्मी से आत्मसात् होते ही जिन विभूतियों के लिए आप चिन्ता-ग्रस्त थे, शोकाकुल थे, आपसे प्रस्फुटित होनी आरम्भ हो जाएँगी।

आपका सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य व ख्याति आपके भीतर से प्रकट होनी शुरू हो जाएँगी।

देहाध्यास मुझे वर्तमान में है। वह मुझे दुःखी-सुखी करेगा, जब आपने देह हटा दी, आनन्दमय स्थिति में हो गए तो आपके अतीत व भविष्य की ख्याल की देह समाप्त हो जाएगी। शोक या चिन्ता की ख्याल की देह का अस्तित्व जब तक आपमें रहेगा, तब तक आपमें उस घटना की आशंका बनी रहेगी। अब हम वर्तमान में अतीत के शोक और भविष्य की चिन्ता के प्रकरण में और गम्भीरता से विचार करते हैं, अगले सोपान पर चलें।

अतीत के शोक की ख्याल वाली देह और भविष्य की चिन्ता की ख्याल वाली देह दोनों को यदि हमने अपने वर्तमान में रहने दिया, क्योंकि इन दोनों ख्याल की देहों को आपकी वर्तमान की देह में ही आश्रय मिल रहा है, तो जान लीजिए एक नासूर, एक कैंसर आपमें पल रहा है। अतीत की घटना घट चुकी है, उसका आज से कोई सम्बन्ध नहीं है और भविष्य की घटना अभी घटी ही नहीं तथा पता भी नहीं कि घटेगी भी या नहीं। लेकिन आपने ख्याल में एक देह निर्मित कर ली जिसके साथ वह घटना घट गई, क्योंकि एक ख्याल की देह के साथ आप उस भविष्य में उतर गए और अपने वर्तमान की जीवन्त देह में उसे पाल लिया, आश्रय दे दिया, इसी प्रकार जैसेकि आपने अतीत के शोक की ख्यालवाली देह भी पाल रखी है, दोनों पल रही हैं, खा-पी रही हैं, मौज कर रही हैं, कभी प्रकट होती हैं, कभी अप्रकट रहती हैं। इसी प्रकार अनेक दृश्य और रूप हमारे में वास करते हैं। वे जो देह अप्रकट रूप से भी वर्तमान की देह में हैं, उन्होंने कभी न कभी रूप धारण करके आपके जगत में अवश्य प्रकट हो जाना है। अतीत में हुई घटना की पुनरावृत्ति हो सकती है, क्योंकि वह देह मरी नहीं है और कोई भी पड़ी हुई चीज़ कभी न कभी **काम आ जाती है, चाहे वह अतीत की हो या भविष्य की हो। अरे! मत पलने दीजिए इन्हें।**

अतीत एक वर्तमान था और भविष्य एक वर्तमान होगा और उस अतीत के वर्तमान का, आज का वर्तमान भविष्य था और भविष्य के

वर्तमान का आज का वर्तमान अतीत होगा। एक का **भविष्य था**, एक का **अतीत होगा**। अब वर्तमान में शोक-ग्रसित और चिन्तित रह कर इस वर्तमान में उन देश, काल, परिस्थितियों के साथ दो देह और जोड़ लीं भविष्य में जब देश, काल परिस्थितियाँ वैसी ही होंगी तो अतीत की या भविष्य की वह देह पुनः जाग्रत हो जाएगी और उससे मिलती-जुलती घटनाएं पुनः होंगी, क्योंकि मेरा वर्तमान दो ख्यालों को ढो रहा है, एक से शोक-ग्रसित है और एक से चिन्ता में है।

अतः अतीत में जो घटनाएँ घट गईं, वे अब आपकी ख्याल की देह है। इस समय वह देह नहीं है जिसके साथ वह घटना घटी थी और जिसके लिए आप चिन्तित हैं, वह भी आपकी ख्याल की देह है। आप आश्वस्त हो जाइए कि आपकी वर्तमान की देह के साथ कुछ भी घटित नहीं हुआ, लेकिन **उन दोनों देहों की अपने में धारणा करके आप चिन्तित हैं व शोकग्रस्त हैं कि मैं वही हूँ, तो वो ख्याल आपकी वृत्तियों में परिवर्तित हो गए।** इस कारण जब आपके सन्तान उत्पन्न होती है तो वे वृत्तियाँ उनमें भी पहुँचती हैं। इसका जीवन्त उदाहरण हमने देखा सोमवार, 19 जनवरी, 1976 में जब उत्तर काशी में आग लग गई और वहाँ जितने पाकिस्तान से आकर लोग बसे थे, उनकी दुकानें व मकान जल गए। सर्दी का महीना था, वे बस अपने तन के कपड़ों के साथ मुश्किल से जान बचाकर बाहर निकल पाए। एक और बरबादी 1947 के बाद उन्होंने पुनः देखी। **ये वृत्तियाँ हैं, जो मानस में बीज बन छिपी रहती हैं और उसी प्रकार की अनुकूल परिस्थितियों का खाद-पानी पाकर पल्लवित होती हैं। समय आने पर आपके जगत में रूप धारण करके पुनः खड़ी हो जाती हैं।**

कभी भी अपने वर्तमान को खाली न छोड़ें। ईश्वर के नाम-जाप का इसीलिए बहुत महात्म्य है। यदि आप उसके नाम के साथ जुड़े रहेंगे और भगवान के नाम के माध्यम से उस भगवत्ता के साथ जुड़े रहेंगे तो उन ख्याल की देहों को आश्रय ही नहीं मिलेगा। आपके आज के वर्तमान की देह भविष्य में ख्याल की देह बन जाएगी। यदि आपकी आज की देह के साथ अतीत

का ख्याल जुड़ा हुआ है, तो भविष्य में उस वर्तमान की देह के साथ अतीत के ख्याल की देह जुड़ी मिलेगी, तो जिस समय वैसा ही वातावरण होगा, आपको वह घटना पुनः याद आएगी। अतः हमारा एकमात्र कर्म यही है कि **वर्तमान में पल-पल हम उस ईश्वर के साथ जुड़े रहें। उसमें होगा यह कि यदि आपको अतीत का कोई ख्याल आएगा भी तो दिव्य ख्याल आएगा, जिसमें आपने आनन्द लिया होगा।** ऐसे व्यक्ति स्वयं भी आनन्दित रहते हैं और अपने सम्पर्क में आने वालों को भी आनन्दित ही रखते हैं। कुछ लोग अतीत की दुःखद घटनाओं से मुक्त ही नहीं हो पाते। वे हमेशा ऐसी ही बातें करेंगे जिससे दूसरे भी दुःखी हो जाएँ। उन दुःखद घटनाओं की बातों से किसी को क्या लेना-देना है! आप अपनी ख्याल की देह का बाहर प्रदूषण फैला रहे हैं और उसकी पुष्टि भी कर रहे हैं। इसी प्रकार जब हम अपने शत्रु का पुनः-पुनः वर्णन करते हैं, कि अरे! वह मेरा क्या कर लेगा! इस तरह उसकी चर्चा करके आप उसे शक्ति देते हैं। उसकी शक्ति को समाप्त करना है तो उसे प्रणाम कीजिए। वह ईश्वर-स्वरूप है, आप उसका रूप बदल दीजिए। यदि कोई ऐसी-वैसी घटना याद आ जाए तो उसे वर्तमान में दिव्यता में ले लो। **ईश्वर ने जो किया, वह मेरे लिए हित ही किया तो उस ख्याल का भी ईश्वरीकरण कर दीजिए। वह ख्याल की देह भी निस्तेज हो जाएगी।** जैसे आजकल बम और मिसाइल डिफ्यूज़ करते हैं, उसी तरह जो आज बम और मिसाइल ख्याल की देहों के रूप में आपने पाले हुए हैं, यदि उन्हें निस्तेज नहीं करेंगे तो वे अवश्य ही फटेंगे और कभी न कभी विस्फोट अवश्य होगा। अतः इन मिसाइलों का ईश्वरीकरण करके बदल दीजिए, यही हमारा कर्म है।

हम व्यर्थ ही ईश्वर पर दोष डालते हैं कि ईश्वर ने मेरा बुरा किया। अरे! ईश्वर ने कहां बुरा किया, तुमने स्वयं एक वस्तु निर्मित की और उसकी पुष्टि भी कर रहे हो। ईश्वर क्या करे, वह सोचता है, अगर आपको सुनाने में मज़ा आ रहा है, तो ऐसी घटना की पुनरावृत्ति होनी ही चाहिए। **आप अपने साथ घटी दुःखद घटना किसी को सुनाने का आनन्द लेते हो तभी तो**

सुनाते हो। आप उसकी पुष्टि कर देते हैं, तो इसमें ईश्वर का क्या दोष है? क्योंकि जो ख्याल जड़ पकड़ जाता है, वह आपकी वृत्ति बन जाता है। जब उसको अपने वर्तमान में आपने आश्रय दे दिया और आपकी वर्तमान देह पर उसका तदनुरूप प्रभाव हो गया तो आपका वह ख्याल वृत्ति बन जाएगा तथा पुनः-पुनः जब आप उसका विमोचन करेंगे, चर्चा करेंगे तो वह दृढ़ वृत्ति बन जाएगी और दृढ़ वृत्ति न केवल आपको तंग करेगी बल्कि आपकी सन्तान में भी प्रस्फुटित होगी, कि लो आगे भी भुगतो, क्योंकि सन्तान आपकी ही निरन्तरता है। **इसलिए अपने अतीत की घटनाओं को जितना दिव्यतम बना सकते हैं बना लीजिए, उनका स्वरूप बदल दीजिए।** चण्डीगढ़ में नेकचन्द ने रॉक गार्डन बनाया है, जिसमें टूटे-फूटे चीनी-मिट्टी के बर्तनों और कबाड़ को अति सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। **अतः आप अपने भीतर के टूटे-फूटे प्रदूषित विचारों व घटनाओं की स्मृतियों को संशोधित और अति सुन्दर व दिव्य क्यों नहीं कर सकते?** आप भविष्य भी ऐसा निर्मित कीजिए कि आनन्द आ जाए। ख्यालों की जो वृत्तियाँ बनती हैं, ध्यान में या तो उन्हें भस्मित कर दीजिए या उनका दिव्य रूपान्तरण कर दीजिए। "A thing of beauty is a joy forever and a thing of grief is a sorrow for ever." यह सत्य है। भूल जाइए अतीत के अरुचिकर व दुःखद प्रसंगों को। वर्तमान में वह भार उठाइए, जिससे आप आनन्दित हों।

यदि आप कोई कष्ट दूर करने के लिए या भविष्य में किसी लाभ के लिए किसी तन्त्र, मन्त्र का जाप, कोई अनुष्ठान या पूजा-पाठ आदि करते हैं, तो आपका सारा ध्यान उस कष्ट के उन्मूलन और उसके भविष्य के लाभ में लगा रहेगा। भगवान की ओर तो ध्यान जाएगा ही नहीं। यदि आप इन ख्याल की देहों से ध्यान हटा कर वर्तमान में ईश्वर के साथ जुड़े रहेंगे तो उन कष्टों की ख्याल की देहों को आश्रय न मिलने के कारण वे स्वतः ही निस्तेज होकर गायब हो जाएँगी। यह नहीं भूलना चाहिए कि एक दिन यह देह भी छूट जाएगी। ये जो हमारे जन्म-जन्मान्तर होते हैं, यह वृत्तियों के साथ हमारा मानस जाता है जो पुनः-पुनः देह धारण करता है। अगले जन्म

में लगभग वही कुछ दुबारा-दुबारा होता है, क्योंकि वृत्तियों की बार-बार पुनरावृत्ति होती है।

यदि आप वर्तमान में आनन्दित रहेंगे, ईश्वर के साथ जुड़े रहेंगे तो आपकी चिन्ता और शोक वाली देहों को आश्रय ही नहीं मिलेगा। निरन्तर सत्संग करते-करते आपकी देह आनन्दमयी हो जाती है। ख्याल वही करना है जो दिव्य हो, आनन्दमय हो। **यह सारा जगत ख्याल ही है, ख्यालों को आप जितना उत्कृष्ट बना सकते हैं, बना लीजिए।** क्योंकि एक ही घटना को एक व्यक्ति दुःखद रूप में प्रस्तुत करता है तथा उसी को दूसरा सुखद मानता और बताता है। सकारात्मकता मात्र ईश्वर से जुड़े रहने से होगी। पढ़ाई कर रहे हैं, तो ईश्वर कर रहे हैं, पास हों तो ईश्वर, फेल हों तो ईश्वर, अरे! आप का क्या गया? **कि प्रभु मेरे में कोई गुण नहीं है, इतना कह कर आप ईश्वर के साथ जुड़ गए तो आपके अवगुण भी सद्गुण बन गए। मैं जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता। मैं जानता हूँ कि तुम सब कुछ जानते हो और तुम भी जानते हो कि मैं कुछ नहीं जानता और तुम यह भी जानते हो कि तुम सब कुछ जानते हो।**

जब आप अपने पुरुष यानि अपनी चेतन सत्ता से सम्पृक्त हो जाएंगे और अपनी देह के मोह से मुक्त हो जाएँगे तो आपमें मानवावतरण हो जाएगा। **यह भी सत्य है कि एक वर्तमान-वर्तमान का एक वर्तमान-अतीत होता है और एक वर्तमान-भविष्य होता है।** वर्तमान-वर्तमान में मैं क्या हूँ, क्या मैं देहाध्यास से युक्त पशु हूँ? या पुरुष यानि चेतन सत्ता हूँ? अपनी चेतन सत्ता के प्रति जागरूक, ईश्वर से सम्पृक्त मानव हूँ या पशु हूँ, यह निर्णय करना ही पुरुषार्थ है। **मैं कौन हूँ? (वर्तमान-वर्तमान), मैं कहाँ से आया हूँ? (वर्तमान-अतीत) और मुझे कहाँ जाना है? (वर्तमान-भविष्य)।** मैं वर्तमान में क्या हूँ? क्या मैं देह हूँ और यदि मैं देह हूँ तो मैं बोझा ढोने वाला पशु ही हूँ, चाहे मुझे देह मानव की मिली है, तो भी मानव के रूप में पशु हूँ। मुझे वर्तमान में देखना है कि क्या मैं अतीत के शोक और भविष्य की चिन्ताओं के बोझे से लदा हुआ हूँ और एक निरर्थक बोझा

ढो रहा हूँ, तो मात्र पशु ही नहीं, बल्कि अविकसित पशु हूँ, क्योंकि पशु तो सार्थक बोझा ढोता है और मैं निरर्थक ढो रहा हूँ, पशु का बोझा तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है, लेकिन मेरा बोझा तो दिखाई भी नहीं देता।

मैं कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है? जब ये दो ख्याल आपमें बिजली की तरह कौंधने लगेंगे तो अतीत के शोक और भविष्य की चिन्ताओं का आपका वह तथाकथित बोझा उतर जाएगा। जब आप वर्तमान में 'पुरुष' या चेतन सत्ता बन जाएँगे तो सत्य एवं आनन्द स्वतः आपके साथ जुड़ जाएँगे। सच्चिदानंद—सद्, चेतन व आनन्द को कभी भी एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, जहाँ चेतन होगा, वहाँ सद् व आनन्द होगा ही। इसी प्रकार जहाँ सद् होगा वहाँ चेतन व आनन्द तथा जहां आनन्द होगा वहाँ सद् और चेतन की उपस्थिति अवश्यम्भावी है। **जब अतीत के शोक और भविष्य की चिन्ता से मैं वर्तमान की देह के मोह में दब जाऊँगा तो मुझे उन ख्यालों को हटाने के लिए अतीत और भविष्य के विशुद्ध ख्याल, विशुद्ध वर्तमान में उतारने होंगे, कि मैं कहाँ से आया हूँ और मुझे आखिर जाना कहाँ है और वर्तमान में मेरे पुरुष यानि चेतन सत्ता का क्या अर्थ है?** वर्तमान-वर्तमान में पहले मैं एक देह था, देह को मैंने अपना स्वरूप समझ लिया, अब देह की जगह एक ख्याल ने ले ली कि मैं कौन हूँ? मैं कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है? अतः निरर्थक ख्याल को सार्थक ख्याल मारेगा। **देह अपनी औकात न भूले और आप अपनी हैसियत न भूलें**। मैं वर्तमान-वर्तमान में देहाध्यास में अपने अस्तित्व को समझे हुए हूँ, अब मैं प्रभु-कृपा से जान गया हूँ कि मैं देह नहीं हूँ, तो मैं कौन हूँ? **यह चिंगारी सारे अतीत व भविष्य के कूड़े-कबाड़े को जला देगी और कोई ख्याल इस ख्याल के सामने टिक ही नहीं सकता।** देह का अहंकार व ममकार भी गायब हो जाएगा तथा अब देह आपके लिए होगी। **देह अपनी औकात में आकर आपकी हैसियत को समझते हुए आपको आपकी चेतनसत्ता की अनुभूति कराने में सहायक होगी।**

मेरी वह चेतन सत्ता, मेरा वह विशुद्ध स्वरूप मेरी देह के प्रारम्भ (जन्म)

के प्रारम्भ (गर्भाधान) से पहले भी था और देह के अन्त (मृत्यु) के अन्त (भस्मी) के बाद भी रहेगा, तो मध्य में मेरा वह स्वरूप कहाँ है? **मध्य में मेरा वह स्वरूप मेरे विशुद्ध वर्तमान में है,** वह वर्तमान जिसमें न भूत का शोक है न भविष्य की चिन्ता है, जहाँ मैं वर्तमान में आधि, व्याधि, उपाधियों से परे होता हूं, मेरा वह स्वरूप वहाँ छिपा हुआ था। **यही वर्तमान रहस्य है।** मध्य में उस स्वरूप को मेरी नाम-रूप की देह की चेतना ने आच्छादित किया हुआ था, कि मैं अमुक-अमुक हूँ। इस प्रकार महाचेतनता से नाम-रूप की चेतनता में आकर मैं इस नाम-रूप की देह को ही अपना स्वरूप समझ बैठा, जिसने मुझमें इस देह और देह पर आधारित जगत के प्रति मोह पैदा कर दिया और मेरे वर्तमान में मेरे उस विशुद्ध स्वरूप को आच्छादित कर दिया तथा मैं भूत के शोक और भविष्य की चिन्ताओं से घिर गया, लेकिन मेरा वह स्वरूप वहाँ छिपा हुआ था। जब किसी भी प्रकार से वह अनाच्छादित होता है तो मैं पुनः धर्मातीत, कर्मातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत, कर्त्तव्यातीत, मायातीत तथा सम्पूर्ण सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति व त्याग से सम्पन्न हो जाता हूँ तथा देह और देह पर आधारित जगत लीला बन जाता है। **मेरा वह सच्चिदानंद स्वरूप अविरल है, जीवन के मध्य में वह मेरे चेतन व विशुद्ध वर्तमान में होता है।**

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(9, 10 अक्टूबर, 2004)

चेतन की चेतनता

जितनी भी यह चराचर सृष्टि है, जिसे देखा जा सकता है, सुना जा सकता है, स्पर्श किया जा सकता है, सूँघा जा सकता है और चखा जा सकता है—इन समस्त महाब्रह्माण्डों का आदि-अन्त है और करोड़ों ब्रह्माण्डों का निर्माता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता अनादि है, अनन्त है। सृष्टि का आदि, अनादि में और अन्त, अनन्त में विलीन हो जाता है। अतः अनादि से आदि, आदि से मध्य, मध्य से अन्त और अन्त से अनन्त (जैसे देह का आदि-अन्त है और मध्य में जीवन-काल है) यह सब उस सच्चिदानंद परम पिता परमेश्वर की माया है, खेल व लीला है।

हम एक ऐसे अनादि व अनंत महासागर की कल्पना करें और उसके बीच में एक तालाब या जल का स्त्रोत हो, जो सागर से ही उभरा, सागर में ही चला और सागर में ही विलीन हो गया, तो वह सागर से पृथक नहीं होगा। **जल के स्त्रोत अथवा उस तालाब का अस्तित्व सागर है, सागर का अस्तित्व वह नहीं है। जैसे पानी का बुलबुला, पानी में ही कुछ देर के लिए उभरा, उसका मध्य भी पानी में है और वह पानी में लीन होकर पानी ही हो गया। अतः जो अनादि व अनंत है, वह आदि-अंत से पृथक नहीं है।** प्रश्न यह उठता है कि यह जो आदि, मध्य और अंत की सृष्टि है, जो ईश्वर रूपी अनादि सागर से प्रकट हुई, सागर में ही चली और अनन्त सागर में विलीन हो जाती है, वह क्यों है?

अनादि-अनन्त निराकार व अदृश्य है, उसे महसूस किया जा सकता है और आदि-अन्त की सृष्टि में करोड़ों महाब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन और

संहार होता है, साकार है, दृश्यमान है। जैसे **प्यास निराकार** है और **जल साकार** है। जल को देखा जा सकता है लेकिन प्यास को केवल महसूस किया जा सकता है। हम भोजन व खाद्य-पदार्थों को देख, चख, सूँघ व स्पर्श कर सकते हैं लेकिन भूख का केवल अनुभव कर सकते हैं। **प्यास और जल तथा भोजन और भूख का दामन-चोली का साथ है। इसी प्रकार पंच-प्राण निराकार हैं, जिनका साकार प्रकटीकरण पंच-महाभूत हैं। प्राण-प्राण, अग्नि है और उदान-प्राण, जल है, अपान-प्राण, वायु है, व्यान-प्राण, आकाश है, समान-प्राण, पृथ्वी है। इन पाँचों प्राणों के प्रतिनिधि पंच-महाभूत सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में दृश्यमान हैं। वह अदृश्य प्राण-शक्ति ही इस दृश्यमान सृष्टि का आधार है, अस्तित्व है।**

इसी प्रकार हमारी स्थूल-देह और सम्पूर्ण सूक्ष्म-जगत दृश्यमान है, **जो नश्वर है। अदृश्य शाश्वत है, जो पहले भी था, मध्य में भी है और अन्त में भी रहेगा, क्योंकि वह अनादि और अनन्त है।** जिस प्रकार भोजन को देखकर भूख का आभास होता है इसी प्रकार इस दृश्यमान जगत को देख, सुन, सूँघ, चख और स्पर्श करके **उस अदृश्य ईश्वरीय शक्ति, जो इस सबका कारण है, उसकी अनुभूति क्यों नहीं हो सकती? वह अदृश्य न होता तो यह दृश्यमान नहीं हो सकता था।**

मैं अपनी देह की उपस्थिति को मान्यता देता हूं जो मात्र चेतनता में होती है। वह चेतनता अनादि है, अनन्त है और देह का आदि है, अन्त है और मूर्खतावश, मायावश, अज्ञानवश मेरे नाम-रूप की चेतना ही मेरा अस्तित्व हो जाता है। यदि मुझे अपने नाम-रूप की चेतना नहीं है, तो मेरे लिए मेरा अस्तित्व ही नहीं होता। मेरा नाम-रूप कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों में सागर में बूँद की तरह है। विचार करिए, अगर मैं देह की हैसियत से न होता या तथाकथित मेरी देह न होती तो क्या अन्तर पड़ना था। हर क्षण असंख्य जीव-जन्तु, जलचर, नभचर, थलचर और असंख्य मानव जन्म ले रहे हैं व मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं और काल-चक्र चल रहा है। अनादि-अनन्त काल-चक्र में यह आदि-अंत की सृष्टि उत्पन्न होती है, चल रही है और लय

हो रही है। जिस देह को मैं **'मैं'** मानता हूँ कि **'मैं हूँ'** या **'मेरी देह है'**, वह तो सागर में बूँद की तरह है, जिसका अस्तित्व सागर से है। वह भी चेतना रूपी सागर अनादि है, अनन्त है, भगवंत है, लेकिन अदृश्य है, अकाल है और यह काल-चक्र, यह चराचर आदि-अंत की सृष्टि उसका प्रतिबिम्ब है। यदि यह काल-चक्र न होता तो उस अकाल की धारणा ही नहीं होती। हमारी जितनी भी सांसारिक मान्यता है, जिसमें हमारा समस्त व्यवहार चल रहा है, वह मान्यता हमारे मन की है और किसी भी मान्यता के लिए चेतना का होना आवश्यक है। सोए हुए या मूर्च्छित अवस्था में किसी को अपनी देह की भी मान्यता नहीं होती। हमारी अपनी नाम-रूप की देह की मान्यता ही वह आधार-स्तम्भ है, जिस पर हमारा समस्त जगत व्यवहार टिका है। इसके लिए भी एक चेतनता चाहिए, तो चेतनता और चेतनता के बीच मान्यता है। दोनों चेतनता एक जैसी नहीं हो सकतीं। **एक महाचेतना में नाम-रूप है और दूसरी मात्र नाम-रूप की चेतना है।** नाम-रूप की मान्यता हुई महाचेतना में और जगत का सारा व्यवहार हुआ नाम-रूप में, तो जीव उस महाचेतना, जिसमें नाम-रूप की चेतनता हुई थी, उससे कट गया तथा उस महाचेतना को केवल अपने एक नाम-रूप की चेतनता में संकुचित करके तुच्छ बन गया। उसी तुच्छता में अपने समस्त संसार की मान्यताएँ करके जगत-व्यवहार करता रहा। उस महाचेतना को मैं मात्र नाम-रूप की चेतनता में ले आया जबकि **केवल मात्र मानव को उस सच्चिदानंद ने इस उद्देश्य से बनाया था कि मानवों में कोई महामानव हो, जो इस चराचर पंच-महाभूत-निर्मित सृष्टि से उस महाचेतना के लिए घोषित कर सके कि वह ही सत्य है, चेतन है और आनन्द है। न केवल घोषित करे बल्कि अनुभव भी करे** जैसेकि दृश्यमान जल व भोजन से निराकार व अदृश्य प्यास व भूख का अनुभव करता है।

देह की हैसियत से मेरा कर्म क्या है? आदि व अन्त की देह को देखकर हमें उस अनादि, अनंत, भगवंत का ज्ञान हो जाए, जो पशु नहीं कर सकते। आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया क्या है? असंख्य करोड़ों-करोड़ों

महाब्रह्माण्डों में चर-अचर सृष्टि का निर्माण हुआ उसमें **मात्र मानव-देह ही ऐसी है, जिसे पाकर एक महामानव उस महाचेतना के लिए चेतन हो सकता है।** बशर्ते, वह आदि-अन्त की नामरूप की देह में होते हुए भी उस अनादि-अनंत चेतनता के प्रति चेतन हो जाए। केवल चेतन होना (aware होना) पृथक है और उस महाचेतना (awarement) की चेतनता (awarement) होना पृथक है। उदाहरणतः आप aware हैं, चेतन हैं, जाग्रत हैं और आपको ज्ञात है कि आपका अमुक-अमुक नाम है, अमुक देश के आप रहने वाले हैं, आज आपका अमुक कार्यक्रम है अथवा आज अमुक तारीख, दिन, त्यौहार है। यह होशोहवास, यह चेतना किसी में ज्यादा होती है, किसी में कम होती है, पर होती अवश्य है। जगत की यह चेतनता देह और देह पर आधारित जगत की चेतना है और यह निजी और दैहिक है। **हमारे नाम-रूप की चेतनता मात्र हमारे भौतिक अस्तित्व को प्रकट करती है और इस देह पर आधारित जो छोटा सा जगत है, उसकी जानकारी देती है, जिसका आदि व अन्त है। यह परिचय सागर में बूँद की तरह है। यह मेरे अस्तित्व के अस्तित्व का परिचय नहीं है।**

बूँद व जल के स्त्रोत का अस्तित्व जिस सागर से है, उसका उद्‌गम भी सागर में है, मध्य भी सागर में है और अन्त भी सागर में है। इस नाम-रूप की चेतनता में जो हम अपना परिचय देते हैं, वह सीमित है, देह के आदि व अन्त तक है और इसी का इतिहास लिखा जाता है, नाम-रूप की यही सीमित चेतनता भूगोल बदलती है। अतः **जब हम स्वयं को आदि-अंत में सीमित देह के नाम-रूप में संकुचित व सीमित कर देते हैं तो हमारे द्वारा हुए कृत्यों के प्रतिफल भी सीमित व आदि-अंत वाले होते हैं।** जो नाम-रूप की स्थूल-देह और उस पर आधारित समस्त सूक्ष्म-मण्डल है, वह मेरे नाम रूप की चेतनता में है, जिसका आदि-अंत है और जो मेरा कारण है, जो मेरी चेतनता की चेतनता है, उस अनादि-अनन्त चेतना में मेरा नाम-रूप भी है और उसमें कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड हैं वह हमारे ज्ञान की सीमा से परे हैं, गणनातीत हैं। आकाश में तारे कितने हैं, सूर्य किस धातु का बना है, पृथ्वी

कितनी गहरी है? कहाँ-कहाँ क्या है? हम नहीं जानते। क्योंकि उस महाचेतनता से जिसमें मेरा नाम-रूप भी था, मैं मात्र अपने नाम-रूप की चेतनता में आकर उससे हट गया। यह मेरी माँ, पिता, घर, व्यवसाय, पद, प्रतिष्ठा, प्रौपर्टी बस इसी में घूमता रहा। क्या कभी किसी ने कहा कि मेरा सूरज, मेरा चाँद, मेरा आकाश, मेरी हवा। कभी सोचा कि इनकी वसीयत मैं किसको करूँ, मेरे मरने के बाद मेरी हवा, आकाश, सूरज, चाँद, ग्रह, नक्षत्र किसके पास जाएँगे मैं बस अपने मकान, प्रोपर्टी के बारे में सोचता हूँ, क्योंकि ये मेरे नाम-रूप की चेतनता में हैं। यदि चेतनता का नाम-रूप होता तो समस्त ब्रह्माण्ड मुझे अपने लिए ही लगता।

जो महाचेतन है, जिसका प्राकट्य है, मेरी निजी व्यक्तिगत नाम-रूप की देह, तो उस देह की दृष्टि से मैं क्यों हूँ? मेरे होने का क्या अर्थ है और मेरा क्या कर्त्तव्य है? जैसाकि मैंने पहले भी कई बार कहा है कि हम सब जो कर रहे हैं, वह सब हमारे बिना भी हो सकता है, तो क्यों न हम ऐसा कोई कृत्य करें, जो कोई नहीं कर रहा और मेरे अतिरिक्त कोई कर भी नहीं सकता, पशु या मानव देहधारी पशु तो कर ही नहीं सकते। मानव देहधारी पशुओं का लक्ष्य पशुओं वाला ही है; पैदा होना, खाना-पीना, बच्चे पैदा करना और मर जाना। मुझे मानवीय दृष्टि से ईश्वर ने एक विशेष चेतना दी है कि मैं उस महाचेतना का अनुभव कर सकूँ जो कि पशु नहीं कर सकते। इसी को कहते हैं–**'चेतन की चेतनता और चेतनता का स्तर'**। यह चेतनता का स्तर व्यक्तिगत नहीं है, एक ही चेतनता है जिसके विभिन्न प्राकट्य हैं और वह स्वयं में परिपूर्ण है। एक ही चेतनता से सारा जगत प्रकट हुआ है। उदाहरण के लिए हम अपनी देह को ही ले लें। उसमें चेतनता एक ही है, जो आँखों द्वारा देखती है, कान से सुनती है, त्वचा से स्पर्श करती है, जीभ से चखती है और नाक से सूँघती है। इस प्रकार पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से एक ही चेतना विभिन्न प्रतिग्रहण कर रही है व कर्मेन्द्रियों से विभिन्न कर्म कर रही है। **विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर जिसका प्रकटीकरण क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म व कारण है, यह एक ही चेतनता का परिपूर्ण प्राकट्य है।**

मान लो, मैं कोई स्वप्न देख रहा हूँ, स्वप्न में जितने भी लोग हैं वे विभिन्न प्रतिभाओं, कलाओं, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व पारिवारिक पृष्ठभूमि से हैं, इसी स्वप्न में कुछ विशेष हैं, कुछ शेष हैं; तो इसमें आप किसको कहेंगे कि इसकी चेतनता कम है, उसकी ज्यादा, क्योंकि स्वप्न एक ही मानस से प्रकट हुआ। यह सब एक ही चेतनता का प्रकाट्य है—कोई लेखक है, कोई कवि, कोई चित्रकार, कोई गायक, कोई नर्तक, कोई आध्यात्मिक, कोई भौतिक, कोई राजा, कोई रंक, कोई मालिक, कोई नौकर। यह सब सौन्दर्य की परिपूर्णता के लिए एक ही चेतनता का विभिन्न प्रकार से प्रकटीकरण है, इसमें यह कहना कि किसी की चेतनता कम या ज्यादा है, ठीक नहीं है। **चेतन में महाचेतन कौन है जो चेतन की चेतनता से जुड़ा है, जिसे अनादि, अनन्त का सत्य मालूम है। जो उस अनादि अनंत में चेतन है, वह महाचेतन है। वह अनादि, अनंत, अदृश्य होते हुए भी सत्य है, उसे मैं अनुभव कर लूँ तो जितने चेतनता के स्तर मैं देख रहा हूँ, अपने ही चेतनता के स्तर देख रहा हूँ, क्योंकि अपनी चेतनता में उनका प्रमाण मैं ही देता हूँ।** इस सम्पूर्ण स्वप्न का अस्तित्व मेरे अस्तित्व से है, इसमें एक मेरी देह भी है, इस स्वप्न में एक मूर्ख है, एक ज्ञानी है, तो यह उस दृश्य की परिपूरक विधा के रूप में है। स्वप्न में चाहे बैल हो या गधा, गिद्ध हो अथवा सूअर, सब एक ही चेतनता से प्रकट हुए हैं। स्थूल व सूक्ष्म परस्पर विरोधी नहीं परिपूरक हैं, जीव जिस भी सृष्टि में विचरेगा स्वयं में परिपूर्ण है, क्योंकि वह चेतनता स्वयं में परिपूर्ण है :—

''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते्,
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।''

मानवों में महामानव व चेतन में महाचेतन वह है जो चेतन की चेतनता, जहाँ से सब कुछ प्रकट हुआ है, उसे अनुभव कर ले। अपनी होश में जो हम अपनी नाम-रूप की देह और उस पर आधारित जगत के बारे में अनुभव कर रहे हैं, वह मायिक है, उसका आदि-अन्त है। इसमें विभिन्न स्तर हैं। किसी का जगत विस्तृत है, किसी का छोटा, कोई शासक है, कोई

शासित। यह सब तुच्छ चेतनता की गणना है, उसमें शेष विशेष जो भी है, सीमित ही है। अगर शासित न होता तो शासन किस पर होता और शासक, शासक कैसे होता? श्रोता न हों तो वक्ता का क्या महात्म्य है। **अपनी आई. क्यू. वाली तुच्छ बुद्धि के बल पर जो स्वयं को चेतन और बुद्धिमान बताता है, वह उस महाचेतनता से कटा हुआ होता है।** इसी बुद्धि ने अकाल को काल में बाँध लिया, धर्म, राष्ट्रीयता, परिवार, सम्बन्ध, मर्यादाएँ बना दीं, जन्म-मृत्यु बना दिए, जो महाचेतनता है उसमें काल, जन्म, मृत्यु, सम्बन्ध, देश, विदेश, धर्म, कर्म हैं ही नहीं। इस काल-गणना के लिए भी तो चेतना चाहिए। जो aware होगा, होश में होगा, वही यह सब गणना करेगा। सुषुप्ति, मूर्च्छा, मृत्यु और विस्मृति में कोई गणना नहीं होगी, कोई सम्बन्ध, धर्म, कर्म, देश काल नहीं होता।

यदि इस होशोहवास या चेतना में केवल नाम-रूप में ही मेरा अस्तित्व है, तो मैं हूँ, न हूँ, संसार को क्या अन्तर पड़ता है? इस नामरूपात्मक साकार सृष्टि के दृश्यमान होने के पीछे उस अदृश्य महाचेतना का अस्तित्व ही प्रमाणित होता है और इसमें कुछ सार्थकता व विशेष कारण अवश्य है। यह कोई महामानव ही पकड़ सकता है। **पहली बात तो उस महाचेतनता की धारणा ही सबको नहीं होती कि मैं किसी महाचेतनता का अंश हूँ, जो अनंत है, अनादि है। वह ईश्वरीय सत्ता जो मेरे अस्तित्व का अस्तित्व है, मेरी चेतनता की चेतनता है उसकी अवधारणा की स्वीकृति, प्रामाणिकता व पुष्टि हो जाए, यही मानव के जीवन का लक्ष्य है।** यदि मैंने अपने नाम-रूप की चेतना में ही जीवन काट दिया, उसी में कभी परोपकारी, कभी अमीर, कभी सच्चरित्र कभी बदनाम और क्या-क्या बनता रहा हूँ, तो मैं मानव-देह धारण करके भी पशु ही हूँ, यह मुझे स्वीकार कर लेना चाहिए।

जो दृश्यमान सृष्टि है, उसका अस्तित्व अदृश्य महाचेतनता है, इस रहस्य को कोई महामानव ही हृदयंगम कर सकता है। काल, नाम व रूप में बंध कर आप उस अकाल और नाम-रूप से परे, ईश्वर को अनुभव नहीं कर सकते। उसकी अनुभूति करने के लिए आपको अपनी नाम-रूप की

स्थूल-देह और इस पर आधारित समस्त सूक्ष्म-जगत के महाकारण, उस अनादि-अनन्त महाचेतन से जुड़ना होगा, किसी भी तरह से और सब तरह से। **जब तक आप आदि-अन्त वाली सृष्टि में उलझे रहेंगे, तब तक अनादि व अनंत को अनुभव नहीं कर सकते।** आप अनादि-अनंत से आदि व अंत में केवल उस अनादि-अनंत की अनुभूति के लिए उतरे हैं।

मात्र सूक्ष्म सी चेतनता से यह सारा मायिक जगत प्रकट हुआ है, जिसकी प्रत्येक इकाई स्वयं में परिपूर्ण है। पंच-प्राण अदृश्य हैं और पंच-महाभूत दृश्यमान हैं, भौतिक हैं। अब मेरी स्वप्न की सृष्टि में एक धरती भी थी, आकाश भी था, स्वप्न की मेरी देह श्वास भी ले रही थी। **वह मात्र प्राण-ज्योति का प्रकाट्य था और वास्तव में था कुछ भी नहीं। लेकिन स्वप्न में स्वप्न का ज्ञान नहीं होता, जागकर ही पता चलता है कि वह स्वप्न था। यदि मैं स्वप्न में स्वप्न देखते हुए जाग्रत हो जाऊँ, मुझे यह चेतना हो जाए कि यह मात्र स्वप्न है और मेरा जो स्वरूप है, जहाँ से यह स्वप्न प्रकट हुआ है, वह इससे परे है और वह टस से मस नहीं हुआ, तो मुझे अपने उस महाचेतन स्वरूप की अनुभूति हो जाएगी।** प्रकाट्य में वह एक से अनेक बनता है और अनेकों में वह एक ही होता है। स्वप्न की देह की चेतनता मेरी निजी व्यक्तिगत चेतनता है और मेरा वह स्वरूप जहाँ से सम्पूर्ण सृष्टि प्रकट हुई है, वह awarement की awarement है, **वह चेतन की चेतनता है, महा चेतनता है। इसका अनुभव तब होगा जब मैं अपने जीवत्व को समझूँगा, जब मैं स्थूल से विराट में, व्यष्टि से समष्टि में विचरण करूँगा, कि सबमें मैं एक ही हूँ, मैं कौन? मैं नाम-रूप की देह नहीं बल्कि मैं जीवात्मा हूँ। उसमें मैं देह की दृष्टि से भी एक हूँ और वह सम्पूर्ण सृष्टि महाचेतन में है।**

महाचेतन ईश्वर, एक जीवात्मा में विभिन्न नाम-रूपों में उतरता है ताकि उसके अपने अस्तित्व को, जो कि अदृश्य है, जिसके कारण समस्त नामरूपात्मक सृष्टि है, उसे अनुभूत किया जा सके, यही मानव-जीवन का लक्ष्य है। जब तक हमारा वह लक्ष्य नहीं होगा तब तक हम जीव-सृष्टि में

पुनः-पुनः उलझते हुए काल-चक्र में घूमते रहेंगे। एक ही लक्ष्य है कि मैं अपनी सूक्ष्म सी नाम-रूप की चेतना में जो सागर में बूँद की तरह से है, उसके माध्यम से बूँद होते हुए भी (सागर मुझे बनना नहीं है) मैं सागर को पहचान लूँ। बूँद के अस्तित्व को उस महासागर के अस्तित्व में पहचानना है। जब तक जीवन का यह लक्ष्य पूरा नहीं होगा, तब तक हम जीव-सृष्टि में ही घूमते रहेंगे। **उस महाचेतन से हम जुड़े हुए हैं, मात्र अनुभव करना है।**

We live in awarement of our name and form हमारा सारा जगत इस छोटी सी awarement में है, जोकि तथाकथित जागृति है, सब सोए हुए हैं। **वास्तव में जाग्रत वह है जो अपनी awarement की awarement के प्रति जाग्रत हो।** स्वप्न में यह ज्ञान हो जाए कि मैं स्वप्न देख रहा हूं, तो स्वप्न का आनन्द आ जाएगा तथा जीवन मात्र लीला हो जाएगी। हम कर्मों, धर्मों, सम्बन्धों, काल, देश व मर्यादाओं किसी में भी नहीं बधेंगे। जैसेकि राम व कृष्ण-लीला आनन्दमय है, वह चेतन की चेतनता में है। कृष्ण-लीला में कोई मर्यादा नहीं है, भगवान राम की लीला ऐसी मर्यादाओं में थी, जिसका कोई अनुसरण कर ही नहीं सकता।

इस महाचेतनता की अनुभूति के लिए पहले हमें अपनी देह से परे हटना पड़ेगा, **देह होते हुए भी जब हम ईश्वर से जुड़ जाएँगे तो वही भगवत्ता है। आप भी ईश्वर की तरह सौन्दर्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, ख्याति व त्याग छः भगों से युक्त हो जाएँगे।** आप पहले भी इनसे युक्त थे, लेकिन अब आपमें ये भग जाग्रत हो जाएँगे और तभी मानव-देह में **'मानवावतरण'** होगा। मानव का जन्म नहीं होता, मानव प्रकट होता है, उसी मानव-देहधारी पशु के भीतर से।

मैं मानव देहधारी होते हुए भी पशु इसलिए हूँ, क्योंकि मैं स्वयं को देह समझता हूँ। **'मैं देह हूँ'** यह मोह है, जिस मोह से ग्रसित होकर मैं वर्तमान में अतीत के शोक और भविष्य की चिन्ताओं से लदा रहता हूँ। इसका विस्तृत वर्णन मैंने **'वर्तमान-रहस्य'** शीर्षक गत प्रवचन में किया है। अतीत के शोक का ख्याल मेरे वर्तमान की देह के मोह पर लदा रहता है, इसी

प्रकार भविष्य की चिन्ताएँ भी मेरे वर्तमान की देह के मोह पर सवार रहती हैं। दोनों ख्याल हैं, जो हैं नहीं, उन्हें मैं वर्तमान में ढो रहा हूँ, पशुओं की तरह से। **पशुओं का बोझा दृश्यमान है, सार्थक है, लेकिन हरेक वर्तमान में, मैं एक अतीत-वर्तमान और एक भविष्य वर्तमान का निरर्थक व अदृश्य बोझा ढोता हूँ** क्योंकि मैं वर्तमान में मात्र अपनी देह की नाम-रूप की होश में हूँ **लेकिन जब मुझे चेतन की चेतनता हो जाएगी, जिससे मेरी नाम-रूप वाली देह व उस पर आधारित समस्त जगत की चेतनता प्रकट हुई है, तो मैं पशु से मानव बन जाऊँगा और 'मैं' चेतन, अपनी चेतनता के प्रति जाग्रत हो जाऊँगा।** मोह+ना=मोहना, जिसे मोह ना हो, वह महाचेतन है, मोहन है और यही स्थिति मेरे जीवन का लक्ष्य है। **अतः आदि-अन्त जो है, वह भी स्वयं में अनादि-अनंत है, लेकिन तुच्छ सी चेतनता में फँस कर, स्वयं को मात्र देह मान कर, मैं सागर से कट कर, बूँद बनकर रह गया और अपने अस्तित्व के सागर से पूर्णतः कट गया।**

वास्तव में वही ज्ञानी है, वही भक्त है और वही कर्मयोगी है तथा वही जाग्रत है, जो अपनी उस महाचेतना को माने और फिर उसे अनुभव करे। नहीं तो हम सोते हुए ही पैदा होते हैं, सोते हुए ही जीते हैं और सोते हुए ही मर जाते हैं। **जो जग गया, वह आदि से अनादि व अंत से अनंत हो जाता है और आदि-अन्त वाली देह में मात्र लीला करता है। आदि का अनादि होता है और अंत का अनंत होता है और आदि और अंत के मध्य में ही सारा जगत है। उस मध्य में हमको अपनी चेतनता की चेतनता को अनुभव करना है, मध्य में जिसे 'मैं' देह माने हुए हूँ वह मैं नहीं हूँ, मैं वह हूँ जो मैं आदि से पहले भी था, जो आदि में भी है, मध्य में भी मैं हूँ और अंत के बाद भी रहूँगा।** मध्य में मेरी इस नाम-रूप की देह का प्राकट्य उस विस्तृत **'मैं'** को अनुभव करने के लिए हुआ है। वास्तव में, मैं तो इस देह के प्रकट होने से पहले भी था और मध्य में मेरी उस चेतनता में नाम-रूप की देह है और देह के अन्त में भी **'मैं'** तो रहूँगा ही। एक मुझे नामरूप की चेतना हुई और एक वह चेतनता है, जहाँ से यह सारा जगत प्रकट हुआ है, जिसमें

मेरी नाम-रूप की देह भी है। उसकी चेतनता हो जाए, मुझे पानी व प्यास, भोजन व भूख का सम्बन्ध मालूम चल जाए, यही मेरे जीवन का लक्ष्य है। **मैं अपनी बूंदत्व में अपने सागरत्व की अनुभूति कर लूँ, सब तरह से और किसी भी तरह से। आदि-अंत से अनादि-अनंत हो जाऊँ, सीमित से असीम्य हो जाऊँ, यही वास्तव में योग है।** सीमित मात्र खेल है, इस सीमित खेल का प्राकट्य उस असीम्य की अनुभूति के लिए है और जीवन मात्र इसलिए है।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(11, 12, 13 अक्टूबर, 2004)

शिव-शक्ति

आज यहाँ उपस्थित परम जिज्ञासुओं के सम्मुख इष्ट प्रेरणा से शिव-शक्ति के परम रहस्य को प्रस्तुत करने की चेष्टा करूंगा। यह सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड शिव-शक्ति-क्रीड़ा है, निराकार की साकार में क्रीड़ा है। शिव भी निराकार है, शक्ति भी निराकार है तथा दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं। जिस प्रकार एक विद्युत की तार में विद्युत का प्रवाह बहता है, लेकिन उसमें वह विद्युत दिखाई नहीं देती, वह अदृश्य व निराकार है, लेकिन उसी विद्युत का ए. सी. में शीतल हवा के रूप में, म्यूज़िक सिस्टम में संगीत की ध्वनि में, पंखे में हवा बनकर, बल्ब व ट्यूब में प्रकाश बनकर, हीटर आदि में गर्म हवा बनकर प्रकाट्य होता है। यह प्रकाट्य विभिन्न उपकरणों के गुण, धर्म व प्रकृति के अनुसार होता है जिसको हम अपनी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार वह स्वयं में अदृश्य विद्युत-शक्ति जब विभिन्न उपकरणों में प्रवाहित होती है, तो स्पष्ट रूप से वही विभिन्न रूप धारण कर लेती है और दृश्यमान होती है।

आध्यात्मिक जगत में जिसे शक्ति कहते हैं, उसका अर्थ है—**'प्राण-शक्ति'**। देवाधिदेव महादेव पंच-प्राणों का पुंज है, वह महाज्योति निराकार लिंग रूप है। शिव में से छोटी 'इ' हटा दें तो शव रह जाता है। यह छोटी 'इ' प्राण-शक्ति है, यह शक्ति का बीज है। अर्थात् शिव, शक्ति-युक्त है और शक्ति, शिव में समाहित है। **प्राण, अपान, समान, उदान व व्यान—ये पंच-प्राण हैं।** शिव इन्हीं पंच-प्राणों का पुंजीभूत रूप है और इन्हीं पंच-प्राणों का मायिक प्रकटीकरण क्रमशः **अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल व आकाश** नामक

पाँच-महाभूतों के रूप में होता है। ये पाँचों-महाभूत भौतिक व मायिक हैं, जिनका प्रकाट्य पाँच-प्राणों से होता है। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि इन पंच-महाभूतों का ही खेल है।

माया के तीन गुण हैं—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। ये पंच-महाभूत भी मायिक हैं लेकिन ये सतोगुणी, रजोगुणी व तमोगुणी ईश्वरीय इच्छा से ही होते हैं। पृथ्वी जब तामसी रूप धारण करेगी, भूचाल आदि लाएगी, आकाश जब उल्कापिण्ड गिराएगा, वायु प्रचण्ड होकर जब बवण्डर बनेगी, जल में जब-जब ज्वार-भाटा या चक्रवात आएगा, ईश्वर-इच्छा से ही आएगा, अग्नि ईश्वर-इच्छा से ही धधकेगी, आँधी-तूफान ईश्वर-इच्छा से ही आते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी में समस्त वनस्पति जगत, पेड़, पौधे, तरु, वृन्द, पल्लव, आकाश के सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, जल रूप में सागर, प्रपात, नदियों, झरनों आदि में भी अपना कोई अहं नहीं है। साथ ही जलचर, नभचर व थलचर रूप में पशु, पक्षी व जीव-जन्तुओं में भी अहं नहीं है। यह समस्त सृष्टि ईश्वरीय ही है और तीनों गुणों के संतुलन से युक्त है। इस सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में जो प्रकाट्य बिना किसी हस्तक्षेप के ईश्वरीय आज्ञा में होता है, उसमें सर्वदा माया के तीनों गुणों का दिव्य संतुलन रहता है। शक्ति का यह समस्त मायिक प्रकटीकरण चराचर जगत के विभिन्न रूपों में होता है, लेकिन इस प्रकटीकरण का मूल कारण देवाधिदेव महादेव **'शिव'** हैं, जो स्वयं में ठोस-घन-शिला हैं, सच्चिदानंद हैं, जिसमें शक्ति निराकार रूप से समाहित ही है, उससे अभिन्न है। वह शिव ही शक्ति का अस्तित्व है।

इस समस्त चराचर जगत में जो भी हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण करते हैं, उनके पीछे **प्राण-शक्ति** ही है—जो **नेत्रों** को **दिखाती** है, **कानों** को **सुनाती** है, **त्वचा** द्वारा **स्पर्श** की अनुभूति देती है, **जीभ** को **स्वाद** और **नाक** को **गन्ध** देती है। यह प्राण-शक्ति ही अंधेरे व प्रकाश को प्रकाशित करती है। शिव-शक्ति हट जाएँ तो माया का अस्तित्व ही नहीं रहता। जो प्राण वायु को प्राणमय स्पर्श देता है, जो जल को रस सिंचित करता है, पृथ्वी की

सुगन्ध को गन्ध देता है, अग्नि को रूप व तेज और आकाश को शब्द अथवा नाद देता है; वह है—क्रमशः अपान, उदान, समान, प्राण और व्यान, इन पांचों-प्राणों का पुंज, निराकार शिव—***'सच्चिदानंदोऽहम् शिवोऽहम्-शिवोऽहम्।'*** वही शिव जब दृश्यमान होकर शक्ति के साथ खेलना चाहता है तो अपनी तीन मुख्य विधाओं में साकार रूप में प्रकट होता है। जब **ब्रह्मा** बनकर साकार रूप में प्रकट होता है, तो शक्ति **महासरस्वती** बनकर प्रकट होती है। जब शिव, **विष्णु** बनकर प्रकट होता है तो उसकी शक्ति **लक्ष्मी** बनकर प्रकट होती है और जब शिव, **शंकर** बनकर प्रकट होता है तो उसकी शक्ति मां भवानी **पार्वती** बनकर प्रकट होती है और समस्त चराचर जगत में ईश व जीव-सृष्टि का क्रमशः, निर्माण, पालन व संहार होता रहता है। **जहाँ शिव रूप लेता है वहाँ शक्ति भी रूप लेती है, जब शिव रूप नहीं लेता, शक्ति भी नहीं लेती।** क्रीड़ा के लिए कुछ निर्माण, पालन व संहार चाहिए और तीनों प्रक्रियाएं आनन्दमय एवं मायिक होती हैं। माया में शिव व शक्ति दोनों रूप ले लेते हैं।

यह माया मात्र प्रस्तुति नहीं है। जब शिव-शक्ति रूप लेते हैं तो वह रूप शिवमय व शक्तिमय होता है, शिव-शक्ति से यह सांसारिक मायिक रूप पृथक नहीं है। इसलिए जीव विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों द्वारा इस समस्त मायिक सृष्टि के प्रकटीकरण का आनन्द लेता है। शिव की यह माया मिथ्या नहीं है क्योंकि पंच-प्राणों की शक्ति से ओतप्रोत है। टी. वी के स्क्रीन पर मात्र प्रोजेक्शन होता है, वास्तव में कुछ नहीं होता, मात्र प्रस्तुति होती है। शिव-शक्ति का मायिक प्रकटीकरण टी. वी. के पर्दे पर कैसेट के माध्यम से प्रकट होने वाले मायिक दृश्यों की तरह मात्र दिखाई व सुनाई देने के लिए नहीं है, बल्कि जीव न केवल ईश्वर की इस माया को नेत्रों से देखता व कानों से सुनता है बल्कि त्वचा से स्पर्श भी करता है, नाक से सूँघता भी है और जीभ से चख भी सकता है; क्योंकि यह प्रकाट्य निराकार शिव-शक्ति का साकार रूप है। यद्यपि यह समस्त खेल मायिक ही है।

शिव ब्रह्मा, विष्णु व महेश तथा शक्ति क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी और

पार्वती बनकर साकार रूप लेते हैं। इसमें प्रत्येक शिव की 1008 विधाएं होती हैं यानि ब्रह्मा के रूप मे 1008 विधाएँ, विष्णु रूप में 1008 तथा महेश रूप में 1008 विधाएँ होती हैं और इनके शक्ति-रूपों में महासरस्वती, महालक्ष्मी व दुर्गा भवानी की 108 – 108 विधाएँ होती हैं। 108 का स्थूल विभाजन, 12 से विभाजित करके 9 रूपों में किया गया जिनमें तीन सतोगुणी, तीन रजोगुणी और तीन तमोगुणी हैं। ये सब सरस्वती, लक्ष्मी व पार्वती की विधाएँ हैं। ब्रह्मा निर्माण करता है, उसके लिए बुद्धि अपेक्षित है। अतः उनकी शक्ति **सरस्वती** ज्ञान की देवी है, ज्ञान भी सतोगुणी, रजोगुणी व तमोगुणी होता है। उदाहरणतः चोरी करना, डाका डालना, खून करना, आतंकवादी बनना, षडयन्त्र करना, विद्रोह करना, विध्वंसक शस्त्र बनाना भी विद्याएँ हैं, लेकिन तमोगुणी हैं। इसी प्रकार व्यापार करना, भागदौड़ करके धन अर्जित करना रजोगुणी विद्या है और अपने स्वरूप का ज्ञान या आत्मज्ञान सतोगुणी विद्या है। मन में शान्ति कैसे उत्पन्न हो, जप, तप, ज्ञान, ध्यान कैसे करें, स्वास्थ्य कैसे ठीक रहे, ये सरस्वती की सतोगुणी विधाएँ हैं। विष्णु पालन करता है, जिसके लिए धन-सम्पदा चाहिए। अतः **विष्णु की शक्ति** का प्रकाट्य **लक्ष्मी** के रूप में होता है। **माँ भवानी पार्वती** और **लक्ष्मी** के भी इसी प्रकार 108-108 रूप हैं। सतोगुणी निधि, रजोगुणी निधि, तमोगुणी निधि का वर्णन मैंने **'लक्ष्मी दर्शन'** शीर्षक प्रवचन में किया है। ईश्वर के निराकार और साकार, दोनों रूपों में छः गुण हैं—**सौन्दर्य, ज्ञान, ख्याति, ऐश्वर्य, शक्ति व त्याग।** ईश्वर के छः गुणों में **ब्रह्मा** में **ज्ञान** व **ख्याति** मुख्य हैं, **विष्णु** में **ऐश्वर्य** और **सौन्दर्य** तथा **महेश** में **वैराग्य** व **शक्ति** प्रधान हैं, क्योंकि शक्ति के साथ वैराग का होना परमावश्यक है; नहीं तो शक्ति विध्वंसकारी हो जाती है। ध्यान रहे ब्रह्मा, विष्णु व महेश तीनों छः गुणों से विभूषित हैं, प्रधानता के आधार पर छः गुणों का तीनों में विभाजन है।

यह संसार शिव-शक्ति का प्रकाट्य है। **एक से अनेक हो जाऊँ 'एकोऽहम् बहुस्याम्' बस हो गया।** समस्त चराचर सृष्टि असंख्य जीव-जन्तुओं, प्राणी-जगत, धरती, पाताल, आकाश व समुद्र सब कुछ शिव

का प्राकट्य है और प्राकट्य में ही निर्माण, पालन और संहार होता है। सृष्टि का डिज़ाइन पहले निराकार में बना है, फिर वह प्रकट होती है। सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा चमकता है, लेकिन चन्द्रमा में वह प्रकाश शीतल हो जाता है। पूरे ब्रह्माण्ड में एक सूर्य है, एक चन्द्रमा है और असंख्य तारागण व ग्रह, नक्षत्र आदि हैं। इसलिए यह समस्त ईश्वरीय प्राकट्य सुनियोजित विधि से होता है। निर्माण, पालन व संहार से पहले एक ईश्वरीय योजना बनती है और उसके पीछे मानव-बुद्धि की कोई हैसियत नहीं है, वह किसी गणना में नहीं है।

कभी शिव, स्वयं रूप धारण करके सृष्टि में खेलने के लिए आ जाता है। इसे कहा है—**'अवतरण'**। अवतरण का अर्थ अधोगमन न होकर, नीचे उतरना है, तो वह शिव, निराकार सत्ता जब साकार बनकर स्वयं खेलने के लिए, आनन्द लेने के लिए सृष्टि में अवतरित होती है, तो उसके साथ शक्ति भी अवतरित होती है। जगत की समस्त चराचर दृश्यमान क्रीड़ा शिव-शक्ति की क्रीड़ा है, जिसे माया कहा है। **शिव जब किसी भी रूप में प्रकट होता है तो वह द्वैत में क्रीड़ा के लिए अपने साथ जीव को भी अवतरित करता है, जिसे कहा है—'जीवावतरण'**। आज प्रथम बार मैं इष्ट-कृपा से शिव-शक्ति के इस परम रहस्य को आपके सम्मुख रख रहा हूँ। जब शिव ब्रह्मा, विष्णु व महेश कुछ भी बनकर अवतरित होता है तो उसके साथ शक्ति भी अवतरित होती है, कुछ भी बनकर। लेकिन शक्ति जो कुछ भी बनती है, वह 108 विधाओं से विभूषित होती है और शिव जो भी बनता है, वह 1008 विधाओं से युक्त होता है तथा उसके साथ मानव बनकर जीव का प्रादुर्भाव भी होता है। जीव का भी अवतार होता है, उसे चाहे **जीवावतार** कह दीजिए अथवा **मानवावतार** कह दीजिए।

ईश्वर ने एक अति उत्कृष्ट, भव्य, दिव्य संसार महानाट्यशाला की रचना की है, जिसका वह स्वयं पालन करता है और संहार भी वही करता है। इस धरा पर ईश्वर की परम विलक्षण, सर्वोत्कृष्ट और अति चमत्कारिक रचना है—**'मानव-देह'**। यह मानव-देह पंच-महाभूतों का अनुपम संगम है,

जिसका प्राकट्य पंच-प्राणों से होता है, जैसा कि मैं प्रारम्भ में ही वर्णन कर चुका हूँ। समस्त आकाश-मण्डल, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागण, वायुमण्डल, नभचर, जलचर, थलचर, वसुन्धरा, पृथ्वी व उसके सातों तल, असंख्य सागर, नदियाँ, प्रपात, झरने, असंख्य वनस्पतियाँ तथा जीव-जन्तु एवं मानव सब प्रभु की संरचना हैं और इन कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का पालन भी वह स्वयं ही करता है। मानव-देह के निर्माण में ईश्वर ने इतनी कलात्मकता का प्राकट्य किया है, जिसका अध्ययन करना मानव-बुद्धि की सीमा से बाहर है।

एक मानव-देह में पंच-प्राणों का प्राकट्य—पंच-महाभूतों के साथ चौरासी लाख योनियों का प्रतिनिधित्व है। आकाश में सूर्य, चन्द्र आदि जितने भी नक्षत्र हैं, उन सबका प्रतिनिधित्व मानव-मस्तिष्क में है। सूर्यलोक, चन्द्रलोक, रौरव नरक, घोर नरक, नरक, स्वर्ग, अपवर्ग, वैकुण्ठ सभी एक मानव-देह में हैं। समय को जितने युग-युगान्तरों में वितरित किया है—सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलियुग उन सबका विचरण एक ही मानव-देह में नित्य होता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जितने भी डिज़ाइन व आकृतियाँ हैं, सब मानव-देह में विराजमान हैं। वे सब मानव-देह से लिए गए हैं, या उनके आधार पर मानव-देह बनाई गई है। उदाहरणतः अखरोट की गिरी की आकृति मानव मस्तिष्क से मिलती है, बीन्स से आपकी किडनी मिलती-जुलती है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश में जितने भी तत्त्व हैं, धातुए या अधातुएँ हैं, उनका सूक्ष्म अथवा वृहद रूप से प्रतिनिधित्व एक मानव-देह में है। देवलोक, असुरलोक, इन्द्रलोक, चौरासी लाख पशु योनियों के अतिरिक्त **11 मानव योनियाँ** भी एक मानव-देह में हैं। 11 मानव योनियों में **पाँच जज्ञासु** हैं—सामान्य जिज्ञासु, जिज्ञासु, अति जिज्ञासु, महाजिज्ञासु और परम जिज्ञासु, **पाँच मुमुक्षु हैं** और **एक मुक्त** नर है, क्योंकि मानवावतरण जिज्ञासा से शुरू होता है, जितने भी मानव देहधारी जीव हैं, वे सभी मानव नहीं हैं। चौरासी लाख पशु योनियों का प्रतिनिधित्व एक मानव-देह में है।

जब मानव-देह से मानव प्रकट होता है, उसकी शुरुआत जिज्ञासा से

होती है—मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे जाना कहाँ है, मैं यहाँ क्यों लाया गया हूँ, मैं देह नहीं हूँ, देह मेरी भी नहीं है, तो मेरा देह के साथ क्या सम्बन्ध है? इसी प्रकार के असंख्य प्रश्न जब इसकी रूह में बिजली की तरह कौंधने लगते हैं, तो उसी मानव-देह में मानवावतरण होता है। जब तक हम में यह जिज्ञासा नहीं उत्पन्न होती कि 'मैं कौन हूँ', तब तक हम इस अद्वितीय मानव-देह को पाकर भी जीवन के लिए भागदौड़ करते हुए जन्मते व मरते रहते हैं और हम उन सभी चौरासी लाख पशु-योनियों में से किसी न किसी में भटकते रहते हैं। **मैं क्या कर रहा** हूँ, **मैं क्यों व किसलिए कर रहा हूँ, मैं यह कब तक करूँगा और यदि मैं जो प्राप्त करना चाह रहा हूँ, मैंने प्राप्त कर भी लिया तो क्या हो जाएगा? So What! यह 'सौ वाट' का बाट जब आपके सिर पर लगेगा तो आपके पाँव लड़खड़ा जाएँगे, चक्कर आ जाएगा, आप मूर्छित हो जाएँगे तथा आपके जीवन का परिदृश्य वहीं से बदलना शुरू हो जाएगा।**

आत्म-विश्लेषण आत्मा का विश्लेषण है जो कुत्ता, बिल्ली, साँप, चूहा, मक्खी व मच्छर आदि नहीं कर सकते और जो मानव-देह धारण करके भी नहीं करते, वे भी इन्हीं 84 लाख पशु योनियों में से एक हैं। आत्म-विश्लेषण मात्र मानव कर सकता है, यदि वह मानव-देह में मानव-रूप में अवतरित हो चुका है। अन्यथा वह 84 लाख योनियों में से एक है अथवा अनेक योनियाँ एक में हैं। यह आवश्यक नहीं है कि एक ही योनि होगी, भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न प्रकार की पशु-योनियाँ प्रकट हो सकती हैं। इष्ट-कृपा से हम जो वर्णन कर रहे हैं, निःसन्देह यह परम सत्य है। **अतः आप अपना निरीक्षण करिए कि आप कौन हैं? क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं, कब तक करेंगे और यदि वह प्राप्त हो जाए तो क्या हो जाएगा?** जब ये प्रश्न कौंधने लगते हैं तो उसके साथ सत्य की श्रृंखला शुरू हो जाती है और तभी आपके भीतर का मानव जाग्रत हो जाता है, अवतरित हो जाता है। स्वयं से पूछिए, क्या जन्म से पहले आप नहीं थे? आपकी रूह अवश्य यह कहेगी कि—हाँ! 'मैं था'। जन्म और मृत्यु, आदि व अन्त तो देह का है। **'मैं' तो**

अविरल हूँ, 'मेरे' आदि का एक अनादि था, मैं आदि से पहले भी था, आदि व अन्त के बीच मध्य में भी 'मैं हूँ और मेरा अन्त भी अनन्त में होगा क्योंकि मैं ईश्वर का अंश, विशुद्ध जीवात्मा हूँ, मैं ईश्वर की इकलौती सन्तान हूँ।

आपको अपनी हैसियत और देह की औकात का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इस सत्य विचार से सब तरह से आपके जीवन की धाराएँ बदल जाती हैं और जन्म-दर-जन्म जीवन के लिए जो आप धक्के खा रहे थे, अब आपकी समस्त क्रियाएँ **'जीवन काहे के लिए'** के लिए हो जाती हैं। यह देह व यह जीवन मुझे काहे के लिए मिला है, इसी दिशा में आपका समस्त कार्यकलाप व चिन्तन शुरू हो जाता है। **जब एक नवजात मानव शिशु धरती पर अवतरित होता है तो वह सद्, चेतन व आनन्द का एक प्राण-पुंज, मात्र एक awarement होता है।** उसका स्वयं में कोई नामरूप नहीं होता। वह स्वयं में ईश्वर स्वरूप—कालातीत, धर्मातीत, लिंगातीत, सम्बन्धातीत, कर्त्तव्यातीत, कर्मातीत, देशातीत और मायातीत होता है। **लेकिन एक समय पर आकर हम उसे एक नाम दे देते हैं, तो जैसे ही उसमें माया का पदार्पण होता है, वह उस नाम को मान लेता है। नामरूप की सृष्टि में आते ही जीव-भाव में आ जाता है तथा सम्पूर्ण सृष्टि के मायिक प्रकटीकरण में फँस जाता है।**

मानव-शिशु को एक नाम देने में कोई गलती नहीं थी। **गलती हुई कि वह स्वयं भी कालान्तर में स्वयं को वही नाम व रूप मानने लगा।** अब हम एक वृक्ष को नाम दें कि यह पीपल है और उसे पुकारें कि पीपल! इधर आओ! तो उसमें कोई भी प्रतिक्रिया नहीं होगी, क्योंकि वह स्वयं को किसी नाम से नहीं जानता, लेकिन मानव-शिशु स्वयं भी उस नाम-रूप की मान्यता में आ जाता है। विशुद्ध चेतनता को जब एक नाम-रूप में बाँध दिया जाता है, तो वह उसे स्वीकार करके नाम-रूप की चेतनता में आ जाता है। उसे एक नाम-रूप दे दिया और उसने उसे स्वीकार कर लिया, उस स्वीकृति के लिए भी तो जागृति व चेतनता चाहिए, नहीं तो वह मान्यता अवैध होगी।

आपका सारा संसार उसी मान्यता पर आधारित है। इस विषय का विस्तृत वर्णन मैंने **'चेतन की चेतनता'** शीर्षक प्रवचन में किया है। सब मान्यताएँ awareness और जागृति में होती हैं और नवजात मानव शिशु जो मात्र शुद्ध चेतना का पुंज था, जब मात्र नाम-रूप की awareness में आ गया तो वह देश, काल, धर्म, जाति, पद्धति न जाने किस-किस में जकड़ा गया और यहीं से जीव भटक जाता है। जीव **'मैं और मेरा', अहंकार और ममकार**, की सृष्टि में उलझकर अपने विशुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप से **कट सा** जाता है और उसके साथ अनेक दुर्घटनाएँ होनी शुरू हो जाती हैं। यहाँ सबसे भयानक दुर्घटना यह होती है कि उसे अपनी नाम-रूप की देह के साथ मोह हो जाता है, क्योंकि वह स्वयं को देह से अलग नहीं पहचानता, देह ही मानता है। देह के साथ मोह होते ही इसके समस्त क्रिया-कलाप, विचार, भाव, प्रार्थनाएँ और सब कुछ मात्र या तो देह के लिए होता है या देह पर आधारित जगत के लिए होता है। हमारी स्थूल-देह और देह पर आधारित समस्त सूक्ष्म-मण्डल मात्र हमारी नाम-रूप की awarement में होता है। यदि यह नाम-रूप की चेतनता नहीं है, तो हमारा सारा स्व-निर्मित संसार ढह जाता है।

नाम-रूप से परे जो चेतनता थी, वह हमारा स्वरूप था, वह अकाल थी, उसमें नाम-रूप की देह भी थी और वह चेतनता जब नाम रूप की चेतनता रह गई तो देह को साध्य मानकर हम मलिन हो गए तथा विक्षिप्त होकर अपने उस सच्चिदानंद स्वरूप से हटे से, विमुख से आवृत होकर आधि, व्याधि और उपाधि तीनों रोगों से ग्रसित हो गए। इनका वर्णन मैंने **'सिद्धि'** विषयक प्रवचनों में किया है। हमने काल को भी भूत, भविष्य व वर्तमान में बांट दिया। भविष्य की चिन्ताओं और अतीत के शोक के बोझ से ग्रसित हम वर्तमान में पशु की तरह जीवन व्यतीत करते हैं। मैंने **'वर्तमान-रहस्य'** शीर्षक प्रवचन में इसका विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रकार सम्पूर्ण ईश्वरत्व का प्रतिनिधि यह जीव अति क्षुद्र, संकुचित व सागर में बूँद की तरह हो जाता है। **इसे भूख और प्यास लगती है, तो यह गोदाम**

भर लेता है, भूख, प्यास व जीवन की आवश्यकताएँ सीमित थीं, परन्तु यह बहुत कुछ एकत्र करता है और वह भी अन्ततः सीमित ही होता है। सीमित की औकात व हैसियत भी सीमित है वह सीमित, सीमित एकत्र करते-करते ही मर जाता है। **महत्त्वपूर्ण यह नहीं कि उसने क्या-क्या एकत्र कर लिया, महत्त्वपूर्ण यह है कि वह सीमित का सीमित ही रहता है।** कभी किसी महापुरुष के सत्संग व प्रभु-कृपा से यदि जीव को अपने विशुद्ध चेतन की स्मृति आ जाए, जिस चेतनता में इसे नाम-रूप दिया गया था, तो वह असीम्य हो जाता है। वह चेतनता नाम-रूप से परे है, ईश्वर की तरह देशातीत, कर्मातीत, सम्बन्धातीत, कर्त्तव्यातीत, लिंगातीत, मायातीत व धर्मातीत है:—

'निराकार रूपोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।'

उस असीम को पाने के लिए जीव की प्यास भी असीम होनी चाहिए। जब जीव इस सीमित नाम-रूप की देह को दांव पर लगा देता है, तो उसकी प्यास भी असीम्य हो जाती है:—

'बहुत जन्म जिए रे माधो, ये जन्म तुम्हारे लेखे।'

आप अपना आत्म-विश्लेषण स्वयं करें कि आपकी प्यास सीमित है या असीम्य। **यदि सत्यानुभूति की प्यास असीम्य है तो वह देह की दीवारों को तोड़ देगी, आपके सम्बन्धों, पद, प्रतिष्ठा, धन-दौलत, नाम, यश सब बाधाओं को बहा कर ले जाएगी और आप तुरन्त अपने सच्चिदानंद स्वरूप के दीदार के अधिकारी हो जाएँगे।** यदि प्यास सीमित की है, देह व देह पर आधारित संसार की है तो आप करोड़ों जन्मों तक भी उस असीम को छू भी नहीं सकेंगे।

नश्वर व सीमित का सब कुछ नश्वर व सीमित ही होता है। उसी सीमित की हम वसीयत करते हैं कि मेरे मरने के बाद मेरी फैक्ट्री, ज़मीन, जायदाद मेरे अमुक पुत्र को मिले। स्वयं को हम अति बुद्धिमान समझते हैं, मगर महामूर्खता कर बैठते हैं। जो वस्तु जीते जी आपकी नहीं हुई, वह मरने के बाद कैसे आपकी होगी? ईश्वर की दृष्टि में वसीयत लिखना महापाप है,

उसका यह कानून ही नहीं है। आप हवा, सूरज, धूप, चाँद की चाँदनी की वसीयत कर सकते हैं! कि इसे मेरे बाद मेरा बेटा भोगे, सूरज की धूप, चाँद की चाँदनी मेरे बेटे को मिले। आप असीम्य की वसीयत नहीं कर सकते। असीम्य छोड़ो, आपकी अपनी प्रतिभाएँ सीमित हैं। क्या आप उनकी वसीयत कर सकते हैं कि मेरा गला बड़ा सुरीला है, मेरे मरने के बाद मेरे बेटे को मेरी सुरीली आवाज़ मिले, मेरी डिग्रियाँ, मेरा पद, मेरा सौन्दर्य, मेरा कद मेरे मरने के बाद मेरी बेटी को मिले। सीमित में भी हम यहाँ अधूरे ही हैं, लेकिन जहाँ वश चलता है, वहाँ हम हाथ मारने से बाज नहीं आते। अरे! देना है तो अपने सामने

धन, मकान, ज़मीन आदि दे जाइए, न जाने कब मौत आ जाए! क्योंकि हम सभी प्रतीक्षा सूची में हैं। यदि वसीयत करेंगे तो उस वस्तु की आसक्ति आपके मानस में जड़ पकड़ लेगी, आप उस असीम्य से सीमित ही मांगते रहेंगे और वह आपको माया की कृपा से मिलता भी रहेगा, लेकिन उसका भोग व आनन्द आप नहीं ले सकते और असीम्य तो मिलेगा ही नहीं। **ईश्वर कभी भ्रमित नहीं होता, वह आपकी नीयत और इच्छा देखता है कि इसको प्यास काहे की है, नश्वर देह व संसार की या शाश्वत, अजर, अमर अपने स्वरूप की।** वह देखता है कि यह देह की दीवारें तोड़ चुका है या नहीं, क्योंकि चौरासी लाख पशु योनियों में हम देह की दीवारें नहीं तोड़ सकते।

जब वह So What, कि 'कुछ भी मिल जाने से क्या हो जाएगा' का बाट लगता है तो देह की दीवारें टूटनी शुरू हो जाती हैं। कौन हूँ, मैं कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है मुझे, इस पर वह कोई समझौता नहीं करता। उसे किसी भी तरह से अपने प्रश्नों के उत्तर चाहिएँ, किसी भी कीमत पर। **हमारे सनातन धर्म का मूल यही 'हित' ही है, सद्गुरु आपको, आपके आध्यात्मिक सत्य, कारण-देह सच्चिदानंद ईश्वर से बाँध देता है या आपको, आपके भौतिक सत्य 'भस्मी' से बाँध देता है। हमारी देह की सीमा सुखों तक है और आनन्द देहातीत है। सद्गुरु ने आपका हित**

देखना है, जैसे ही आप अपने 'कारण' ईश्वर अथवा अपने अन्तिम भविष्य भस्मी से जुड़ेंगे तो आपको आनन्द की अनुभूति होने लगेगी।

प्रश्न उठता है कि उन महाशक्तियों का, जो देवियों के रूप में प्रकट हुईं, यहाँ उनकी क्या भूमिका है? माया-शक्ति त्रिगुणात्मक है—सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी। यह माया-शक्ति जब भी मानव-देह के रूप में प्रकट होती है तो भी त्रिगुणी ही होती है। ध्यान रहे सत्, रज, तम तीन गुण हैं। जिस माया को आप दुत्कारते हैं कि मिथ्या है, ठगनी है, नटनी है वह तो **त्रिगुणात्मक** है। आप अपनी विचारधारा को संशोधित करिए। माया को कभी भी विकृत नहीं कहना, विकृत तो हम हैं, माया तो प्रभु की है, पूजनीय है। विभिन्न रूपों में ये माया-शक्तियाँ नैनादेवी, मनसादेवी, ज्वाला रानी, कांगड़ा देवी, चामुण्डा देवी, वैष्णो देवी, लक्ष्मी देवी, सरस्वती देवी, माँ पार्वती आदि शिव की शक्ति का प्रकाट्य हैं। सारा संसार माया के तीन गुणों से ही निर्मित है। **आपने कभी सतो अवगुण, रजो अवगुण और तमो अवगुण नहीं सुना होगा। इन गुणों को अवगुण हम बना देते हैं।** वास्तव में अहं और इस ईश्वरीय सृष्टि में हस्तक्षेप मात्र मानव में है और यह होते ही तीनों गुणों का संतुलन अस्त-व्यस्त हो जाता है। हमारे समस्त रोग व दोष सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण के असन्तुलन के कारण हैं। जैसे निद्रा तमोगुणी है; अब रात्रि में नींद न आए तो आपके लिए तमोगुण, अवगुण बन गया:—

'या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता,
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता,
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णा रूपेण संस्थिता

तृष्णा, निद्रा और भ्रान्ति भी गुण हैं। हे माँ! निद्रा रूप में मुझ पर कृपा कर; क्योंकि निद्रा के समय व्यापार का चिन्तन चले, तो तमोगुण, गुण के बजाय दोष हो गया, व्यापार करते समय नींद आए, ध्यान, पूजा, समाधि में बैठे-बैठे नींद आए तो तमोगुण दोष हो गया, यह निद्रा जो तमोगुण है, तमोदोष बन जाता है, क्योंकि उसका सन्तुलन बिगड़ गया। **समाधि व ध्यान, सतोगुणी हैं, व्यापार काम-काज रजोगुणी है और निद्रा तमोगुणी**

है। इनका असन्तुलन ही हमारे रोगों, दोषों व कष्टों का कारण है। ये साधु-सन्यासी देवी की साधना करके ध्यान में बैठते थे कि कोई जीव-जन्तु उनकी समाधि भंग न करे। एक छोटी सी चींटी आपकी ध्यान-समाधि तोड़ सकती है। ये समस्त मायिक-शक्तियाँ अनेक रूपों में हैं, हम सौभाग्यशाली हैं कि इनका प्रकाट्य भारतभूमि में हुआ और हमें इनके सिद्ध-स्थलों पर जाने का अवसर मिलता है तथा ये स्वयं बुलाती हैं।

आपकी देह भी मायिक है और तीनों गुणों से युक्त है। यदि देह धारण करके, नाम रूप की चेतना में आकर आपको ज्ञान एवं वैराग्य की सिद्धि चाहिए तो माँ महामाया पार्वती की कृपा होना परमावश्यक है; क्योंकि माया की प्रसन्नता में ही शिव की प्रसन्नता हैः—

''याहि शिवा वर देहि मोहे,
शुभ कर्मन् तो कबहुं न टरौं न डरौं
अरि सों जब जाहि लड़ौं,
निश्चय कर अपनी जीत करौं।''

क्षणिक वैराग्य आपको विरागी नहीं बना सकता, अधूरा ज्ञान आपके अज्ञान को नहीं ढक सकता, इसलिए कहा हैः—

''अन्नपूर्णे सदापूर्णे शंकर प्राण वल्लभे,
ज्ञान वैराग्य सिद्धयर्थम् भिक्षां देहि मा पार्वती।''

पार्वती की कृपा से आपका संसार के पदार्थों से मन भर जाएगा अन्यथा चाहे सारी सृष्टि का साम्राज्य मिल जाए, तो भी आपको सन्तुष्टि नहीं मिल सकती। पदार्थों के पीछे भागना भी मायिक गुणों का असन्तुलन है। पदार्थ मिलना महत्त्वपूर्ण नहीं है, उनका भोग व आनन्द महत्त्वपूर्ण है। सन्तुष्टि हुए बिना आप विदीर्ण होकर, भयभीत होकर भागते ही रहेंगे। इसलिए माया-शक्ति की कृपा होना आवश्यक है। वह शक्ति शंकर से अभिन्न है, जिसका उसे पूर्ण ज्ञान है। उसकी कृपा ईश्वर की ही कृपा है।

जुड़ाव तो हमारा भी शिव से है लेकिन हम aware नहीं हैं। हम वह जुड़ाव खो चुके हैं। यही हममें और इन मायिक शक्तियों में अन्तर है।

नहीं तो वे भी माया में प्रकट हैं और देहधारी हैं तथा हम भी माया में प्रकट हैं और देहधारी हैं। लेकिन वे शक्तियाँ अपनी awarement में शिव से अभिन्न हैं और हम अपनी awarement में नाम-रूप को ही अपना स्वरूप मान बैठे हैं। शक्ति, कभी शिव से विलग नहीं होती, चाहे वह कोई भी नाम-रूप धारण कर ले। **इसलिए हमें अपने स्वरूप से जुड़े होने की अनुभूति की सिद्धि के लिए शक्ति की उपासना की आवश्यकता है। जब मानव में माया के सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण का असन्तुलन हो जाता है और ये दोष बन जाते हैं, तो वह महामाया अपनी विभिन्न विधाओं में सम्पूर्ण रूपों के साथ तीनों गुणों का सन्तुलन करने के लिए प्रकट होती है।** जैसे माँ चामुण्डा, माँ पार्वती व माँ लक्ष्मी इनकी अपनी प्रकृति है, इनकी प्रकृति में धन, आभूषण, स्वास्थ्य, सन्तोष, स्वजन, सत्संग, सुख, समृद्धि व शान्ति आदि हैं। जब इनकी कृपा होगी तो आपको निवास भी ऐसा मिलेगा, कि जहाँ आपका मानस आनन्दित रहे, वहाँ आपको प्राणी-जगत भी आस-पास ऐसा ही मिलेगा। घर में अश्व होगा, गज होगा, गाय होगी जो शुभ हैं, प्राचीन काल में लोग अपने महलों के नीचे इन्हें बाँधते थे। जहाँ गाय बँधी होगी, वहां गोबर की सुगन्ध होगी, ऐश्वर्य होगा, इसी प्रकार जहाँ अमलतास, अशोक, आम आदि फलों-फूलों के सुगन्धित पेड़-पौधे होंगे, वहाँ शान्ति अवश्य होगी, यह माँ लक्ष्मी की प्रकृति है। इसी के अनुरूप वहाँ पशु-पक्षियों का वास होगा, उसी के अनुसार वहाँ आकाश व चारों ओर का वातावरण होगा, उसी के अनुसार आपको भोजन उपलब्ध होगा। वहाँ मलयाचल की शीतल, मन्द, सुगन्धित, त्रिविध समीर चलेगी। वह वायु आपको समाधिस्थ कर देगी, उसी प्रकार की वहाँ स्वाभाविक शान्ति और महक होगी। एक, तो ध्यान-समाधि से शान्ति पैदा होती है और दूसरा, जहाँ सरस्वती की कृपा होगी, वहाँ स्वतः स्वाभाविक शान्ति व सहजता होगी।

'जिसे आँखें खुदा ने दीं वह पत्थर में खुदा देखे।' पत्थर में भी पाँचों-प्राण व पाँच-महाभूत हैं और ईश्वर की छः विभूतियाँ भी हैं। कण-कण में सम्पूर्ण ईश्वरत्व व्याप्त है। इसलिए हम किसी भी कण से सम्पूर्ण ईश्वरत्व

को प्रकट कर सकते हैं। **ईश्वर बहुत सुलभ है, किसी भी कण से प्रकट हो सकता है।** इस सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में जो चराचर रचना हुई है, वह ईश्वर के द्वारा हुई है। इसलिए एक-एक कण सम्पूर्ण ईश्वरत्व से ठसाठस ओत-प्रोत है, इसलिए हम मानव इस महाब्रह्माण्ड के किसी भी कण से ईश्वर का प्रकाट्य कर सकते हैं। चाहे पेड़, नदियाँ, पशु, पक्षी, ग्रह-नक्षत्र, पत्थर किसी को भी पूज लें। वह महाचेतना जो नाम-रूप से परे है, देशातीत, लिंगातीत, सम्बन्धातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, देशातीत, कर्त्तव्यातीत है। उसको गफलत में अपने नाम-रूप की awarement में संकुचित करके हम विदीर्ण, विक्षिप्त, संकीर्ण, पशुवत, मलिन हो गए और **जब उसी नाम-रूप की मान्यता में आ कर हमने किसी भी कण को ईश्वर मान लिया और उसकी कृपा से उसने भी हमें मान लिया तो हमारी अपने नाम-रूप की awarement छूट जाएगी।**

महाचेतना को अपने नाम-रूप की awarement में सीमित करके हम ईश्वरत्व व महाचेतना से **परे से** हो गए ('परे से' इसलिए क्योंकि वह हमसे कभी भी परे नहीं हुई)। तो उसी नाम रूप की awarement से हम उससे जुड़ क्यों नहीं सकते? अरे! जब उससे फँस सकते हैं, तो उससे निकल भी सकते हैं। हम जहाँ जितनी नफरत कर सकते हैं वहाँ उतना प्यार भी कर सकते हैं।

आप अपनी तुच्छ नाम-रूप की awarement में आने के कारण उस महाचेतनता से विलग हुए तो उस तुच्छ नाम-रूप की awarement से ही आप उससे जुड़ भी सकते हैं। हम सत्य कह रहे हैं। आप अपना सच्चिदानंद स्वरूप जो शाश्वत, अजर, अमर, देशातीत, कालातीत, धर्मातीत, सम्बन्धातीत, कर्मातीत, कर्त्तव्यातीत, लिंगातीत था, उससे 'परे से,' 'हटे से' क्यों हुए हैं? क्योंकि **अपनी awarement में आप अपने नाम-रूप की तुच्छ awarement में सीमित हो गए। आपका वह महाचेतन स्वरूप कण-कण में है, तो तुच्छ नाम-रूप की awarement में किसी भी कण के द्वारा आप उसका प्रकाट्य कर सकते हैं, अपने उस स्वरूप के सम्मुख हो सकते हैं।** उसके लिए एक औपचारिकता है कि आप स्वयं की अपने

नाम-रूप की उसी तुच्छ **मान्यता में ही रखना, कि मैं बस यही हूँ और तुम यह नहीं हो तथा मैं तुम्हारी वजह से हूँ। तुम मेरी वजह से नहीं हो। मेरा अस्तित्व तुमसे है, तुम्हारा अस्तित्व मुझ से नहीं है। जब मैं नहीं था, तब तुम तो थे और अब भी तुम हो और तुम तो रहोगे ही। साथ ही आपने जिसे ईश्वर माना है, उसमें अपना कोई अहं भी न हो।**

हो सके तो आप और भी तुच्छ बन जाना, इतना सूक्ष्म बन जाना कि ईश्वर आपकी परिपूरक विधा बन जाए, क्योंकि **जीव और ब्रह्म एक दूसरे की परिपूरक विधा हैं।** बस जीव अपना अहं छोड़ दे। यह जो भी कार्यक्रम जीव के साथ हुआ, वह उसी की इच्छा से हुआ, आपकी इच्छा से नहीं हुआ। बस बीच में से **अहं की दीवार हटा दीजिए, फिर वह भी रहेगा, आप भी रहेंगे और दोनों मिलते-जुलते रहेंगे। वह भी खुश और आप भी खुश।** उसने आपका निर्माण किया था खेल में, पर दुर्भाग्यवश आप उसको भूल ही गए, तो वह कैसे खेलता? यदि हम उसे न भूलते तो वह हमें खिलाता, लेकिन हमने तो स्वयं अपना और अपने जगत का उत्तरदायित्व ले लिया **'पीड़ितम् कर्म-बन्धनैः,'** और यह कर्म-बन्धन हमारे दुःखों का कारण बन गया।

यह ज्ञान हो जाए कि मैं फँसा हुआ हूँ, तो वह अवश्य निकाल लेगा। प्रभु के सम्मुख आर्तनाद करें ''मैंने कुछ नहीं किया, तुम जानते हो और इसके चश्मदीद गवाह भी तुम ही हो। मुझे गफलत हुई थी, यह भी तुम जानते हो और उस गफलत का कारण भी तुम ही हो। मुझे तुमसे कोई शिकवा नहीं, परन्तु अब तुम मुझे कर्म-बन्धन से मुक्त करो। मैं भी खेलना चाहता हूँ, मैं अपने ही बोझ से दब गया हूँ, मैं अशक्त निरुपाय हो गया हूँ, हे प्रभु! मुझे निकालो।'' जैसे कोई अचानक किसी दुर्घटना में फँस कर चिल्लाता है कि बचाओ-बचाओ! इसी प्रकार आर्तनाद चाहिए।

जब जीव ने उस नाम-रूप की awarement को अपना स्वरूप मान लिया और **'मैं' 'मेरा'** में फँस गया तो कर्मबन्धन में बँध गया कि मैं ऐसा करके दिखाऊँगा, मैंने इतना कुछ कर लिया, मेरी प्रतियोगिता में कोई आकर देखे। नाम-रूप की awarement में ही जीव कर्म-बन्धन में फँसा,

किया इसने कुछ भी नहीं था। जब जीव को इस बात का अहसास होता है कि यह फँसा हुआ है, तो वह आर्तनाद करता है कि **मेरी गफलत व भ्रान्ति के कारण भी तुम हो क्योंकि मैं तुम्हें देख नहीं सकता था, मगर तुम तो मुझे देख रहे थे।** इस प्रकार यही नाम-रूप की awarement इसको उस महा awarement के साथ जोड़ देगी।

'सन्मुख होई जीव मोहि जबहि, कोटि जन्म अघ नासहिं तबहिं।'

दुर्भाग्यवश जीव अपने ईश्वर के सम्मुख ही नहीं हुआ। मैं और 'मेरा' में उससे विमुख ही रहा, परन्तु उसके सन्मुख होते ही सारा तथाकथित कर्म-बन्धन समाप्त हो जाता है और जीव, ईश-सृष्टि में खेलता है और आनन्द लेता है।

महाचेतना में अपने नामरूप की awarement से जीव उससे विलग हो गया तो तुच्छ नामरूप की awarement ही इसे, उससे जोड़ भी देगी। अवश्य जोड़ देगी, हम सत्य कह रहे हैं; क्योंकि हम अपनी उस महाचेतना से एक पल के लिए भी विलग नहीं हो सकते, हम **हट से** जाते हैं। यह **हटा सा, बँधा सा, दबा सा** बहुत भयंकर है। किसी को रोग हो जाए, तो दूर किया जा सकता है, परन्तु यदि रोग का वहम हो जाए तो उसे दूर करना अति कठिन है। इसके लिए उसकी याद में विशुद्ध अश्रु बहाने पड़ते हैं।

वास्तव में हमें अश्रु मिले ही इसलिए हैं। **प्रभु ने आँसुओं का समुद्र हमें दिया हुआ है पर हम उन्हें संसार के लिए व देह के लिए बरबाद कर देते हैं।** आपको अपने एक अश्रु की कीमत का अनुमान नहीं है, यही **एक अश्रु आपको अपने सच्चिदानंद के साथ जोड़ देता है।** संसार के लिए बहाकर आप इन अश्रुओं का अपमान करते हैं। हमारे लिए अथाह एवं असीम अश्रु ईश्वर ने इसलिए दिए हैं कि तू जब फँस जाए तो मौन होकर बस अश्रु बहा, वह आँसुओं की भाषा मैं समझ जाऊँगा, तुझे कोई पाठ-पूजा या तन्त्र-मन्त्र की आवश्यकता नहीं है, बस मूक अश्रु बहा! मैं समझ जाऊँगा कि तेरी रूह से आवाज़ निकल रही है।

आपने तो कुछ किया ही नहीं है। यह जो नामरूप की awarement में

आप उससे विलग हो गए, यह भी उसकी इच्छा थी और उसी awarement से आप उसकी कृपा से उससे जुड़ भी जाते हैं। **सद्‌गुरु या तो आपको, आपके कारण से जोड़ देता है, या भस्मी से।**

एक अश्रु में सागर का जल होता है, जहां संसार की समस्त नदियों का संगम होता है। सागर का जल और आपके अन्तःकरण का जल एक ही है। अश्रु नमकीन होते हैं। **ये अश्रु आग लगा देते हैं, अश्रु आग बुझाते हैं, अश्रु तड़पाते हैं, अश्रु शान्त करते हैं, अश्रु सुख में बहते हैं, अश्रु दुःख में भी बहते हैं। देव-दरबार में बैठकर यदि दो विशुद्ध अश्रु बह जाएँ तो समझिए काम हो गया।** ये सागर का जल है, जो सारी उम्र आपकी आँखों में रहता है। आपकी आँखों में नमी इन्हीं की है। ये अश्रु आपको आपके उस **खोए से** स्वरूप से जोड़ देते हैं। जितनी चाहे चालीसा पढ़ लो, मन्त्र जप लो, मालाएँ फेर लो, कुछ नहीं होगा जब तक उस ईश्वर के लिए अश्रु नहीं बहेगा।

गंगा-जल नहाने के बाद आपकी देह को शुद्ध करेगा लेकिन ईश्वर के प्रेम में बहाया यह अश्रु-जल आपकी रूह को पवित्र करने के बाद बहेगा। गंगा-जल बाहर से शुद्ध करेगा लेकिन अश्रु जल आपके अन्तःकरण को शुद्ध करके बहेगा। यदि अश्रु संसार के लिए बहा है, तो आपको इतने गर्त में ले जाएगा जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। वह आपको विकृत करके बहेगा और ज्यादा विकृत कर देगा। सन्तान, परिवार, धन, सम्पत्ति, ज़मीन जायदाद आदि के लिए रो रहे हैं तो यह रोना आपके लिए भयानक हो जाएगा। प्रभु इसे बिल्कुल सहन नहीं करते, आपको अवश्य दण्ड भुगतना पड़ेगा। **अश्रु बहुत कीमती हैं। आप कुछ भी बरबाद कर दीजिए प्रभु बुरा नहीं मानते, लेकिन अश्रु व्यर्थ बरबाद करने की हमें सज़ा अवश्य मिलती है।** इन आँसुओं में बहुत शक्ति है। **वस्तुतः यह विशुद्ध अश्रु आपकी आत्मा को पवित्र करने के बाद ही निकलता है। जब तक आपका अन्तःकरण, आपकी रूह शुद्ध नहीं होती, तब तक यह विशुद्ध अश्रु नहीं बहता।** अश्रु रोते हैं, अश्रु हँसते हैं, अश्रु मौन रहते हैं, अश्रु

बोलते हैं, अश्रु तड़पते हैं, अश्रु तड़पाते हैं, अश्रु मिलाते हैं, अश्रु जुदा करते हैं अतः इतने कीमती अश्रु व्यर्थ कैसे कर दें! ईश्वर जब आपकी प्रार्थना स्वीकार कर लेता है, तब ये अश्रु बहते हैं।

श्रद्धा के आँसू, प्रेम के आँसू बहुत कीमती हैं। **इस संसार की भाग-दौड़ में कुछ नहीं रखा, यहाँ भी रोना ही रोना है, तो क्यों न उसके लिए रोएँ, जो हमारा अपना है, हमारा शाश्वत सच्चिदानंद स्वरूप है।** मानव जीवन मिलना एक घटना है, यह घटना फिर कब होगी हम नहीं जानते अतः इसका एक भी पल हम व्यर्थ बरबाद कैसे कर सकते हैं? गौतम बुद्ध जब देह छोड़ने लगे तो उनके साथ 40 वर्ष निरन्तर अंग-संग रहने वाला शिष्य आनन्द रो पड़ा, तो गौतम बुद्ध ने उससे पूछा कि यह देह तो आनी जानी है, तू इतना रो क्यों रहा है? तब आनन्द ने कहा कि मैं आपकी देह जाने से रो नहीं रहा हूँ, 40 वर्ष तक मैं आपके साथ रहा, 40 साल से आपको सुना, लेकिन मैं सुनते हुए भी सुन नहीं सका, 40 वर्षों से मैं आपको देख रहा हूँ, लेकिन देखते हुए भी मैं आपको पहचान नहीं सका। अब यह ऐसा समागम इस सृष्टि में न जाने कब होगा, मैं अपने दुर्भाग्य पर रो रहा हूँ। यह मानव जीवन मिलना भी एक घटना है, उस पर किसी श्रीमंत के घर में पैदा होना, फिर सत्संग और सारी सुविधाएँ मिलना, यह बहुत बड़ी घटना है। इसका एक पल भी व्यर्थ बरबाद नहीं करना चाहिए।

आपके नाम-रूप की देह भी उसी माया का अंश है, जिसमें आप अपना स्वरूप समझकर फँस गए। अतः उसी नाम-रूप की awarement से सम्पूर्ण मायिक जगत के किसी भी कण में उस सम्पूर्ण चेतनता को मानकर माया-शक्ति की कृपा से आप को ईश्वर से निश्चित तौर पर जुड़े होने की अनुभूति हो जाती है।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(17 अक्टूबर, 2004)

मोक्ष

मानव-देह धारण करना ही मानव होने का द्योतक नहीं है, फिर मानव-देह में होकर भी हम मानव हैं भी या नहीं, इसका लक्षण क्या है? हम सब एक लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। यदि मेरा लक्ष्य भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति है, जैसेकि मुझे अमुक पद मिल जाए, व्यापार में नफा हो जाए, मेरी सन्तान को अमुक वस्तु मिल जाए, मेरे द्वारा धर्म, देश, जाति, समाज या विश्व का कल्याण हो जाए, मेरा नाम-यश हो जाए आदि तो इन सबका एक भविष्य अवश्य होता है और भविष्य अनिश्चित होता है। आप **यदि इस प्रकार का लक्ष्य तय कर लेंगे तो उसकी प्राप्ति होना उसी प्रकार अनिश्चित है, जिस प्रकार हमारा भविष्य अनिश्चित है। दूसरे, उस लक्ष्य की प्राप्ति के बाद भी क्या हो जाएगा?** पहले तो उसकी प्राप्ति अनिश्चित है और दूसरे यदि किसी प्रकार मिल भी जाए तो क्या हो जाएगा, इस तथ्य पर यदि आप विचार करेंगे तो आपको तनाव हो जाएगा।

कोई भी भौतिक लक्ष्य आपको बन्धन में बांध लेगा और जो लक्ष्य बन्धन-युक्त है, उस लक्ष्य का विचार भी बन्धन-युक्त होगा, उसकी दिशा व पथ भी बन्धन-युक्त होगा। उस लक्ष्य की प्राप्ति के बाद आपके हाथ तो कुछ लगेगा ही नहीं, साथ ही उसकी प्राप्ति के लिए अपनी शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक शक्तियों के द्वारा आप जो भी प्रयास करेंगे, वह सब बँधा हुआ ही होगा। यहाँ तक कि आपकी प्रार्थनाएँ भी बन्धन-युक्त होंगी। इसलिए दुर्भाग्यवश, कभी आपके मन में किसी भौतिक लक्ष्य का भाव उठे, तो उसे उखाड़ फेंकिए। कोई भौतिक लक्ष्य कभी नहीं रखना। क्योंकि जीवन में

उतार-चढ़ाव आते हैं, परिवर्तन होते रहते हैं। इसमें कभी कुछ प्राप्त होगा, कभी कुछ खोएगा।

लक्ष्य में, पहले तो भविष्य नहीं होना चाहिए और दूसरे लक्ष्य सार्थक होना चाहिए। जहाँ भविष्य खड़ा हो गया वहाँऽचाहे वह लक्ष्य आध्यात्मिक ही क्यों न हो, आपको तनावित कर देगा। आपको मोक्ष की कामना है तो उसमें भी भविष्य को मत लाएँ, कि मैं मोक्ष प्राप्त करके रहूँगा। यदि ऐसा हुआ तो वह भौतिक लक्ष्य से ज्यादा दुष्कर होगा। क्योंकि स्वाभाविक है कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए आप कुछ पुरुषार्थ-कर्म करेंगे और उस दौरान यदि देह छूट जाए तो आपकी दुर्गति ही होती है तथा साधना के दौरान भी आप विक्षिप्त ही रहते हैं, कि मैं इतने वर्षों से तप-पुरुषार्थ कर रहा हूँ, लेकिन मुझे कुछ प्राप्ति नहीं हुई। इस प्रकार के भाव में कभी-कभी आत्महत्या तक के विचार घेर लेते हैं। यदि हमारा लक्ष्य मोक्ष है तो हमें पूर्णतः व स्पष्टतः ज्ञात होना चाहिए कि मोक्ष क्या है? मैं मोक्ष क्यों चाहता हूँ और मोक्ष प्राप्ति के बाद क्या हो जाएगा? जहाँ हम जाना चाहते हैं, उस स्थान का या उस प्राप्ति का बोध होना आवश्यक है। मैं जिसके लिए दौड़ रहा हूँ, क्यों दौड़ रहा हूँ, कब तक दौड़ूँगा और उस प्राप्ति के बाद क्या हो जाएगा?

जब महाचेतनता में, मैं मात्र अपने देह के नाम-रूप की मान्यता की चेतनता में सीमित हो गया, तो मैं अपने उस शाश्वत सच्चिदानंद, महाचेतन स्वरूप से वंचित हो गया और देह को ही अपना स्वरूप मानने लगा। मैं उस देह से बँध गया, जो मुझसे बिल्कुल भी नहीं बँधी थी एवं अपने उस सच्चिदानंद परम शाश्वत, अजर, अमर स्वरूप से कट सा गया, जो मुझसे बिल्कुल भी नहीं कटा था, जिसके बिना मेरा अस्तित्व ही नहीं था। **देह मुझसे बँधी नहीं थी और मैं देह से बँधा, इसलिए वह 'बन्धन सा' था और मैं अपने परम सच्चिदानंद स्वरूप से हटा, जो मुझसे कभी भी नहीं हटा, इसलिए उससे मैं 'हटा सा' था।**

अब यहाँ **बन्धन 'सा' और हटा 'सा'** बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह देह जो मुझे निश्चित समय पर मिली, उससे मैं बँध गया। परन्तु वह तो मुझसे

तनिक भी नहीं बँधी थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जब यह मिली उस आधार पर आप अपना जन्म-दिन मनाते हैं, जबकि आपका जन्म-दिन वह है ही नहीं। आपका जन्म-दिन वह था, जब माँ के गर्भ में आपका गर्भाधान हुआ था और क्या आपको ज्ञात है कि आपका गर्भाधान कब हुआ था और यह देह आपके साथ कब तक रहेगी, आप स्वर्ग या नरक जो भी सिधारेंगे, कब सिधारेंगे? आपको मालूम इसलिए नहीं क्योंकि वह आपसे बँधी हुई नहीं है। इसकी अपनी सीमाएँ व नियम हैं, इसका Copyright reserved है। आप, जिस मालिक की यह देह है, उसके हुकुम से, उसके नाम से जो भी चाहे कर सकते हैं। अन्यथा इसकी किसी भी प्रक्रिया में आपको हस्तक्षेप का अधिकार ही नहीं है। यदि दखलअन्दाज़ी करेंगे तो आप सज़ाएँ भुगतेंगे। **देह ही आपको सज़ा देगी, क्योंकि यह देह स्वयं में एक चेतन सत्ता है।** आपको यह मिली है, परन्तु इसका इस्तेमाल करना आपको बिल्कुल भी नहीं आता है।

उदाहरणतः एक बहुत आलीशान, पूर्णतः वातानुकूलित व स्वचलित घर किसी घसियारे को कोई मेहरबानी करके दे दे और उसे इसका इस्तेमाल करना नहीं आता हो कि इसके ताले कैसे खुलने हैं, रसोईघर व टायलेट कैसे प्रयोग करना है तो वह अपनी जड़-बुद्धि से एक ही कमरे में रसोईघर वगैरा बना लेगा, जैसाकि वह अपनी झोंपड़ी में करता था। इसी प्रकार देह हमें मिली थी, बिना इसके स्वामी की आज्ञा के इस में हस्तक्षेप करना जुर्म था, लेकिन फिर भी हम करते हैं। न केवल हस्तक्षेप करते हैं, बल्कि देह पर हम अपना कब्ज़ा जमा लेते हैं कि मैं देह हूँ तथा देह मेरी है। **जबकि यह हमारी बिल्कुल भी नहीं है। हम इसका भविष्य खड़ा करने वाले होते कौन हैं, न तो भौतिक प्राप्तियों के लिए और न ही मोक्ष के लिए।** यह देह अगले क्षण कैसा स्वरूप दिखाएगी, आप नहीं जानते। इसलिए भविष्य में न तो मोक्ष की प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित करना और न ही भौतिक प्राप्तियों का। भविष्य आपके हाथ में नहीं है, भविष्य खड़ा करना, पूछना और भविष्य बताना दोनों ईश्वरीय दृष्टि में अपराध हैं। त्रिकाल-दर्शी

महात्मा होते हैं, वे सब कुछ जानते हैं, लेकिन कहते बिल्कुल नहीं। उनमें वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों का संगम होता है, तीनों वहाँ वर्तमान बन जाते हैं। यदि ईश्वर आपको ऐसी दृष्टि दे भी दें तो भी आप किसी को भविष्य नहीं बताना।

अतः लक्ष्य क्या है? कभी आप स्वयं से पूछिए कि मैं अमुक व्यवसाय या नौकरी क्यों कर रहा हूँ? क्या हमने अपने पैदा होने का लक्ष्य बनाया था? अमुक व्यवसाय आप ही क्यों कर रहे हैं, दूसरा कोई क्यों नहीं? आपको स्वयं यह नहीं मालूम तो उसके विषय में आप टारगैट क्यों बना रहे हैं, आपको अपने अगले पल की तो सुनिश्चितता है नहीं? यदि आपका लक्ष्य—**'मोक्ष' है; तो मोक्ष तो प्राप्य की प्राप्ति है।** हम सब मुक्त हैं लेकिन हम बँध गए उस देह से जो हमसे बिल्कुल भी नहीं बँधी थी। हम उससे हटे से हैं, जो हमसे कभी भी नहीं हटा था। जब हम देह से बँधते हैं तो हम उस ईश्वर से, जो हमसे एक क्षण भी विलग नहीं होता, हट जाते हैं। इसलिए वह **'हटा सा'** है और देह से **'बन्धन सा'** है। देखिए किस भ्रम में हम जी रहे हैं। हम बँधे हैं लेकिन वह **बन्धन सा** है और हम हटे हैं लेकिन वह विमुखता सी है, हम उससे **हटे से** हैं। यह अध्यात्म का सार है। **'मोक्ष' क्या है, जो 'हटा सा' है वह हटा तो नहीं है अतः मुझे उससे जुड़ने की अनुभूति हो जाए और जो बँधा सा है वह बन्धन तो है ही नहीं, उससे खुला होने की अनुभूति हो जाए।**

कोई व्यक्ति रोगी हो तो उसका रोग दूर करना कठिन नहीं है, लेकिन जिसे रोगी होने का वहम हो जाए, उसका इलाज कौन कर सकता है? वह **रोगी सा** तो डाक्टर को भी **डाक्टर सा** बना देगा। **यह बन्धन सा और हटा सा 'सा' इसलिए था कि न तो वह बन्धन था और न ही वह हटना था। हमने व्यर्थ ही मान लिया कि मैं देह से बँधा हूँ और मुझे ईश्वर को पाना है। जबकि ईश्वर के बिना तो हमारा अस्तित्व ही नहीं था और देह हमसे एक क्षण के लिए भी नहीं बँधी थी।** मोक्ष की बड़ी संक्षिप्त, सार्थक, सार-गर्भित और सटीक परिभाषा दे रहा हूँ—**जिससे हटे से हैं हम वास्तव में**

उस ईश्वर से बँधे हैं और जिस देह से हम

बंधे से हैं, वास्तव में उससे हम हटे हुए हैं। बस यह बात सिद्ध हो जाए, यही मोक्ष है। इसकी प्रामाणिकता एवं सत्यापन हो जाए, यही मोक्ष है। यह वहम की बीमारी दूर होनी चाहिए। इस वहम की बीमारी में हम जन्मों-जन्मान्तरों से गल, सड़ रहे हैं। सब तरह से पहले भी कष्ट भुगत रहे थे, अब भी भुगत रहे हैं। यदि यह वहम दूर न हुआ तो आगे भी हम भुगतेंगे ही। **जो देह हमसे बँधी नहीं है, उससे हम बँधे से हैं। इसलिए यह बन्धन सा न रहे, तथा जो हमारा स्वरूप हमसे कभी नहीं हटा, उससे हम हटे से हैं। इसलिए हम उससे बँध जाएँ और इसकी हमें अनुभूति हो जाए तथा सद्‌गुरु द्वारा इसकी पुष्टि, प्रामाणिकता व सत्यापन हो जाए, यही मोक्ष है। यह मोक्ष की अति सरल, सार्थक व सटीक परिभाषा है।**

उस देह से मैं क्यों बंधता हूँ जो मेरी चीज़ ही नहीं है। अरे! जन्म-दिन पर यह सोच लो कि मैं आज के दिन ही क्यों पैदा हुआ, आप किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाएँगे। यदि मैं देह हूँ और यह देह मेरी है तो इस विषय में मुझे ज्ञान होना चाहिए। ईश्वर ने एक सुनिश्चित समय पर आपको एक देह-पिण्ड दिया। उस देह के लिए मैं लक्ष्य निर्धारित करने वाला कौन होता हूँ? एक इस देह के बन्धन में मैंने लाखों बन्धन पाल लिए और स्वयं उस जाल में उलझ कर रह गया। मैं दिनों, तिथियों, काल, मुहूर्त न जाने किस-किस से बँध गया! उत्सवों से बँध गया कि आज दशहरा है, आज दीवाली है। अरे! हमारा सम्पूर्ण जीवन ही उत्सवमय था। **उस ईश्वर ने एक चमत्कारी देह दी थी, हमें मात्र उस ईश्वर से जुड़े रहना था, शेष सब कार्य उसी का था।** सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का संघनित रूप एक देह, नौ महीने में बनाकर मुझे दे दी और उसके लिए सारा प्रबन्ध उसी ने किया। **इस देह को प्राप्त करने के बाद मेरा ईश्वर से जुड़ना परमावश्यक था, कि प्रभु! यह देह तुमने मुझे दी, मुझे तो इस्तेमाल करना ही नहीं आता। इस भाव के आते ही ईश्वर आपको स्वयं से जुड़ा हुआ लगेगा और यह देह आपको अपने से पृथक लगेगी। प्रभु! यह देह भी**

तुम्हारी है और मैं भी तुम्हारा ही हूँ।

ईश्वर ने देह देने से पहले सम्पूर्ण वायुमण्डल हवा से भर दिया कि यह अपने नाम-रूप की चेतनता में हवा को भी बाँध लेगा और हवा सबके लिए है। कभी किसी ने कहा कि मैं हवा कमा रहा हूँ, हमें धरती पर चलना है, इसलिए मैंने धरती अर्जित करनी है, सूरज की धूप व चन्द्रमा की चाँदनी कमानी है। ईश्वर ने सूरज, चन्द्रमा को कर्त्तव्य में बाँध दिया कि कोई तुम्हारी धूप व चाँदनी ले न ले अतः तुम्हें अपने समय से चमकना है। सम्पूर्ण प्राणी-जगत ईश्वर ने बना दिया। **जैसी जीव की वृत्ति होगी वैसा प्राणी सम्मुख आ जाएगा। देह की संरचना ऐसी है कि जो आपकी इच्छा होगी, देह उसी के अनुसार आपका ब्रह्माण्ड बना देगी। देह को आदेश उस ईश्वर ने दिया कि यह जीव मेरा बच्चा है। जब यह चाहे इसकी चाहत के अनुसार इसके हित में इसका वैसा ही ब्रह्माण्ड बना देना।** कभी भी आप एकाग्रता-पूर्वक कोई संकल्प करें, आपकी दृष्टि जहाँ पड़ेगी, वहाँ वैसा ही ब्रह्माण्ड प्रकट हो जाएगा। देह तुरन्त आपको वह वस्तु दिखाने के लिए बाध्य है। बस आप देह को इसे बनाने वाले के प्रति समर्पित कर दीजिए। प्रभु! यह देह भी आपकी है और मैं भी आपका हूँ। यह देह आपने मेरे लिए दी है, पर मैं इसका इस्तेमाल करना नहीं जानता। कृपा करके इसे मेरी ओर से आप इस्तेमाल करो। **जब आप ईश्वर से बंध जाएंगे, जिससे हम हटे से हैं, क्योंकि यह हमसे कभी भी नहीं हटा और जब आपकी यह धारणा बन जाएगी कि यह देह मेरी नहीं है, तो यह देह आपसे बँध जाएगी और हमारे लिए हो जाएगी। जिससे हम बँधे से थे वह हमसे बँध जाएगी। बस यही मोक्ष है।**

आपका कोई भी कृत्य आपकी इस गलतफहमी अथवा वहम की पुष्टि न करे, कि आप देह हैं या देह आपकी है और ईश्वर आपसे दूर है, उसे आपको पाना है। यह वहम इसलिए है, क्योंकि देह आपसे बिल्कुल भी बँधी नहीं है, आप इसके विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं और ईश्वर के बिना आपका अस्तित्व ही नहीं है। **आपका हर कृत्य या अकृत्य इस सत्य की**

पुष्टि करे, कि देह मेरी नहीं है और ईश्वर मेरा है। इसकी पुष्टि जिस भी प्रकार से हो, वह पुरुषार्थ है और वही वास्तविक कर्म है। देह मेरे लिए है और ईश्वर मेरा है, जिस भी कृत्य या अकृत्य के द्वारा इस सत्य के प्रति मैं आश्वस्त हो जाऊँ, वही पुरुषार्थ है। पुरुष+अर्थ मेरे पुरुष, मेरी चेतन सत्ता का अर्थ क्या है? मैं कौन हूँ? कोई सोच, कोई विचार, कोई चिन्तन, कोई मनन, कोई कृत्य, कोई अकृत्य, कुछ भी, सब कुछ और कुछ भी नहीं, जिसके द्वारा भी आप आश्वस्त हो जाएँ कि देह आपकी नहीं है, आपके लिए है और ईश्वर आपसे कभी भी हटा नहीं है, वह आपका ही है, बस वही पुरुषार्थ है। **आप जिस ईश्वर से हटे हुए हैं, वह आपसे हटा नहीं है। इसलिए हर तरह से आप उससे बँधे हुए हैं और जिससे आप बंधे हुए हैं, वह देह आपसे बिल्कुल भी नहीं बँधी है, इसलिए हर तरह से आप उससे बँधे से हैं।** जब इस सत्य में आप उतर जाएँगे, तो जिससे आप हटे **से** हैं, उस ईश्वर से आप बँध जाएँगे और जिस देह से आप बँधे से हैं वह देह आपसे बँध जाएगी। **मोक्ष भी एक बन्धन है, जहाँ से आप हटे से हैं, वहाँ वास्तव में बँधे हुए हैं, आपको इसकी पुष्टि हो जाए, बस यही मोक्ष है।**

प्रश्न उठता है कि इस सम्पूर्ण प्रक्रिया की आवश्यकता क्या है? जहाँ हम देह से बँध **से** जाते हैं तो वहाँ एक संसार निर्मित कर लेते हैं, हम इस बन्धन **से** को झेल नहीं पाते, सह नहीं पाते, इसलिए इस बन्धन **से** को पक्का करने के लिए, हम इसके परिचय, प्रतिष्ठा, प्रामाणिकता, परिस्थितियों, प्राप्तियों, पूर्णता व पागलपन में बन्धनों का भयंकर जाल बुनना आरम्भ कर देते हैं और फँसते चले जाते हैं। **'बन्धन'** शीर्षक प्रवचन में मैंने इसका विस्तृत वर्णन किया है। **यह समस्त सूक्ष्म-जगत और स्थूल-देह जो हमारे लिए थी, अब हम इसके लिए हो जाते हैं तथा स्थूल व सूक्ष्म-जगत, मेरे लिए जिम्मेदारी बन जाता है।** विवाह-शादी तथा अन्य पर्व और उत्सव भी मेरे लिए इन बन्धनों के कारण सिरदर्दी बन जाते हैं। मैं मात्र देह व देह पर आधारित इस जगत के रख-रखाव में ही भटकता-भटकता मर जाता हूँ। हम एक कृत्रिम जीवन व्यतीत कर रहे हैं, क्योंकि एक असत्य पर हमारे

जीवन का सारा महल खड़ा होता है कि 'यह देह मेरी है' उस देह के साथ मैं बँधता हूँ जो मुझसे न कभी बँधी थी, न कभी बँधी है, न बँधेगी। लक्ष्य के निर्धारण के लिए मुझे स्पष्ट हो जाना चाहिए कि **जो मैं ईश्वर से हटा सा हूँ, वहाँ मैं बँधा हुआ ही हूँ और जिस देह से बँधा हूँ , मैं आश्वस्त हो जाऊँ कि वह देह मुझसे बिल्कुल भी बँधी हुई नहीं है। इस आश्वस्ति के बाद मैं देह से हट जाऊँगा और देह मुझसे बँध जाएगी तथा मैं ईश्वर से बँध जाऊँगा क्योंकि वह मुझसे कभी हटा नहीं है।**

मेरा लक्ष्य क्या है ? मैं देह नहीं हूँ, देह भी मेरी नहीं है। **लक्ष्य मेरा है, देह का नहीं है। अपनी देह का लक्ष्य निर्धारित करना महामूर्खता है, पागलपन है।** बच्चों को पढ़ाते समय कभी उनके सामने भविष्य खड़ा न करें कि तुम्हें पढ़कर यह बनना है। बस उन्हें वर्तमान में पढ़ाई का आनन्द आ जाए। डिग्री के लिए नहीं पढ़ाना, नहीं तो वर्तमान का आनन्द खो जाएगा। **इसी प्रकार आप ईश्वर के ध्यान में बैठे और आपको आनन्द आ गया तो वही ईश्वर की प्राप्ति है। आप वर्तमान, भूत और भविष्य के निरर्थक बोझे से मुक्त हो जाएँ, यही आपका लक्ष्य है। आप कुछ भी कर रहे हों या न कर रहे हों, आपको आनन्द आ जाए, यही लक्ष्य है, यही मोक्ष है।** आप हर पल ईश्वर के साथ जुड़े रहें, जिससे आप हटे से हैं तो आपका हर मिलना, हर बिछुड़ना, हर पाना, हर खोना, हर लड़ना, हर प्यार करना आनन्द ही होगा। अगर मैं अपनी देह का लक्ष्य निर्धारित करूँ तो मैं महामूर्ख हूँ। जो वस्तु मेरी है ही नहीं, उसका लक्ष्य निर्धारित करने वाला मैं कौन होता हूँ। **ईश्वर मेरा है, मेरा अपना सच्चिदानंद-स्वरूप है, उससे हटे से होने का मुझे भ्रम है, तो सब कार्यों से खाली होकर, क्यों न मेरा यह लक्ष्य हो कि मैं तुमसे अभी मिलना चाहता हूँ। यदि अपनी देह का कोई लक्ष्य निर्धारित कर लिया तो आप कभी खाली नहीं हो पाएँगे और उस देह के लिए निरर्थक व्यस्त रहेंगे, जो कभी भी जा सकती है।**

आप अपने परम चेतन के साथ जुड़ जाएँ और देह से हट जाएँ, यही आपका वास्तविक लक्ष्य है, यही मोक्ष है। फिर देह आपके लिए होकर

आपसे बंध जाएगी और आप जो चाहेंगे वैसा ब्रह्माण्ड निर्मित करके, प्रकट कर देगी। मेरा हर क्षण आनन्दमय हो, यही मेरा लक्ष्य है और अपने परम चेतन के साथ जुड़े होने की अनुभूति ही आनन्द है। जिस महाचेतना से मैं हटा सा हूँ, मैं वही महाचेतनता हूँ। **मैं उसका प्रतिनिधि होकर भी मात्र अपनी देह के नाम-रूप की मान्यता की awarement के कारण उस महाचेतना से हटकर केवल नाम-रूप की चेतनता में आ गया। जो देह मेरी सेविका थी, मेरे लिए थी, मैं उसके लिए हो गया और उसका दास बन गया।** मेरा कितना भारी नुकसान हो गया! एक तो मैं उस महाचेतन, अपने परम सच्चिदानंद-स्वरूप से हट गया और उस नश्वर देह का मैं गुलाम बन गया, जिसका मैं स्वामी था, वह देह मेरे सम्पूर्ण जगत का आधार थी। आपके नाम-रूप की awarement में ही आपके सारे जगत का अस्तित्व था, नाम-रूप की awarement से हटते ही सम्पूर्ण जगत ढह जाता है जैसाकि सुषुप्ति, विस्मृति, मूर्च्छा, मृत्यु और तुरिया समाधि में होता है। आप **'मैं' 'मेरा'** हटा दीजिए। आपका समस्त आनन्द एक विचार पर टिका है कि मैं महाचेतनता हूँ, इसकी अनुभूति हो जाए, यही जीवन का तथा मेरे लिए इस देह के होने का अर्थ है।

आज तक जो भी किया, देह के लिए किया, जो मेरी नहीं है। मेरा स्वयं को इसके साथ पहचानना, इस देह को अच्छा नहीं लगता। यह मेरे लिए है, मुझे खेलने के लिए मिली है। **तो मैं लक्ष्य से दिग्भ्रष्ट होकर लक्ष्य निर्धारित करता हूँ, यही मेरी महामूर्खता है।** जो भी मैं देह के लिए करता हूँ वह मिल भी जाए तो क्या हो जाएगा? और यदि वर्तमान में किसी भी तरह से और सब तरह से आप अपने ईश्वर के साथ जुड़े रहें और आपको आनन्द आ गया तो आनन्द के साथ so what नहीं लगता। **''मैं तुमसे अभी, इसी वक्त मिलना चाहता हूँ, क्योंकि तुम मेरे हो, मैं जैसा भी हूँ, कहीं भी हूँ, कोई भी हूँ, मैं भी खाली हूं और तुम भी खाली हो, मैं तुम्हें अभी मिलना चाहता हूँ।'' इतनी तीव्र आर्तनाद हो** 'जो मेरे गुण अवगुण हैं, मैं नहीं जानता। बस, मैं तुम्हें अभी मिलना चाहता हूँ,' इस पर कोई समझौता न हो,

आग भड़क उठे। ''मैं जैसा भी हूँ, आपने मुझे देह दी है, यह मेरी हो न हो, इसकी मुझे परवाह नहीं है क्योंकि आज तुमने मुझे दी है, कल ले जाओगे, इसके विषय में मुझे कोई चिन्ता नहीं है, पर मैं तुम्हें अभी मिलना चाहता हूँ क्योंकि मैं भी तुम्हारी ही तरह खाली हूँ।

आप यदि देह से बंधेंगे तो आपको कुछ न कुछ करना होगा, कि यह काम तो हुआ ही नहीं, यह अधूरा रह गया आदि-आदि। आपका देह पर अधिपत्य ही आपका अधूरापन है। तो हमें देह व देह पर आधारित किसी का भी लक्ष्य निर्धारित नहीं करना चाहिए कि मेरे बेटे को ऐसी बहू मिल जाए, मेरी बेटी के लिए सुयोग्य वर मिल जाए, आदि। ऐसे लक्ष्य रखकर आप ईश्वर-प्रदत्त इस चमत्कारिक देह का अपमान करते हैं, आप अपना स्वयं का अपमान करते हैं, स्वयं को तुच्छ, संकीर्ण और अति क्षुद्र स्तर पर ले जाते हैं :—

'मृत्यु ंजय महादेव त्राहि माम् शरणागत्,
जन्म मृत्यु जरा रोगे पीड़ितम कर्म बन्धनैः।'

''मैं कर्म से नहीं इसके बन्धन में फँस कर पीड़ित हो गया हूँ कि मैंने किया है।'' वह देह जो आपके लिए थी, उस पर आपने अधिपत्य कर लिया, इसलिए देह आपके विरुद्ध हो गई। **इस देह से जो भी आप स्वयं को देह मानकर करेंगे उसके लिए यह आपको सज़ाएँ देगी। सुख-साधन भी आपको दुःखी करेंगे।** इसलिए सावधान रहना है, लक्ष्य यही है कि इसी पल से आप वर्तमान के हर पल में आनन्दित रहें। जिससे हटे से हैं, उसके साथ बंधे होने की आपको अनुभूति हो जाए। आप एक जीवात्मा हैं, ईश्वर अंश है और जो देह आपको दी गई हैं उसमें 33 करोड़ देवी-देवता हैं, जो आपकी इच्छा के अनुसार आपका ब्रह्माण्ड निर्मित करते हैं। आपके संकल्प मात्र से वह जगत आपके सामने प्रकट हो जाता है, **देह आपके लिए थी, इस पर अधिपत्य मत करिए। इसे और स्वयं को उस ईश्वर के साथ बाँध दीजिए, तो देह धारण करके, करने योग्य कार्य आपने कर लिया।**

हमारी इसी देह में सम्पूर्ण ईश्वरीय कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का पूरा

प्रतिनिधित्व है। ऐसे-ऐसे नाद, ऐसे-ऐसे राग-रागनियाँ व नृत्य हैं जिनका हमें आभास भी नहीं है। भूलोक, स्वलोक, जनलोक, देवलोक, सूर्यलोक, चन्द्रलोक सबके नज़ारे इसी देह में हैं। हमें तो इस देह का कुछ भी ज्ञान नहीं है और उस पर हम अज्ञानवश, अधिपत्य कर बैठे, इसलिए देह हमारे विरुद्ध हो गई। **जब आप देह के स्वामी उस ईश्वर से बँध गए तो देह आपके लिए हो गई। फिर यह देह आपके सारे नाज़-नखरे सहती है। आपके लिए नाचती है बशर्ते आप जिससे हटे से थे, उससे बँध जाएँ और इसकी आपको अनुभूति हो जाए। बस यही मोक्ष है, यही लक्ष्य है**ः–

''न मैं बन्दा था न मैं खुदा था, मुझे मालूम न था
चाँद बदली में छिपा था, मुझे मालूम न था
मैं खुद ही खुद में पर्दा बना था, मुझे मालूम न था।''

आपकी इच्छा है तो आप देह का प्रयोग करें, यदि नहीं तो न करें। यह देह आपकी चेरी है, asset है। आपके लिए रोज़ दिवाली होगी, रोज़ होली। न आप दिन, तिथियों से बंधेगे, न उत्सवों, पर्वों से। केवल आप स्वयं को प्रभु के ऊपर छोड़िए कि प्रभु, आज मेरे लिए आपका क्या कार्यक्रम है? आप अपने ऊपर कार्यक्रम मत थोपिए। मानव जीवन मिलना स्वयं में एक बहुत बड़ी घटना है। **इस सम्पूर्ण वृत्तान्त का सार यह है कि आप जहाँ लक्ष्य में, भविष्य में चले जाएँगे तो वह देह का लक्ष्य होगा। जोकि आपके लिए वर्जित है। आपका लक्ष्य आपका वर्तमान है। भूत और भविष्य के जो बोझे ढो रहे हैं, आपके वे निरर्थक बोझे उतर जाएँ और आप वर्तमान में आनन्दित हो जाएँ, यही आपका लक्ष्य है। इस लक्ष्य में भविष्य है ही नहीं। इसलिए यही मोक्ष है।** जीवन की अन्तिम श्वास में भी यह सत्य पल्ले पड़ जाए तो महाप्रभु की कृपा है। लेकिन हम सब भविष्य की ओर दौड़ते हैं। यदि भविष्य की ही बात करनी है तो अपने उस निश्चित, परिलक्षित, प्रत्यक्षदर्शित, अन्तिम भविष्य को आत्मसात् करो, जो अवश्य होगा, जो सुनिश्चित है, कि मैं खाक बन गया हूँ। आपकी खाक जब बनेगी तब आप नहीं होंगे, इसलिए वह भस्मी जड़ होगी। उस भविष्य को चेतन वर्तमान बना

दो कि मैं भस्मी हूँ, आपमें शिवत्व जाग्रत हो जाएगा। (इस सकाल वर्तमान में उस अकाल भविष्य का, भस्मी का जामन लगा दो तो आप शिव की तरह कालातीत हो जाएँगे) उस अकाल भविष्य को वर्तमान में कुछ देर के लिए ले आने से आप भी अकाल हो जाएँगे। पता नहीं चलेगा बचपन कहाँ गया, जवानी कहाँ गई, कहाँ गया बुढ़ापा। आप गोद के अबोध बच्चे की तरह उस अकाल पुरुष की गोद में बैठे हुए, जीवन का आनन्द लेंगे और इसे लीला की तरह से देंखेगे।

यह समस्त प्रकरण कृपा-साध्य है, जिसके लिए सतत-अविरल सत्संग व गुरु-कृपा चाहिए। देह के बन्धन से जो **बन्धन सा** है, उससे मुक्त होने के लिए या तो आप अपने विशुद्ध स्वरूप से बँध जाएँ या अन्तिम भविष्य—**'भस्मी'** को वर्तमान में आत्मसात् करें, इसके मध्य में और कोई मार्ग है ही नहीं।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(23 व 24 अक्टूबर, 2004)